सुगम

संस्कृत व्याकरण

लेखक

डॉ० राकेश शास्त्री

अध्यक्ष, संस्कृत–विभाग

राजकीय महाविद्यालय, सलुम्बर (राज०)

एवं

डॉ० प्रतिमा शास्त्री

व्याख्याता– संस्कृत विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बांसवाड़ा (राज०)

धर्म–नीराजना प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक :

धर्मनीराजना प्रकाशन

७८, समाचार अपार्टमेन्ट्स

नई दिल्ली

© लेखकगण

मूल्य – १००.०० रुपये

संस्करण :

प्रथम, १९९७

द्वितीय, १९९९

तृतीय २००९

शब्द संयोजक :

हिमांशु लेजर सिस्टम

४६, संस्कृत नगर, सेक्टर – १४

रोहिणी, दिल्ली – ८५

मुद्रक :

विशाल कौशिक प्रिंटर्स

शाहदरा

दिल्ली - 110093

हमारे संस्कृत विषयक प्रकाशन

१. स्नातक संस्कृत सरला
२. स्वप्नवासवदत्तम्
३. अपरीक्षितकारकम्
४. मनुस्मृति (द्वितीय अध्याय)
५. काव्यदीपिका (अष्टम शिखा)
६. भारतीय संस्कृति के तत्त्व
७. ऋक्सूक्तचन्द्रिका
८. कठोपनिषद् (प्रथम अध्याय)
९. शुकनाशोपदेश
१०. किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग)
११. भारतीय दर्शन : मूल अवधारणाएँ
१२. श्रीमद्भगवद्गीता (१,२ अध्याय)

समर्पण

सरस्वती के वरदपुत्र, देववाणी के अनन्योपासक,

परमस्नेहिल, मृदुभाषी, परमश्रद्धेय अग्रज

डॉ० वाचस्पति उपाध्याय

कुलपति

लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ

नई दिल्ली

के करकमलों में सादर

—राकेश शास्त्री

यत्किञ्चित्

सुगम संस्कृत व्याकरण का द्वितीय संस्करण आपके हाथों में है। इसके प्रथम संस्करण को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई, इसके लिए मैं सभी संस्कृत अध्येता छात्रों, संस्कृतानुरागियों एवं विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक केवल एक पुस्तक लिखना है, इस भावना का परिणाम नहीं है, अपितु अपने विद्यार्थीजीवन एवं अध्यापनकाल के लगभग २१ वर्षों के संस्कृत व्याकरणविषयक चिन्तन–मनन के परिणामस्वरूप मैंने छात्रों की समस्याओं को समझने का प्रयास किया तथा इस सम्बन्ध में उनके ऊपर बहुत से प्रयोग भी किए, उनकी सफलता से प्रोत्साहित होकर ही इसे लिखने का साहस कर सका।

मैंने विचार किया कि ऐसे अनेक छात्र जो उत्तम अङ्कों के आकर्षण में हाईस्कूल स्तर की अनिवार्य संस्कृत पढ़ने के बाद सीधे स्नातक स्तर पर यह विषय ऐच्छिक रूप में ले लेते हैं, उन्हें इस विषय में अत्यधिक कठिनाई की अनुभूति होती है। उनकी विषय को समझने की जिज्ञासा तो रहती है, किन्तु व्याकरण की कठिनाई के कारण अनके मन में घबराहट बनी रहती है।

मेरा यह लघु प्रयास इसप्रकार के उन छात्र–छात्राओं के लिए विशेषरूप से है। उनकी व्याकरण सम्बन्धी कठिनता को डायग्रामों के माध्यम से दूर करने का प्रयास ही इस पुस्तक की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसमें मेरी दृष्टि रही है कि यह पुस्तक स्वयं में शिक्षक का कार्य भी करे। इसके लिए भाषा सरल एवं संवादात्मक शैली को स्वीकार किया है।

इसमें सर्वप्रथम लघुसिद्धान्त कौमुदी के संज्ञा प्रकरण, स्वर, व्यञ्जन और विसर्ग संधियों को दिया गया है। सूत्रों का क्रम उपयोगिता की दृष्टि से बदला है। आशा है एतदर्थ विद्वद्गण क्षमा करेंगे। परीक्षार्थियों की सुविधा की दृष्टि से परीक्षा में संधि विषयक प्रश्नों के उत्तर लिखने के प्रकार का उल्लेख किया गया है।

समासविग्रह से छात्र सर्वाधिक घबराते हैं। कुछ ही पृष्ठों में अत्यन्त सरल रूप में समास–विग्रह करने की शैली का प्रतिपादन किया गया है। कारक–प्रकरण में प्रमुखसूत्रों का सोदाहरण स्पष्टीकरण किया गया है। इसीप्रकार लघुसिद्धान्तकौमुदी के स्त्रीप्रत्यय, कृदन्त और तद्धित प्रत्ययों को नियोजित करते हुए उनकी सरलरूप में प्रस्तुति की गई है।

प्रकृतिप्रत्ययनिर्देश के विषय में छात्रों की जिज्ञासा का समाधान भी प्रत्यय विवेचन के बाद किया गया है। शब्दरूप एवं धातुरूप विशेषरूप से परीक्षा की दृष्टि से सम्मिलित किए गए है। यद्यपि उनका अनुवाद की दृष्टि से भी उपयोग निःसन्दिग्ध है।

इस पुस्तक का हृदय ''अनुवाद की सरलतम विधि'' कहा जा सकता है। संस्कृत अनुवाद प्रमुख पाँच लकारों में क्रमशः अपेक्षित नियमों को समझाते हुए दिया गया है। मात्र पन्द्रह दिनों में संस्कृत अनुवाद सिखाना इस अंश का प्रमुख उद्देश्य है। छात्रों की कठिनाई को दृष्टिगत रखते हुए अभ्यासों में हिन्दी वाक्यों के बाद उनका संस्कृत रूपान्तरण दिया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य बिना किसी अन्य व्यक्ति के सहयोग से छात्रों द्वारा किए गए अनुवाद में गलतियों की जानकारी प्रदान करना है।

अन्त में परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी कुछ संस्कृत निबन्धों एवं छन्दों का उल्लेख किया गया है तथा परिशिष्ट में इस पुस्तक में आए सूत्रों की अकारादिक्रम से सूची दी गई है। वस्तुतः यह पुस्तक सरलता का ध्यान रखते हुए प्रौढ़ संस्कृत व्याकरण–शिक्षा की दृष्टि से प्रस्तुति मात्र है।

आशा है इसके पूर्व संस्करण के समान यह संस्करण भी लोकप्रिय होगा। साथ ही प्रिय छात्र–छात्राओं एवं आदरणीय विद्वान् महानुभावों से मेरा विनम्र निवेदन है कि इस पुस्तक के अध्ययन में जो भी कठिनाई अनुभव हो अथवा उनका कोई सुझाव हो तो वे उसे अवगत कराने का कष्ट करें।

तदनन्तर सर्वप्रथम मैं उन विद्वानों के चरणों में श्रद्धावनत हूँ, जिनकी विद्वत्तापूर्ण संरचनाओं के सहयोग से इस पुस्तक के लेखन में मुझे सहयोग प्राप्त हुआ। साथ ही इस पुस्तक की प्रेरणास्रोत मेरी सहधर्मिणी डॉ० प्रतिमा शास्त्री, व्याख्याता– संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा के प्रति भी भूरिशः धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने अनेक स्थलों पर नूतन–दृष्टि प्रदान करके अपना अमूल्य सहयोग मुझे प्रदान किया।

नन्हें आत्मज आयुष्मान् सुवासित शास्त्री और प्रिय कु० प्राची शास्त्री को भी हार्दिक शुभाशीर्वाद प्रेषित करता हूँ, क्योंकि इस कार्य की पूर्णता के समय उनका अधिकृत स्नेह उन्हें नहीं मिल सका।

अन्त में मैं परमादरणीय विद्वानों की सेवा में मात्र इतनी ही निवेदन करना चाहूँगा कि इस पुस्तक की सभी अच्छाइयाँ गुरुजनों की कृपा का फल है और जो गलतियाँ हैं वे मेरे प्रमाद अथवा अज्ञानता का परिणाम है। फिर भी यदि यह पुस्तक संस्कृत प्रचार–प्रसार में उपयोगी हो सके तो मैं इसे अपना परमसौभाग्य समझूँगा।

इति शुभम्।

विदुषां वशंवद

—राकेश शास्त्री

१४ अगस्त, १९९९
शास्त्रि–निलयम्,
१–एच–३१
हाउसिंग बोर्ड कालोनी
बांसवाड़ा (राज०) ३२७००१
दूरभाष – ०२९६२/४१०२६

यत्किञ्चित्

स्नातक संस्कृत सरला का भाग-२ आपके हाथों में है इसके भाग-१ को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके लिए मैं सभी संस्कृत अध्येता छात्रों, संस्कृतानुरागियों एवं विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ। इसके पूर्वभाग में मेरा प्रयास रहा कि यदि कोई छात्र या संस्कृत-अनुरागी संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है तो उसे अत्यन्त सरल रूप से संधि, समास और संस्कृत अनुवाद का ज्ञान कराया जाए, साथ ही यह प्रयास उन छात्रों के लिये भी था, जो संस्कृत विषय सीधे बी.ए. कक्षा में ऐच्छिक रूप से ग्रहण करते हैं। संयोगवश राजस्थान बोर्ड, अजमेर की कक्षा १२ तथा मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय की बी.ए., प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम लगभग एक ही होने से वह पुस्तक सभी के लिये उपयोगी सिद्ध हुई। इस पुस्तक का नामकरण हमने इस बार ''सुगम संस्कृत व्याकरण'' कर दिया है।

यह पुस्तक केवल एक पुस्तक लिखना है, इसका परिणाम नहीं है। अपने विद्यार्थीजीवन एवं अध्यापनकाल के लगभग २० वर्षों के संस्कृत व्याकरण विषयक चिन्तन के परिणामस्वरूप मैंने छात्रों की समस्याओं को समझने का प्रयास किया तथा इस विषय में छात्रों पर अनेक प्रयोग भी किए, उनकी सफलता से प्रोत्साहित होकर ही इसे लिखने का साहस जुटा सका।

मैंने देखा कि ऐसे अनेक छात्र जो उत्तम अंकों के आकर्षण में हाईस्कूल स्तर की अनिवार्य संस्कृत अध्ययन करने के बाद सीधे स्नातक स्तर पर यह विषय ऐच्छिक रूप में ले लेते हैं। इस प्रकार के छात्रों में विषय को समझने की जिज्ञासा तो बहुत होती है, किन्तु व्याकरण की कठिनाई के कारण उनके मन में घबराहट भी रहती है। मेरा यह प्रयास इस प्रकार के उन छात्र-छात्राओं के लिए विशेष रूप से है जिससे उन्हें संस्कृत व्याकरण की कठिनाई का आभास न हो।

इसमें भाग-१ के कुछ उपयोगी विषयों को भी सम्मिलित किया गया है। इससे यद्यपि पुस्तक के आकार में वृद्धि हुई है, किन्तु छात्रों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ऐसा करना उपयुक्त जान पड़ा। आशा है इस पुस्तक के अध्ययन के बाद छात्रों को किसी अन्य व्याकरण अनुवाद विषयक पुस्तक का मुखापेक्षी होना नहीं पड़ेगा। इसमें मेरी दृष्टि रही है कि यह पुस्तक स्वयं शिक्षक का कार्य भी करे अर्थात् इसमें सरल भाषा और संवादात्मक शैली का प्रयोग करके प्रयास किया है कि अध्येता को कक्षा में अध्ययन करने जैसी ही प्रतीति हो।

इसमे सर्वप्रथम लघुसिद्धान्त कौमुदी के अनुसार संज्ञाप्रकरण, स्वर, व्यञ्जन और विसर्ग संधियों को दिया गया है। सूत्रों का क्रम उपयोगिता की दृष्टि से बदला है। आशा है एतदर्थ विद्वद्गण क्षमा करेंगे। अन्त में परीक्षा में संधि विषयक प्रश्नों के उत्तर किस प्रकार लिखें, इसका उल्लेख किया है। समास से छात्र सर्वाधिक

घबराते हैं, कुछ ही पृष्ठों में अत्यन्त सरल रूप से समास-विग्रह करने की शैली का प्रतिपादन किया गया है।

कारक-प्रकरण में अत्यन्त मुख्य सूत्रों का सोदाहरण स्पष्टीकरण किया गया है। लघुसिद्धान्त कौमुदी के स्त्री-प्रत्यय, कृदन्त और तद्धित प्रत्ययों को नियोजित किया है। छात्रों को प्रकृति-प्रत्यय निर्देश के विषय में जिज्ञासा रहती है, उसका भी प्रत्यय-विवेचन के बाद उल्लेख किया गया है।

शब्दरूप और धातुरूप विशेषतया परीक्षा की दृष्टि से संगृहीत किये गये हैं, यद्यपि इनका संस्कृत अनुवाद में भी उपयोग अपेक्षित है। इस पुस्तक का हृदय ''अनुवाद की सरलतम विधि'' कहा जा सकता है। संस्कृत-अनुवाद प्रमुख पांच लकारों में क्रमशः अपेक्षित नियमों को समझाते हुए दिया गया है। मात्र १५ दिनों में संस्कृत अनुवाद सिखाना इस अंश का मुख्य उद्देश्य है। अभ्यासों में हिन्दी वाक्यों के बाद उनका संस्कृत अनुवाद भी किया है। जिससे छात्र स्वयं ही अपनी गलतियों से परिचित हो सकें, उन्हें इसके लिये किसी अध्यापक के पास नहीं जाना पड़े।

अन्त में परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी कुछ संस्कृत निबन्धों का उल्लेख करने के बाद छन्द-विषयक चर्चा भी की गई है। परिशिष्ट में इस पुस्तक में आए सूत्रों की अकारादिक्रम से सूची दी गई है।

वस्तुतः यह पुस्तक सरलता का ध्यान रखते हुए प्रौढ़ संस्कृत व्याकरण शिक्षा की दृष्टि से प्रस्तुति मात्र है। आशा है यह भी इसके पूर्वभाग के समान लोकप्रिय होगी। साथ ही मेरा प्रिय छात्र-छात्राओं और आदरणीय विद्वान् महानुभावों से विनम्र निवेदन है कि इस पुस्तक के अध्ययन में जो भी कठिनाई अनुभव हो अथवा उनका कोई सुझाव हो तो वे अवश्य ही अवगत कराने का कष्ट करें।

छात्र प्रायः एक प्रश्न करते आए हैं कि परीक्षा में क्या उपयोगी है। उनकी इस जिज्ञासा का निवारण भी हमने कर दिया है। सूत्रों की व्याख्या में सूत्र के अभिप्राय के बताकर सिद्धान्त पक्ष की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उदाहरण, स्पष्टीकरण और साथ ही कुछ इतर उदाहरण भी विषय को भलीभाँति समझाने के लिये दिए हैं। फिर भी मेरा प्रयास कितना सार्थक है यह निर्णय तो आप सब ही करेंगे।

तदनन्तर सर्वप्रथम मैं उन विद्वानों के चरणों में नतमस्तक हूँ जिनकी विद्वत्तापूर्ण संरचनाओं से इसके लेखन में मुझे सहायता प्राप्त हुई।

साथ ही इस पुस्तक की प्रेरणास्रोत मेरी सहधर्मिणी डॉ. प्रतिमा शास्त्री (हिन्दी-व्याख्याता-स्कूल शिक्षा) के प्रति भी भूरिशः धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने मेरे अनेक दायित्वों को अपने ऊपर लेकर निरन्तर सहयोग प्रदान किया।

नन्हें आत्मज आयुष्मान् सुवासित शास्त्री एवं प्रिय कु. प्राची शास्त्री को भी हार्दिक शुभाशीर्वाद प्रेषित करता हूँ, क्योंकि इस कार्य की पूर्णता के समय उनका अधिकृत स्नेह उन्हें नहीं मिल सका।

अन्त में मैं परमादरणीय विद्वानों की सेवा में मात्र इतना ही निवेदन करना चाहूँगा कि इस पुस्तक की सभी अच्छाइयाँ गुरुजनों की कृपा का फल है और जो गलतियाँ है वे मेरे प्रमाद अथवा अज्ञानता का परिणाम हैं। फिर भी यदि यह पुस्तक संस्कृत प्रचार-प्रसार में उपयोगी हो सके तो मैं इसे अपना सौभाग्य मानूँगा। इति शुभम्।

विदुषां वशंवद

— राकेश शास्त्री

शास्त्रि-निलयम्, १-एच-३१,
हाउसिंग बोर्ड कालोनी,
बांसवाड़ा (राज.) दूरभाष– ४१०२६

विषयानुक्रमणिका

क. यत्किञ्चित्	७
ख. विषयानुक्रमणिका	११
१. संज्ञा-प्रकरण	१३
२. स्वर-संधि (अच्)	२०
३. व्यञ्जन-संधि (हल्)	३८
४. विसर्ग-संधि	६५
५. संधि (सिद्धि) प्रकरण	७०
६. समास-प्रकरण	७६
७. कारक-प्रकरण	८२
८. परीक्षा में उत्तर लिखने की विधि	९१
९. स्त्री-प्रत्यय	९१
१०. कृदन्त-प्रत्यय	९८
११. तद्धित-प्रत्यय	१२२
१२. प्रकृति-प्रत्यय निर्देश	१३४
१३. शब्द-रूप	१३८
१४. धातु-रूप	१५१
१५. अनुवाद की सरलतम विधि (मात्र १५ दिनों में)	१५७
१६. संस्कृत-निबन्ध (संस्कृत-महत्त्वम्, विद्या, भारतीया संस्कृतिः, सत्संगतिः, परोपकारः, उद्योगः, सत्यम्)	२१०
१७. छन्दःज्ञान	२१९
१८. परिशिष्ट	२२६

अथ संज्ञा प्रकरण

माहेश्वर सूत्र

अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण् ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल्।

ये १४ माहेश्वर सूत्र हैं। इनके विषय में मान्यता है कि भगवान् शिव के डमरू से इनका निर्गमन हुआ है। आचार्य पाणिनि के व्याकरण में इनका संक्षिप्तीकरण के लिये अत्यन्त प्रयोग हुआ है। इन सूत्रों से ४२ प्रत्याहार संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया के लिए ही बनाए गए हैं। इन सूत्रों में अन्तिम वर्ण की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होती है और इत् संज्ञक वर्ण का लोप हो जाता है, अर्थात् जब हम अण् प्रत्याहार कहते हैं तो उसका अभिप्राय केवल अ, इ, उ इन तीन वर्णों से ही होता है। इस प्रसङ्ग में यह ध्यातव्य है कि यहाँ इनके दीर्घ रूपों का भी ग्रहण किया जाएगा।

१. **हलन्त्यम्** (१/३/३)- (V. M. Imp.) व्याकरणशास्त्र में आचार्य पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि आदि आचार्यों द्वारा उपदिष्ट धातुसूत्र, गणपाठ, उणादि, लिंगानुशासन, आगम, प्रत्यय और आदेश आदि में अन्तिम हल् अर्थात् व्यञ्जन की इत् संज्ञा होती है। अतः इसे इत् संज्ञक सूत्र भी कहा जा सकता है।

जैसे— अइउण् में ण् की, अन्तिम हल् अर्थात् व्यञ्जन होने के कारण प्रस्तुत सूत्र से इत् संज्ञा हुई, जिसका मुख्य प्रयोजन 'ण्' का लोप करना है।

२. **तस्य लोपः** (१/३/९)– जिन वर्णों की इत् संज्ञा होती है, उनका इस सूत्र से लोप हो जाता है। जैसे पूर्व उदाहरण में अइउण् के ण् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा हुई तथा इस सूत्र से उसका लोप हुआ।

३. **अदर्शनम् लोपः** (१/१/६०) (M. Imp.)– लोप का अभिप्राय है, दिखाई न देना अर्थात् जिस वर्ण का लोप कहा जाता है, उसे उपस्थित रहने पर भी अनुपस्थितवत् मानकर ही कार्य करते हैं। जैसे अइउण् में ण् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा करने के पश्चात् 'तस्य लोपः' से उसका लोप हुआ। पुनः प्रस्तुत सूत्र से 'ण्' को अनुपस्थित मानकर 'अण्' प्रत्याहार कहे जाने पर केवल अ, इ, उ, से ही अभिप्राय लिया गया।

४. **आदिरन्त्येन सहेता** (१/१/७१)– यह प्रत्याहार विधायक सूत्र है अर्थात् इसी सूत्र के आधार पर प्रत्याहार आदि बनाए गए हैं। प्रत्याहार का अर्थ है, संक्षेप में कहना। व्याकरण शास्त्र में इन प्रत्याहारों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इस सूत्र के अनुसार इत् संज्ञक अन्तिम वर्ण के साथ आदिवर्ण, अपना तथा बीच के सभी वर्णों का बोध कराता है, जैसे अ इ उ ण् में इत् संज्ञक अन्तिम वर्ण ण् सहित आदिवर्ण अ के बीच के सभी वर्णों की प्रस्तुत सूत्र से प्रत्याहार संज्ञा हुई।

५. **उकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः** (१/२/२७)– जिस स्वर का उच्चारण एक मात्रा काल में होता है उसे ह्रस्व, दो मात्रा वाले को दीर्घ तथा तीन मात्रा काल वाले स्वर को प्लुत कहा जाता है। जैसे-- एक मात्रा काल = उ, दो मात्रा काल = ऊ तथा तीन मात्रा काल = उ ३।

६. **उच्चैरुदात्तः** (१/२/२९)– मुख में कण्ठ, तालु आदि उच्चारण स्थानों के ऊपर के भाग से जिस स्वर की उत्पत्ति होती है, उस स्वर को उदात्त कहते हैं। उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता है तथा इन स्वरों का केवल वैदिक साहित्य में ही प्रयोग मिलता है। जैसे— अग्निः यहाँ निः उदात्त स्वर युक्त है, इसीलिए इस पर कोई चिह्न नहीं लगाया गया है।

७. **नीचैरनुदात्तः** (१/२/३०)– मुख में कण्ठ, तालु आदि उच्चारण स्थानों के दो भाग होते हैं, एक ऊपर का, दूसरा नीचे का। नीचे के भाग से उत्पन्न स्वर अनुदात्त होता है। इसका भी केवल वैदिक साहित्य में प्रयोग हुआ है। अनुदात्त स्वर के नीचे पड़ी लाइन (-) का प्रयोग करते हैं। जैसे— राम् में म अनुदात्त स्वर युक्त कहा जाएगा।

८. **समाहारः स्वरितः** (१/२/३१)– समाहार का अर्थ है मेल, अर्थात् जिस स्वर में उदात्त, अनुदात्त दोनों स्वरों का मेल हो तो उसे स्वरित कहा जाएगा। इस स्वर का भी वेदों में ही प्रयोग हुआ है। इसे प्रदर्शित करने के लिये इसके ऊपर खड़ी लाइन (।) खीचतें हैं। जैसे योगें यहाँ ग में स्थित ए स्वरित चिह्न युक्त कहा जाएगा अथवा पितरम् यहाँ र स्वरित चिह्न युक्त प्रयुक्त हुआ है। स्वरित का उच्चारण न बहुत ऊँचा और न ही बहुत नीचा होता है, अपितु मध्यम होता है।

९. **मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः** (१/१/८)– जिन वर्णों के उच्चारण में मुख और नासिका दोनों अवयवों का प्रयोग करते हैं, उन वर्णों को अनुनासिक कहा जाता है, किन्तु जो बिना नासिका के केवल मुख की सहायता से ही उच्चारण किये जाते हैं, उन्हें अननुनासिक कहते हैं। जैसे— ङ्, न्, ञ्, ण्, म्, इनका उच्चारण मुख और नासिका दोनों की सहायता से किया जाता है, इसलिए ये अनुनासिक वर्ण कहलाएँगे, क्योंकि 'न' का उच्चारण दन्त तथा नासिका दोनों से ही हो सकेगा, केवल दन्त से नहीं। इसी प्रकार अन्य वर्णों में भी समझना चाहिए।

१०. **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** (१/१/९)— जिन वर्णों के तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न समान होते हैं, उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है। ऋ और लृ इन दोनों की भी आचार्य पाणिनि ने सवर्ण (संज्ञा) की है। जैसे— अ, आ, आ ३, अ, अ॒, अ॑, ह्रस्व अ, दीर्घ आ, प्लुत आ ३। इसी प्रकार उदात्त अ, अनुदात्त अ तथा स्वरित अ की तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न समान होने के कारण परस्पर सवर्ण संज्ञा कहलाएगी। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

११. **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** (१/१/६९)– जिसका विधान न किया गया हो ऐसे अण् एवं उदित की सवर्ण संज्ञा होती है, यदि वह प्रत्यय का न हो तो। तात्पर्य यह है कि अविधीयमान (अण्) अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्, ल् तथा (उदित) कु, चु, टु, तु, पु[1] अपना तथा अपने सवर्णों का भी बोध कराते हैं। बशर्ते कि ये सब प्रत्यय में प्रयुक्त न हुए हों। केवल इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार के लिए ण् लण् सूत्र से लिया जाता है। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। जैसे— **इकोयणचि** सूत्र में इक् अविधीयमान है, क्योंकि विधान तो उसके स्थान पर यण् का हुआ है तथा इक् प्रत्याहार में इ, उ, ऋ, लृ आते हैं, अविधीयमान होने के कारण इ, उ, ऋ, लृ, यहाँ अपना एवं अपने सवर्णों (इ, ई, इ ३ आदि) का बोध कराते हैं। इनके सवर्ण दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त आदि अन्य भेद भी होते हैं।

१२. **परः सन्निकर्षः संहिता** (१/४/१०९)– वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं! संहिता कहने पर संधि कार्य आदि का विधान होता है। जैसे— सुधी + उपास्यः, में ई के पश्चात् बिना किसी व्यवधान के उपास्य में उ प्रयुक्त हुआ है। इसलिए यहाँ ई और उ इन दोनों वर्णों की समीपता को संहिता कहा जाएगा।

१३. **हलोऽनन्तराःसंयोगः** (१/१/७)– स्वर वर्ण के व्यवधान के बिना दो या दो से अधिक व्यञ्जनों के प्रयोग को संयोग कहते हैं। अनन्तर अर्थात् अन्तर रहित, हलः अर्थात् व्यञ्जन का प्रयोग संयोग कहलाता है। जैसे— इन्द्र शब्द में न् और द् के बीच कोई भी स्वर व्यवधान के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। अतः इन दोनों वर्णों की संयोग संज्ञा कहलाएगी।

१४. **सुप्तिङन्तं पदम्** (१/४/१४)– (V. M. Imp.) सुप् एवं तिङ् प्रत्यय युक्त शब्दों की पद संज्ञा होती है। यहाँ सुप् और तिङ् दोनों प्रत्याहार है। सुप् से अभिप्राय सु, औ, जस् आदि सातों विभक्तियों के तीनों वचनों के कुल २१ प्रत्ययों से है[2] तथा तिङ् प्रत्याहार में तिप्, तस्, झि आदि नौ परस्मैपदी धातुओं के तथा नौ आत्मनेपदी धातुओं के कुल १८ प्रत्यय[3] आते हैं। अतः इन सुप् और तिङ् प्रत्ययों से बनने वाले क्रमशः रामः, रामौ, रामाः आदि सुबन्तों की तथा पठति, पठतः, पठन्ति आदि तिङन्तों की उपर्युक्त सूत्र से पद संज्ञा होगी। इस संज्ञा का प्रयोजन शब्द को प्रयोग के योग्य बनाना है, क्योंकि व्याकरण का सिद्धान्त

---

१. व्याकरणशास्त्र में कु आदि कहने से सर्वत्र कवर्ग का बोध होता है। इसी प्रकार 'चु' कहने पर चवर्ग, टु' कहने पर टवर्ग तथा 'तु', 'पु' कहने पर तवर्ग एवं पवर्ग का बोध होता है।

२. सु, औ, जस्। अम्, औट्, शस्। टा, भ्याम्, भिस्। ङे, भ्याम्, भ्यस्। ङसि, भ्याम्, भ्यस्। ङस्, ओस्, आम्। ङि, ओस्, सुप्।

३. तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्। त, अताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम् इड्, वहि, महिङ्।

है— **'नापदं प्रयुञ्जीत'** जो पद नहीं है उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे— राम + सु = रामः, सुबन्त पद संज्ञा। पठ् + तिप् = पठति, तिङन्त पद संज्ञा।

स्वरों के १८ भेद– अ, इ , उ, ऋ में से प्रत्येक के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन भेद, पुनः इनके अनुनासिक तथा अननुनासिक भेद से छः भेद और उसके बाद उदात्त, अनुदात्त, स्वरित भेद से कुल १८ भेद होते हैं।

अ, इ, उ, ऋ के १८ भेद

- दीर्घ
  - अनुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
  - अननुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
- प्लुत
  - अनुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
  - अननुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
- ह्रस्व
  - अनुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
  - अननुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित

इनमें से ए, ओ, ऐ, औ के ह्रस्व भेद न होने के कारण केवल बारह भेद होते हैं तथा लृ वर्ण के दीर्घ के अभाव के कारण १२ भेद होते हैं। इन भेदों को इस प्रकार भी दर्शाया जा सकता है:

ए, ओ, ऐ, औ के १२ भेद

- दीर्घ
  - अनुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
  - अननुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
- प्लुत
  - अनुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
  - अननुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित

लृ के १२ भेद

- ह्रस्व
  - अनुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
  - अननुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
- प्लुत
  - अनुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित
  - अननुनासिक
    - उदात्त
    - अनुदात्त
    - स्वरित

उच्चारणस्थान— वर्णों के उच्चारण स्थान में मुख के आन्तरिक अवयवों की सहायता ली जाती है। मुख के जिस अवयव से जिस वर्ण का उच्चारण किया जाता है, वही उसका उच्चारण स्थान कहलाता है—

(क) **अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः**— अ, आ, कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्) ह् और विसर्ग (:) का मुख में उच्चारण स्थान कण्ठ है।

(ख) **इचुयशानां तालुः**— इ, ई, चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) य्, और श् का मुख में उच्चारण स्थान तालु है।

(ग) **ऋटुरषाणां मूर्धा**— ऋ, ॠ, टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्) र् और ष् का उच्चारण स्थान मुख में मूर्धा है।

(घ) **लृतुलसानां दन्ताः**— लृ, लॄ, तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) ल् और स् का मुख में उच्चारण स्थान दन्त है।

(ङ) **उपूपध्मानीयानामोष्ठौ**— उ, ऊ, पवर्ग (प्, फ्, ब्, भ्, म्) और (उपधमानीय प ँ फ ँ) का उच्चारण स्थान मुख में ओष्ठ है।

(च) **ञमङणनानां नासिका च**— ञ्, म्, ङ्, ण्, न् का उच्चारण स्थान पूर्व कथित स्थान के साथ-साथ नासिका भी होता है। जैसे—

ङ् = कंठ + नासिका, ञ् = तालु + नासिका, ण् = मूर्धा + नासिका

न् = दन्त + नासिका, म् = ओष्ठ + नासिका।

(छ) **एदैतोः कण्ठतालुः**— ए, ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ और तालु है।

(ज) **ओदौतोः कण्ठोष्ठम्**— ओ, औ का उच्चारण स्थान कण्ठ और ओष्ठ है।

(झ) **वकारस्य दन्तोष्ठम्**— व् का उच्चारण स्थान दन्त और ओष्ठ है।

(ञ) **जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्**— जिह्वामूलीय (क ँ ख ँ) का उच्चारण स्थान मुख में जिह्वा का मूल है।

(ठ) **नासिकानुस्वारस्य**— अनुस्वार का उच्चारण स्थान केवल नासिका है।

उच्चारण स्थान के आभ्यन्तर प्रयत्न को इस प्रकार भी दर्शाया जा सकता है—

कण्ठ	**तालु**	**मूर्धा**
अ, आ, क् ख्, ग्, घ्, ङ् ह्, विसर्ग (:)	इ, ई, च्, छ् ज्, झ्, ञ् य्, श्	ऋ, ॠ, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, र्, ष्

दन्त	ओष्ठ	नासिका
लृ, लॄ, त्, थ्, द्, ध्, न्, ल्, स्,	उपध्मानीय प˘, फ˘, उ, ऊ, प्, फ्, ब्, भ्, म्	अनुस्वार (ं)

कण्ठतालु	कण्ठोष्ठ	दन्तओष्ठ
ए, ऐ,	ओ, औ,	व्

कण्ठ + नासिका	तालु + नासिका	मूर्धा + नासिका
ङ्	ञ्	ण्

दन्त + नासिका	ओष्ठ + नासिका	जिह्वामूलीय
न्	म्	क˘, ख˘

यहाँ तक हमनें उच्चारण स्थान का विस्तार से उल्लेख किया। अब हम प्रयत्न के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

प्रयत्न दो प्रकार का होता है—

१. आभ्यन्तर प्रयत्न। २. बाह्य प्रयत्न।

१. आभ्यन्तर प्रयत्न—

१. इनमें से आभ्यन्तर प्रयत्न के पाँच भेद होते हैं—

क. **स्पृष्ट**– (कादयोमावसाना स्पर्शाः) क से लेकर म तक सभी वर्णों का स्पृष्ट आभ्यन्तर प्रयत्न है।

ख. **ईषद् स्पृष्ट**– य्, व्, र्, ल्, अन्तस्थों का ईषद्स्पृष्ट आभ्यन्तर प्रयत्न है।

ग. **विवृत**– अ से लेकर औ तक के सभी स्वरों का विवृत आभ्यन्तर प्रयत्न है।

घ. **ईषद् विवृत**– श्, ष्, स् और ह् वर्णों का ईषद् विवृत आभ्यन्तर प्रयत्न है।

ङ. **संवृत**– ह्रस्व अ का उच्चारण संवृत आभ्यन्तर प्रयत्न के अन्तर्गत आता है।

२. **बाह्यप्रयत्न**— बाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का होता है– विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।

आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न दोनों को इस प्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं—

आभ्यन्तर प्रयत्न—

स्पृष्ट	ईषद् स्पृष्ट	विवृत (दीर्घ + प्लुत रूप)
क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, ब्, भ्, म्,	य् व्, र्, ल्,	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ,

ईषद् विवृत्	संवृत
श्, ष्, स्, ह्	ह्रस्व अ (ऽ)

बाह्य प्रयत्न—

विवार	संवार	श्वास
क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ्, श्, स्, ष्,	य्, व्, र्, ल्, ग् घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ्, ड्, ढ् ण्, द्, ध्, न्, ब्, भ्, म्	क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, ध्, प्, फ्, श्, ष्, स्

नाद	घोष	अघोष
य्, व्, र्, ल्, ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ्, ड्, ढ्, ण्, द्, ध्, न्, ब्, भ्, म्,	ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ्, ड्, ढ्, ण्, द्, ध्, न्, ब्, भ्, म्, य्, व्, र्, ल्,	क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ्, श्, ष्, स्

अल्पप्राण	महाप्राण	उदात्त
न्, प्, ब्, म्, क्, ग्, ङ्, य्, व्, र्, ल्, च्, ज्, ञ्, ट्, ड्, ण्, त्, द्, न्	ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, ढ्, थ्, ध्, फ्, भ्, श्, ष्, स्, ह्	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ

अनुदात्त	स्वरित
अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ए, औ	अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ

* * *

२. अच् संधि (स्वर संधि)

संस्कृत के प्रत्येक शब्द के अन्त में कोई स्वर, व्यञ्जन, अनुस्वार अथवा विसर्ग अवश्य रहता है और उस शब्द के आगे किसी दूसरे शब्द के होने से जब उनका मेल होता है, तब पूर्व शब्द के अन्त वाले या बाद के शब्द के आरम्भ के स्वर, व्यञ्जन या विसर्ग में कोई परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार मेल होने से जो परिवर्तन होता है, उसे संधि कहते हैं। इस प्रकार संधि का अर्थ है, मेल। इस परिवर्तन में कहीं पर—

१. दो स्वरों के स्थान पर नया स्वर आ जाता है। जैसे— रमा + ईशः = रमेशः।
यहाँ मा में स्थित आ तथा ईशः के ई के स्थान पर नया स्वर ए आ गया है।

२. कहीं पर विसर्ग का लोप हो जाता है– सः + गच्छति = स गच्छति।
यहाँ सः के विसर्गों का लोप हो गया है।

३. कहीं पर दो व्यञ्जनों के बीच नया व्यञ्जन आ जाता है। जैसे— धावन् + अश्वः- धावन्नश्वः। यहाँ एक न् का अतिरिक्त आगम हो गया।

अतः तत् तत् विशेषता के कारण इसे क्रमशः स्वर संधि, विसर्ग संधि तथा व्यञ्जन संधि कहा जाएगा अर्थात् स्वर के साथ स्वर के मेल होने के परिणामस्वरूप परिवर्तन को स्वर संधि कहा जाएगा। इसी का दूसरा नाम अच् संधि भी है। यहाँ अच् प्रत्याहार है, जिसके अन्तर्गत– अइउ, ऋऌ, एओ, ऐऔ १४ माहेश्वर सूत्रों मे 'अ' से लेकर 'च्' तक के सभी वर्ण आते हैं, जो स्वर हैं। बीच में प्रयुक्त होने वाले ण्, क्, ङ् तथा च् की **हलन्त्यम्** सूत्र से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। अब हम अच् संधि प्रकरण में स्थित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या करेंगे।

१. **अकः सवर्णे दीर्घः** (६,१ १०१) (M. Imp.)– अक् प्रत्याहार के वर्णों (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) के पश्चात् यदि सवर्ण आता है तो दोनों को मिलाकर दीर्घ आदेश हो जाता है। यहाँ सवर्ण से अभिप्राय 'तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्' परिभाषा के अनुसार अ का सवर्ण अ या आ ही होगा। इसके अनुसार–

अ + अ = आ→	सुर + अरिः = सुरारिः,	र् + अ + अ + रिः
अ + आ = आ→	हिम + आलयः = हिमालयः	म् + अ + आ + लयः

आ + अ = आ→	दया + अर्णवः = दयार्णवः,	य् + आ + अ + र्णवः
आ + आ = आ→	विद्या + आलयः = विद्यालयः,	द् + य् + आ + आ + लयः
इ + इ = ई→	गिरि + इन्द्रः = गिरीन्द्रः,	र् + इ + इ + न्द्रः
इ + ई = ई→	गिरि + ईशः = गिरीशः,	र् + इ + ई + शः
ई + इ = ई→	सुधी + इन्द्रः = सुधीन्द्रः,	ध् + ई + इ + न्द्रः
ई + ई = ई→	श्री + ईशः = श्रीशः,	श्र् + ई + ई + शः
उ + उ = ऊ→	गुरु + उपदेशः = गुरूपदेशः,	र् + उ + उ + पदेशः
ऊ + उ = ऊ→	वधू + उत्सवः = वधूत्सवः,	ध् + ऊ + उ + त्सवः
उ + ऊ = ऊ→	लघु + ऊर्मिः = लघूर्मिः,	घ् + उ + ऊ + र्मिः

इसी प्रकार ऋ, ऌ आदि के विषय में भी समझना चाहिए। उपर्युक्त सभी उदाहरण समझाने की दृष्टि से लिखे गये हैं। परीक्षा में उक्त उदाहरणों में से किसी एक उदाहरण को देना उपयुक्त होगा। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार करना चाहिए—

उदाहरण— सुर + अरिः = सुरारिः।

उक्त उदाहरण में सुर के र में स्थित अ, जो अण् प्रत्याहार का वर्ण है, के पश्चात् इसका सवर्ण अरिः में स्थित अ आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से दीर्घ आ आदेश होकर सुरारिः शब्द निष्पन्न हुआ। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों का भी स्पष्टीकरण किया जा सकता है। छात्रों को इसका अभ्यास स्वयं करना चाहिए।

२. **इकोयणचि** (६/१/७७) (M Imp.)– संहिता के विषय में इक् प्रत्याहार के वर्णों को यण् आदेश हो जाता है, बाद में अच् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो अर्थात् इक् प्रत्याहार मे इ, उ, ऋ, ऌ ये चार वर्ण आते हैं। यदि इनके बाद इनसे भिन्न स्वर आएँ तो इन्हें क्रमशः इ को य्, उ को व्, ऋ का र्, ऌ का ल् आदेश हो जाते हैं।

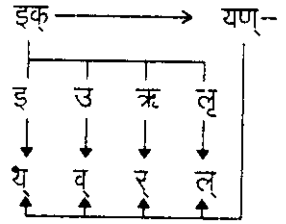

अच् (इ, उ, ऋ, ऌ से भिन्न)

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि इ या ई के बाद इ या ई को छोड़कर कोई भिन्न स्वर आए तो इ या ई के स्थान पर य् हो जाता है। इसी प्रकार यदि उ या ऊ के बाद उ या ऊ को छोड़कर कोई भिन्न स्वर आए तो उ या ऊ के स्थान पर व् हो जाता है। ऋ या ॠ के बाद यदि इन दोनों को छोड़कर कोई अन्य स्वर

आए तो इनके स्थान पर र् हो जाता है एवं लृ या लॄ के बाद इन दोनों को छोड़कर कोई भिन्न स्वर आए तो इन दोनों के स्थान पर ल् हो जाता है।

जैसे— यदि + अपि = यद्यपि। यहाँ यदि के द् में स्थित इ के बाद इ से भिन्न स्वर अपि का अ आने के कारण उक्त सूत्र से इ को य् होकर यद्यपि शब्द बना।

यदि + अपि = यद्यपि

द् + इ + अ

य + द् + य् + अ + पि

य द् य पि =यद्यपि (जोड़ने पर)

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिए।

इ, ई→ य् + इ, ई से भिन्न स्वर

नदी + उदकम् = नद् + ई→ य् + उदकम् = नद्युदकम्
इति + आह = इत् + इ→ य् + आह = इत्याह
प्रति + एकः = प्रत् + इ→ य् + एकः = प्रत्येकः
सुधी + उपास्यः = सुध् + ई→ य्+उपास्यः = सुध्युपास्यः
प्रति + उपकारः = प्रत् + इ→ य् + उपकारः = प्रत्युपकारः
पठति + अत्र = पठत् + इ→ य् + अत्र = पठत्यत्र

उ, ऊ→ व् + उ, ऊ से भिन्न स्वर

पठतु + अत्र = पठत् + उ→ व् + अत्र = पठत्वत्र
अनु + अयः = अन् + उ→ व् + अयः— अन्वयः
वधू + आज्ञा = वध् + ऊ→ व् + आज्ञा = वध्वाज्ञा
पठतु + एकः = पठत् + उ→ व् + एकः = पठत्वेकः
मधु + अरिः = मध् + उ→ व् + अरिः = मध्वरिः
शिशु + ऐक्यम् = शिश् + उ→ व् + ऐक्यम् = शिश्वैक्यम्

ऋ, ॠ, — र् + ऋ, ॠ से भिन्न स्वर

पितृ + उपदेशः = पित् + ऋ→ र् + उपदेशः = पित्रुपदेशः
मातृ + अनुमतिः = मात् + ऋ→ र् + अनुमतिः = मात्रनुमतिः
धातृ + अंशः = धात् + ऋ→ र् + अंशः = धात्रंशः
कर्तृ + ई = कर्त् + ऋ→ र् + ई = कर्त्री

३. **एचोऽयवायावः** (६/१/७८) (V. M. Imp.)– एच् प्रत्याहार के वर्णों को क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हो जाते हैं। एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत ए, ओ, ऐ, औ ये चार वर्ण आते हैं। इस प्रकार सूत्र का अर्थ हुआ– ए, ओ, ऐ, औ के बाद कोई भिन्न स्वर आए तो ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् तथा औ को आव् आदेश[1] हो जाते हैं।

ए को अय् + (बाद में कोई भिन्न स्वर होने पर)—

जैसे— कवे + ए = कव् + ए→ अय् + ए = कवये
शे + अनम् = श् + ए→ अय् + अनम् = शयनम्
जे + अः = ज् + ए→ अय् + अः = जयः
ने + अनम् = न् + ए→ अय् + अनम् = नयनम्
संचे + अः = संच् + ए→ अय् + अः = संचयः

ओ को अव् बाद में कोई भिन्न स्वर आने पर—

भो + अति = भ् + ओ→ अव् + अति = भवति
पो + अनः = प् + ओ→ अव् + अनः = पवनः
गुरो + ए = गुर् + ओ→ अव् + ए = गुरवे
श्रो + अणम् = श्र् + ओ→ अव् + अणम् = श्रवणम्

ऐ को आय् + कोई भिन्न स्वर—

गै + अकः = ग् + ऐ→ आय् + अकः = गायकः
नै + अकः = न् + ऐ→ आय् + अकः = नायकः
गै + अति = ग् + ऐ→ आय् + अति = गायति

औ को आव् + कोई भिन्न स्वर—

पौ + अकः = प् + औ→ आव् + अकः = पावकः
द्वौ + एतौ = द्व् + औ→ आव् + एतौ = द्वावेतौ
भौ + अकः = भ् + औ→ आव् + अकः = भावकः

पावकः का स्पष्टीकरण— पौ + अकः इस विग्रह में स्थित औ के पश्चात् अकः के प्रारम्भ में प्रयुक्त अ स्वर के कारण उपर्युक्त '**एचोऽयवायावः**' सूत्र से औ को आव् आदेश होकर प् + आव् + अकः बना। पुनः जोड़ने पर पावकः शब्द निष्पन्न हुआ।

---

१. आदेश-शत्रुवत् और आगम मित्रवत् होता है अर्थात् जब कहीं आदेश कहा जाता है वह वर्ण पूर्व स्थित वर्ण को हटाकर अपना अस्तित्व बना लेता है, किन्तु आगम की स्थिति में पूर्व वर्ण का अस्तित्व भी बना रहता है और दूसरा वर्ण भी मित्रवत् पास आकर बैठ जाता है।

४. **वृद्धिरेचि** (६/१/८८) (M. Imp.)– यदि अ या आ के बाद ए या ऐ आए तो दोनों को मिलाकर वृद्धि एकादेश ऐ हो जाता है। इसी प्रकार अ या आ के बाद ओ या औ आए तो औ वृद्धि एकादेश हो जाता है।

अद्यैव	= अद्य + एव	= अ + ए = ऐ	वृद्धि एकादेश
देवैश्वर्यम्	= देव + ऐश्वर्यम्	= अ + ऐ = ऐ	
तथैव	= तथा + एव	= आ + ए = ऐ	
विद्यैश्वर्यम्	= विद्या + ऐश्वर्यम्	= आ + ऐ = ऐ	

अ, आ + ओ, औ = औ वृद्धि एकादेश

तण्डुलौदनम्	= तण्डुल + ओदनम्	= अ + ओ = औ	वृद्धि एकादेश
महौषधिः	= महा + औषधिः	= आ + औ = औ	
देवौदार्यम्	= देव + औदार्यम्	= अ+औ= औ	
महौषधम्	= महा + ओषधम्	= आ + ओ = औ	

अद्यैव शब्द का स्पष्टीकरण—

अद्य + एव = अद्यैव। इस विग्रह में अद्य के य में स्थित अ के बाद एव का 'ए' आने के कारण अ + ए दोनों मिलाकर ऐ वृद्धि एकादेश होकर बना— अद्यैव।

५. **आद् गुणः** (६/१/८७) (Imp.)— यदि अ या आ के बाद इ, या ई आए तो दोनों के स्थान पर 'ए' गुणादेश हो जाता है। इसी प्रकार अ या आ के बाद उ या ऊ आए तो दोनों के स्थान पर ओ गुणादेश हो जाता है। अर्थात्–

अ + इ = ए	= उप + इन्द्रः	= उपेन्द्रः
आ + इ = ए	= तथा + इति	= तथेति
अ + ई = ए	= सुर + ईशः	= सुरेशः
आ + ई = ए	= रमा + ईशः	= रमेशः
अ + उ = ओ	= हित + उपदेशः	= हितोपदेशः
आ + उ = ओ	= गंगा + उदकम्	= गंगोदकम्
अ + ऊ = ओ	= पीन + ऊरूः	= पीनोरूः
आ + ऊ = ओ	= महा + ऊरूः	= महोरूः

उपेन्द्रः शब्द का स्पष्टीकरण— उप + इन्द्र = उपेन्द्रः। इस विग्रह मे उप के प में स्थित अ के पश्चात् इन्द्र में स्थित इ आने के कारण '**आद्गुणः**' सूत्र से अ + इ = ए गुणादेश होकर उपेन्द्रः शब्द निष्पन्न हुआ।

इसी प्रकार इतर उदाहरणों के रूप में महेशः, गणेशः, नेदम्, परोपकारः महोत्सवः, पश्योपरि आदि को भी समझना चाहिए।

६. **उरणरपरः**— (१/१/५१) यह गुण संधि का पूरक सूत्र है अर्थात् '**आद्गुणः**' सूत्र अ + इ = ए, अ + उ = ओ का निर्देश कर रहा था, किन्तु यह सूत्र ऋ, ऌ को रपर् करने का विधान कर रहा है। तदनुसार अ + ऋ = अर् तथा अ + ऌ = अल् हो जाता है अर्थात् '**अदेङ् गुणः**' परिभाषा के अनुसार अ गुण होगा, किन्तु उसे रपर् आदेश होकर अर् और अल् रूप होंगे। तदनुसार—

अ + ऋ = अर्। आ + ऋ = अर्। अ + ॠ= अर्। आ + ॠ= = अर्

अ + ऌ = अल्। आ + ऌ = अल्। आ + ॡ = अल्। आ + ॡ = अल्

जैसे—

ब्रह्म + ऋषिः =	अ + ऋ	= अर्	= ब्रह्मर्षिः
ग्रीष्म + ऋतुः =	अ + ऋ	= अर्	= ग्रीष्मर्तुः
देव + ऋतुः =	अ + ऋ	= अर्	= देवर्तुः
तव + ऌकारः =	अ + ऌ	= अल्	= तवल्कारः

ब्रह्मर्षिः शब्द का स्पष्टीकरण— ब्रह्म + ऋषिः = ब्रह्मर्षिः। इस विग्रह में ब्रह्म के अन्त में स्थित म के अ (म् + अ = म) के बाद ऌकार का ऌ आने पर '**आद्गुणः**' सूत्र से गुण आदेश तथा उपर्युक्त '**उरणरपरः**' सूत्र से उसे रपर् होकर अर् हुआ तथा ब्रह्म + अर् + षिः = ब्रह्मर्षिः शब्द बना।

७. **एङिपररूपम्** (६/१/९४) (Imp.)– यह वस्तुतः वृद्धिरेचि सूत्र का अपवाद सूत्र है, किन्तु सामान्यतः इसे पररूप संधि भी कहते हैं। इसे समझने के लिये एक दृष्टि वृद्धिरेचि सूत्र पर डालनी होगी। वहाँ अ, आ + ए, ऐ = ऐ तथा अ, आ + ओ, औ = औ वृद्धि विधान किया गया था।

किन्तु इस सूत्र के अनुसार यदि अकारान्त उपसर्ग के पश्चात् एकारादि या ओकारादि धातु का प्रयोग होता है, तो उपसर्ग में प्रयुक्त अकार तथा धातु के प्रारम्भ में प्रयुक्त एकार या ओकार क्रमशः एकार व ओकार ही रहते हैं अर्थात् इस संधि में पूर्व और परवर्ण के स्थान पर परवर्ण ही रहता है, इसीलिए इसे पररूप संधि भी कहते हैं।

उपसर्ग का अ + ए धातु का = ए

उपसर्ग का अ + ओ धातु का = ओ

वृद्धि संधि और इसमें केवल दो भिन्नताएँ हैं— १. अकार उपसर्ग का होना चाहिए।

२. उसके बाद धातु का ए या ओ वर्ण आना चाहिए। जबकि वृद्धि संधि में ऐसी अनिवार्यताएँ नहीं हैं।

यहाँ एङ् प्रत्याहार है। जिसमें ए और ओ दो वर्ण आते हैं।

जैसे—

प्र + एजते = अ + ए = ए (पररूप एकादेश) = प्रेजते

उप + ओषति = अ + ओ = (पररूप एकादेश) = उपोषति

स्पष्टीकरण— प्रेजते उदाहरण में प्र उपसर्ग के अन्त में स्थित अकार के पश्चात् एजते में स्थित धातु का ए आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से अ + ए दोनों को पररूप एकादेश ए होकर बना-प्रेजते।

८. **एङः पदान्तादति** (६/१/१०९) (Imp.)– यदि किसी पद के अन्त में एङ् प्रत्याहार का वर्ण ए या ओ आवे तथा उसके पश्चात् अकार का प्रयोग हो तो इन दोनों वर्णों को ए + अ = ए, ओ + अ = ओ पूर्वरूप एकादेश हो जाता है। यहाँ अ के अस्तित्व को बताने के लिए (ऽ) अंग्रेजी के 'एस' के चिह्न का प्रयोग कर दिया जाता है, यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से इस चिह्न की अनिवार्यता नहीं है। यहाँ पूर्व और पर दोनों वर्णों में पूर्व वर्ण शेष रहता है। इसलिए इसे ही पूर्वरूप संधि भी कहते हैं।

जैसे— ए + अ = ए पूर्वरूप एकादेश

हरे + अव =	ए + अ =	ए = हरेव या हरेऽव
वृक्षे + अस्मिन् =	ए + अ = ए =	वृक्षेस्मिन् या वृक्षेऽस्मिन्
वने + अत्र =	ए + अ =	ए = वनेत्र या वनेऽत्र

ओ + अ = ओ पूर्वरूप एकादेश

बालो + अवदत् =	ओ + अ = ओ, बालोवदत्/बालोऽवदत्
लोको + अयम् =	ओ + अ = ओ, लोकोयम्/लोकोऽयम्
गुरो + अव =	ओ + अ = ओ, गुरोव/ गुरोऽव

स्पष्टीकरण— हरेव पद में हरे के अन्त में प्रयुक्त एङ् प्रत्याहार का वर्ण ए प्रयुक्त हुआ है तथा उसके पश्चात् अव में स्थित अकार आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से पूर्वरूप एकादेश ए + अ = ए होने के कारण हरेव शब्द बना। यहाँ अ की उपस्थिति दर्शाने के लिये **हरेऽव** इस प्रकार भी लिखा जा सकता है। व्याकरण की दृष्टि से दोनों शुद्ध हैं।

अभी तक हमने प्रमुख अच् संधि के सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या की। अब हम शेष सूत्रों की भी व्याख्या करेंगे, किन्तु इन सूत्रों को सौकर्य की दृष्टि से लघुसिद्धान्त कौमुदी के क्रम में न रखकर भिन्न क्रम में रखा गया है, एतदर्थ विद्वद्गण क्षमा करेंगे।

वस्तुतः इस प्रकरण के सभी सूत्र केवल अच् संधि में ही प्रयुक्त होते हों, ऐसी बात नहीं है, किन्तु अच् संधि को सर्वांगीण रूप से समझने के लिए इन सूत्रों का

ज्ञान भी अनिवार्य है। इन सूत्रों में से अनेक सूत्र व्याकरण के व्यवस्थित ज्ञान के लिये अनिवार्य हैं। इसलिए छात्रों को इन सूत्रों का अध्ययन भी मन लगाकर करना चाहिए। यहाँ सूत्र क्रम परीक्षा में उपयोगिता की दृष्टि एवं सरलता को ध्यान में रखकर किया गया है।

९. **वान्तो यि प्रत्यये** (६/१/७९) (Imp.)– यह सूत्र अयादि संधि का अपवाद सूत्र है। इसके अनुसार यकारादि प्रत्यय यदि बाद में हो तो ओ और औ के स्थान पर क्रमशः ओ को अव् औ को आव् आदेश हो जाते हैं।

आपको स्मरण होगा कि अयादि संधि में एच् को क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव्, आदेश होते थे,[1] यदि बाद में कोई स्वर हो तो, किन्तु यह सूत्र बाद में यकारादि (य है आदि, प्रारम्भ में जिसके ऐसा) प्रत्यय हो तो ओ और औ को क्रमशः अव् और आव् के आदेश का विधान कर रहा है।

जैसे— गो + यम् (यत् प्रत्यय) = ग् + ओ→ अव् + यम् = गव्यम्

नौ + यम् (यत् प्रत्यय) = न् + औ→ आव् + यम् = नाव्यम्

स्पष्टीकरण– गो + यम् = गव्यम् इस विग्रह में गो में स्थित ओ के पश्चात् यकार है, प्रारम्भ में जिसके ऐसा यत् प्रत्यय आने पर उपर्युक्त सूत्र से गो के ओ को अव् आदेश होकर गव्यम् शब्द बना।

१०. **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** (१/३/२) (V. M. Imp.)– यह इत्[2] संज्ञा विधायक सूत्र है। इसके अनुसार उपदेश की अवस्था में अन्तिम अनुनासिक अच् अर्थात् स्वर की इत् संज्ञा होती है और 'तस्य लोपः' से इत् संज्ञक स्वर का लोप हो जाता है।

यहाँ उपदेश से अभिप्राय पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि (मुनित्रय) द्वारा निर्दिष्ट सूत्रों (धातुपाठ, सूत्रपाठ, लिंगानुशासन आदि) से लिया जाता है।

व्याकरण शास्त्र के अनुसार यह मान्यता है कि आचार्य पाणिनि के समय तक अन्तिम स्वर अनुनासिक होते थे और वह अनुनासिक पाठ अब लुप्त हो गया है।

जैसे— राम + सुँ = यहाँ सुँ में स्थित उँ की उपर्युक्त सूत्र से इत् संज्ञा होकर **'तस्य लोपः'** से लोप हो जाता है और शेष बचता है– राम + स्।

११. **अचोऽन्त्यादि टि**– (१/१/६४) शब्द के अन्त में जहाँ स्वर प्रयुक्त हुआ हो उस स्वर के साथ शेष भाग की टि संज्ञा होती है। अतः स्पष्ट ही यह संज्ञा विधायक सूत्र है। इसका व्याकरण में संक्षिप्तीकरण के लिए अत्यधिक प्रयोग हुआ है।

---

१. द्रष्टव्य सूत्र, संख्या-३, अच् संधि प्रकरण।

२. इसके अतिरिक्त 'हलन्त्यम्', 'चुटू', लशक्वतद्धिते, तथा 'षः प्रत्ययस्य' भी इत् संज्ञा विधायक सूत्र हैं।

जैसे— मनस्– यहाँ अन्तिम अच् अर्थात् स्वर न में स्थित अ (न् + अ + स् = नस्) प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र के अनुसार, इस अ सहित शेष भाग की टि संज्ञा हुई अर्थात् इस शब्द में अस् की टि संज्ञा होगी। इसलिए जब इस शब्द में अस् का कथन करना होगा तो उसे अस् न कहकर टि कहेंगे।

१२. **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** (१/१/११) (Imp.)– यह प्रगृह्य संज्ञा करने वाला सूत्र है। इसके अनुसार ईत्, ऊत्, और एत् (ईदूदेद्) अर्थात् ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन रूप की प्रगृह्य संज्ञा होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि किसी द्विवचनान्त शब्द के अन्त में दीर्घ ईकार, दीर्घ ऊकार तथा एकार प्रयुक्त हुआ हो तो यह पद प्रगृह्य संज्ञा वाला होगा।

जैसे— हरी, यह हरि शब्द का प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति का द्विवचन का रूप है तथा इसके अन्त में दीर्घ ईकार भी प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से हरी की प्रगृह्य संज्ञा हुई। यहाँ प्रगृह्य संज्ञा का प्रमुख प्रयोजन है कि यह संज्ञा होने पर संधि आदि कार्य नहीं होंगे।

इसी प्रकार विष्णू तथा गंगे पदों की भी प्रगृह्य संज्ञा होगी, क्योंकि ये भी क्रमशः दीर्घ ऊकार तथा एकारान्त शब्द हैं तथा दोनों अपने-अपने प्रातिपदिकों विष्णु और गंगा के द्विवचन (प्रथमा एवं द्वितीया) के रूप हैं।

१३. **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** (१/१/६६) (Imp.)– यह परिभाषा सूत्र है। इस प्रकार के सूत्र स्वयं कोई कार्य नहीं करते, अपितु अन्य सूत्रों के अर्थ को स्पष्ट करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं। इसके अनुसार, यदि सूत्रों में कोई भी पद सप्तमी विभक्ति से युक्त प्रयुक्त हुआ हो तथा उस सूत्र में कोई नियम विधान किया गया हो तो उस सूत्र द्वारा निर्दिष्ट कार्य उसके ठीक पूर्व स्थान पर होगा। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी।

जैसे— '**इकोयणचि**'-सूत्र में अचि सप्तमी विभक्ति का पद प्रयुक्त हुआ है तथा इस सूत्र में इक् प्रत्याहार के वर्णों को यण् विधान किया गया है। अतः उपर्युक्त सूत्र से यह यण्, अच् अर्थात् स्वर से ठीक पूर्व को होगा, किसी अन्य को नहीं।

जैसे— सुधी + उपास्यः में स् में स्थित इक् प्रत्याहार का उ वर्ण होने पर भी उसे यण् नहीं होगा, क्योंकि उसके तथा ध् में स्थित ई के बीच में ध् का व्यवधान है अर्थात् उ का प्रयोग ई से ठीक पूर्व नहीं हुआ है, अपितु उपास्यः में स्थित उ स्वर से ठीक पूर्व प्रयुक्त ध् में स्थित ई को ही यण् विधान होगा, क्योंकि इन दोनों वर्णों के बीच किसी प्रकार का कोई व्यवधान नहीं है।

१४. **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** (१/३/१७)– यह भी परिभाषा सूत्र है अर्थात् इसका प्रयोग भी आचार्य पाणिनि के सूत्रों को समझाने के लिये किया गया है। तदनुसार समान संख्या वाले उद्देश्य और विधेय का विधान क्रमानुसार होता है, अर्थात् यदि कहीं पर जिनका विधान किया जा रहा है, उनकी तथा जो विधान किया जा रहा है उनकी संख्या समान हो तो विधान को क्रमानुसार मानना चाहिए।

जैसे— एचोऽयवायावः– इस सूत्र से एच् प्रत्याहार के वर्णों (ए, ओ, ऐ, औ) को क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव्, विधान किया गया है। यह आदेश विधान उपर्युक्त सूत्र से क्रमशः ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् ही होगा, क्योंकि यहाँ उद्देश्य (ए, ओ, ऐ, औ) तथा विधेय (अय्, अव्, आय्, आव्) दोनों की संख्या समान प्रयुक्त हुई है।

१५. **स्थानेऽन्तरतमः** (१/१/५०) (Imp.)– किसी प्रसंग में एक से अधिक आदेश प्राप्त होने पर षष्ठी के स्थान पर वही आदेश होगा, जो उसके उच्चारण आदि की दृष्टि से अत्यन्त समान अर्थात् सदृश हों। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी सूत्र में षष्ठ्यन्त पद द्वारा निर्देश करके कहा गया कार्य उसके सदृशतम को ही होगा। भले ही वहाँ एकाधिक आदेश कहे गये हों। जैसे— सुधी + उपास्यः में धकारोत्तरवर्ती इक्-ईकार के स्थान पर '**इकोयणचि**' सूत्र से य्, व्, र्, ल्, ये चार आदेश प्राप्त होते हैं, किन्तु इनमें से यकार ही इक् (ईकार) के सदृशतम है, क्योंकि दोनों का ही उच्चारण स्थान तालु है। अतः ईकार के स्थान पर केवल यकार आदेश ही होगा, अन्य नहीं और रूप बनेगा - सुध्युपास्यः।

१६. **संयोगान्तस्य लोपः** (८/२/२३)– जिस सुबन्त अथवा तिङन्त पद के अन्त में दो व्यञ्जन स्वररहित प्रयुक्त हों अर्थात् स्वरों के व्यवधान रहित व्यञ्जनों के प्रयुक्त होने पर संयोगान्त (अन्तिम) पद का लोप हो जाता है। जैसे— सुध्युपास्यः में सु द्ध् य् उपास्यः और सु ध् य् उपास्यः में अन्त में क्रमशः द् ध् य् और ध् य् संयोग संज्ञा वाले हैं (हलोऽनन्तराः संयोगः)। अतः दोनों ही संयोगान्त पद हैं। इसलिए प्रस्तुत सूत्र से द्, ध्, य् और ध् य् सम्पूर्ण का लोप प्राप्त हुआ।

१७. **अनचि च**– (८/४/४७) अच् अर्थात् स्वर परे न होने पर अच् के पश्चात् यर् प्रत्याहार के वर्ण के स्थान पर विकल्प से दो हो जाते हैं। यहाँ अच् और यर् दोनों प्रत्याहार हैं। अच् में सभी स्वर तथा यर् में ह को छोड़कर सभी व्यञ्जन आते हैं। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई स्वरवर्ण बाद में न हो तो स्वर के बाद ह को छोड़कर किसी अन्य व्यञ्जन के आने पर विकल्प से द्वित्व हो जाता है अर्थात् कहीं होगा भी और कहीं नहीं भी होगा। यह करना न करना अपनी इच्छा पर निर्भर है।

जैसे— सुध् य् + उपास्यः में स्वरवर्ण उकार के बाद यर् प्रत्याहार का धकार आया है तथा इसके बाद कोई स्वर भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से धकार को विकल्प से द्वित्व होकर सुध् ध् य् + उपास्यः रूप बना तथा जब द्वित्व नहीं करेंगे तो सु ध्य् + उपास्यः ही रहेगा।

१८. **झलां जश् झशि** (८/४/५३) (V. M. Imp.)– यह सूत्र यद्यपि व्यञ्जनसंधि से सम्बन्धित है, किन्तु अच् संधि प्रकरण में भी उपयोग होने से इसका यहाँ उल्लेख किया गया है। सूत्र के अनुसार, झलों को जश् हो जाता है,

झश् परे होने पर। यहाँ झल्, जश् और झश् प्रत्याहार हैं। झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्गों के ४, ३, २, १ तथा उष्म और ह वर्ण आते हैं अर्थात् इन वर्णों के स्थान पर जश् (वर्गों के तृतीय वर्ण) हो जाते हैं, यदि बाद में झश् (वर्गों के तृतीय तथा चतुर्थ) प्रत्याहार के वर्ण आएँ तो। जश् में पाँच वर्ण होते हैं, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, इनमें से कौन सा होगा, इसका निर्धारण '**स्थानेऽन्तरतमः**' सूत्र करता है अर्थात् उच्चारण आदि की दृष्टि से जो अधिक निकट होगा वही आदेश होगा। यह बात उदाहरण से अधिक स्पष्ट होगी—

जैसे— वृद्धिः - वृध् + धि : यहाँ वृध् में अन्तिम धकार झल् प्रत्याहार का वर्ण है तथा उसके बाद झश् प्रत्याहार का वर्ण धिः में स्थित ध् प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से पूर्व धकार झल् को अपने वर्ग का तृतीय वर्ण जश् होकर बना - वृद्धिः। यहाँ जश् में तो पाँच वर्ण थे, द् ही क्यों हुआ? इसके लिए '**स्थानेऽन्तरतमः**' सूत्र के सहयोग से ध् और द् उच्चारण की दृष्टि से एक दूसरे के अधिक निकट है। इसलिए ध् को द् ही हुआ, अन्य नहीं।

१९. **तपरस्तत्कालस्य** (१/१/७०)– आचार्य पाणिनि के सूत्रों में जिस स्वर के बाद त् का प्रयोग होता है, वह स्वर केवल अपने समान काल वाले वर्ण का ही बोध कराता है, दीर्घ या ह्रस्व आदि अन्य का नहीं।

जैसे— '**अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः**' सूत्र में अ अपना तथा अपने अन्य रूप दीर्घ 'आ' आदि का भी बोध करा रहा है, किन्तु '**अदेङ्गुणः**' सूत्र में अत् के अन्त में तकार का प्रयोग होने से उपर्युक्त परिभाषा सूत्र के अनुसार यहाँ अत् से केवल ह्रस्व अकार का ही अभिप्राय लेना होगा, उसके दीर्घ आदि रूपों से नहीं।

२०. **अदेङ्गुणः** (१/१/२)– यह संज्ञा सूत्र है इसके अनुसार अत् और एङ् प्रत्याहार के वर्णों की '**गुण**' संज्ञा होती है। यहाँ अत् में बाद में प्रयुक्त होने से '**तपरस्तस्कालस्य**' सूत्र से यह केवल अ का बोध करा रहा है तथा एङ् प्रत्याहार में ए, ओ, केवल दो वर्ण आते हैं। अतः सूत्र के अनुसार, अ, ए और ओ की गुण संज्ञा हुई। यहाँ गुण शब्द व्याकरण शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। जैसे— रमा + ईशः = रमेशः।

यहाँ रमा के मा का आ और ईशः के ई को '**आद्गुणः**' सूत्र से गुणादेश हुआ। तदनुसार आ + ई = ए की प्रस्तुत सूत्र से गुण संज्ञा हुई।

२१. **वृद्धिरादैच्** (१/१/१)– यह सूत्र पाणिनि अष्टाध्यायी का प्रथम सूत्र है। इसमें वृद्धि शब्द का प्रारम्भ में प्रयोग करके आचार्य पाणिनि ने मंगलाचरण भी किया है, ऐसी टीकाकारों की मान्यता है। इस परिभाषा सूत्र के अनुसार आत् और ऐच् प्रत्याहारों के वर्णों की वृद्धि संज्ञा होती है। 'वृद्धि' यहाँ भी व्याकरण शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है।

ऐच् प्रत्याहार के अन्तर्गत दो वर्ण ऐ और औ आते हैं। अतः इस सूत्र से ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा हुई। इसके अतिरिक्त आत् के अन्त में तकार होने से

'**तपरस्तत्कालस्य**' **सूत्र से** आ का ही ग्रहण किया जाएगा। इसलिए, आ, ऐ, और **औ इन तीन वर्णों की उपर्युक्त** सूत्र से वृद्धि संज्ञा हुई।

२२. **लोपः शाकल्यस्य** (८/३/१)– आचार्य पाणिनि से लगभग ४००० वि. पू. आचार्य शाकल्य हुए उनके मत में - अ या आ के बाद प्रयुक्त पदान्त यकार या वकार का लोप हो जाता है, यदि उसके बाद अश् (स्वर, वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण, अन्तस्थ तथा ह) प्रत्याहार का वर्ण हो तो, किन्तु आचार्य पाणिनि ने आचार्य शाकल्य के मत को विकल्प से स्वीकार किया है अर्थात् उक्त स्थिति में यकार या वकार का लोप स्वेच्छा पर निर्भर है। कहीं करना चाहें तो होगा और यदि कहीं नहीं करना चाहें तो नहीं होगा। जैसे— हरे + इह = हरेह, विग्रह में '**एचोऽयवायावः**' सूत्र से हरे के र् में स्थित ए के पश्चात् इह का इ स्वर होने के कारण ए को अय् आदेश होकर हर् + अय् + इह = हरय् + इह = हरयिह शब्द बना।

किन्तु अकार के **पश्चात्** प्रयुक्त पदान्त य् के बाद इह का इ अश् प्रत्याहार का वर्ण होने के कारण उपर्युक्त सूत्र से य् का लोप विकल्प से प्राप्त हुआ। अतः लोप होने की स्थिति में बनेगा-हर + इह = हर इह। यहाँ '**पूर्वत्राऽसिद्धम्**' से '**आद्गुणः**' सूत्र का निषेध हो गया।

२३. **भूवादयो धातवः** (१/३/१)– यह संज्ञा सूत्र है। इसके अनुसार पाणिनीय धातुपाठ में पठित भू आदि की धातुसंज्ञा होती है, अर्थात् यदि भू आदि का प्रयोग क्रिया के लिए होता है तो इसकी धातु संज्ञा होगी, किन्तु यदि यही भू क्रिया अर्थ में प्रयुक्त न होकर पृथ्वी आदि के अर्थ की अभिव्यक्ति कर रहा होगा तो इसकी धातु संज्ञा नहीं होगी, अपितु वह संज्ञा मात्र होगा।

२४. **निपात एकाजनाङ्** (१/१/१४)– आ को छोड़कर एकाक्षर स्वर वर्ण निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। इस प्रकार यह भी संज्ञा सूत्र है। प्रगृह्य संज्ञा होने **के** कारण उसके बाद स्वर आदि आने पर भी संधि कार्य नहीं होते हैं, अपितु ज्यों का त्यों अर्थात् प्रकृतिभाव बना रहता है।

जैसे— इ + इन्द्र में इ एक स्वर वाला निपात होने के कारण उपर्युक्त सूत्र से इ की प्रगृह्य संज्ञा हुई। अतः इसके बाद प्रयुक्त इन्द्र का इ आने पर भी '**अकः सवर्णे दीर्घः**' इत्यादि सूत्र से दीर्घ संधि नहीं हुई, अपितु ज्यों का त्यों अर्थात् **प्रकृतिभाव** ही बना रहा। अतः इ इन्द्र ही रहा।

२५. **प्रादयः** (१/४/५८)– यह संज्ञा सूत्र है। इसके अनुसार, जो शब्द **प्रादिगण** में पढ़े गए है, उनकी निपात संज्ञा होती है, बशर्ते उनका अर्थ द्रव्य (पदार्थ) न हो।

जैसे— वि शब्द प्रादिगण में पढ़ा गया है, किन्तु यदि इसका अर्थ पक्षी होगा, **तब इसकी निपात संज्ञा नहीं होगी**, क्योंकि यहाँ यह द्रव्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, **किन्तु द्रव्य अर्थ में प्रयुक्त न होने पर** 'वि' निपात संज्ञक होगा।

२६. **चादयोऽसत्त्वे** (१/४/५७)– यह भी संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र को समझने के लिए सत्त्व का अभिप्राय जानना आवश्यक है। 'लिंग-संख्यान्वितं द्रव्यम्' व्याख्या के अनुसार, जिनमें लिंग एवं संख्या का अन्वय होता है, उसे द्रव्य (पदार्थ) कहते हैं तथा '**सत्वमिति द्रव्यमुच्यते**' परिभाषा के अनुसार द्रव्य को ही सत्त्व कहते हैं।

इस परिपेक्ष्य में यदि सत्त्व (द्रव्य) अर्थ का कथन नहीं किया गया हो तो च आदि की निपात संज्ञा होती है। जैसे— पशुः शब्द अनेकार्थक है, क्योंकि इसका 'जानवर' अर्थ भी होता है एवं 'ठीक प्रकार' इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए भी यह शब्द प्रयोग में आता है, किन्तु 'लोधं नयन्ति पशुः' अर्थात् सफेद पुष्पों वाले वृक्ष को ठीक प्रकार से ले जा रहे हैं। यहाँ पशु शब्द यदि अद्रव्यवाची अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तो उसकी निपात संज्ञा होगी और उसका अर्थ होगा 'ठीक प्रकार से' (सम्यक्), किन्तु इसका द्रव्यवाची अर्थ होने पर इसकी निपात संज्ञा न होकर इसका अर्थ 'जानवर' होगा।

२७. **अलोऽन्त्यस्य** (१/.१/५२)– यहाँ प्रयुक्त अल् प्रत्याहार है, जिसमें अ से लेकर ह तक के सभी स्वर और व्यञ्जन आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त इससे पूर्व प्रयुक्त 'षष्ठीस्थाने योगाः' सूत्र से अनुवृत्ति[१] करके इसका अर्थ होगा, एक वर्ण वाला आदेश होने पर अथवा जिसमें ङकार की इत् संज्ञा हुई हो ऐसा अनेक वर्ण वाला आदेश होने पर षष्ठ्यन्त पद के अन्तिम वर्ण के स्थान पर होता है।

जैसे— सुंद्ध्य् के स्थान पर आदेश होने पर यह लोपादेश अन्तिम वर्ण यकार को ही होगा और तब रूप होगा– सु द् ध्, किन्तु 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' वार्तिक सूत्र से इस यकार लोप का निषेध होकर सुद्ध् य् ही रहेगा, क्योंकि इस सूत्र के अनुसार संयोगान्त पद का अन्तिम वर्ण यण् प्रत्याहार का वर्ण होने पर उसका लोप नहीं होता और यहाँ अन्तिम वर्ण '**य्**', यण् प्रत्याहार का वर्ण है।

२८. **अदसो मात्** (१/१/१२)– यह सूत्र प्रगृह्य संज्ञा का विधान कर रहा है। इस सूत्र का अर्थ करने के लिये इससे पूर्व प्रयुक्त सूत्र 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' (१/१/११) से इदूत् तथा प्रगृह्य पदों की आवृत्ति करके सूत्र का अर्थ इस प्रकार करेंगे— अदसोमात् ईदूत् प्रगृह्यम् अर्थात् 'वह' सर्वनाम के वाचक 'अदस्' में प्रयुक्त मकार से परे (अमी, अमू आदि) ईकार और ऊकार की प्रगृह्य संज्ञा होती है। प्रगृह्य संज्ञा होने पर संधिकार्य आदि नहीं होते।

जैसे— अदस् शब्द के पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति, द्विवचन और बहुवचन में क्रमशः अमू और अमी एवं द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में अमू रूप बनता है। अतः

---

१. अनुवृत्ति व्याकरण शास्त्र की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, संक्षिप्तीकरण के लिए प्रायः सभी सूत्रों में इसका प्रयोग किया गया है। इसका अभिप्राय है कि सूत्र का अर्थ करते समय पूर्व के सूत्रों से एक या अधिक पदों का अगले सूत्र में अनुवर्तन करना, तभी सूत्र का अर्थ सम्भव है। ऐसे अनेक सूत्र अष्टाध्यायी में आए हैं जो दूर तक अनेक सूत्रों में काम आते हैं।

प्रस्तुत सूत्र से इन रूपों (अमू, अमी) की प्रगृह्य संज्ञा हुई। इस स्थिति में अमी ईशाः (ये स्वामी हैं) इस उदाहरण में 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ आदेश (ई + ई = ई) होना चाहिए था, किन्तु उपर्युक्त सूत्र से अमी की प्रगृह्य संज्ञा होने के कारण संधि कार्य का निषेध होकर 'प्लुत प्रगृह्य अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव होकर अमी ईशाः ही रहता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए।

२९. **ओत्** (१/१/१५)– यह भी प्रगृह्य संज्ञा करने वाला सूत्र है। इसका अर्थ करने के लिए भी इससे पूर्व प्रयुक्त दो सूत्रों 'निपात एकाजनाङ्' (१/१/१४) तथा 'ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्' (१/१/११) से क्रमशः निपातः और प्रगृह्यम् पदों की अनुवृत्ति करनी होगी और तब सूत्र इस प्रकार बनेगा– ओत् निपातः प्रगृह्यम् अर्थात् ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। उस स्थिति में आहो, उताहो, हो, अहो तथा अथो इन पाँच ओकारान्त निपातों की प्रगृह्य संज्ञा होगी और ओ निपात की प्रगृह्य संज्ञा 'निपात एकाजनाङ्' सूत्र से ही हो जाती है। प्रगृह्य संज्ञा होने पर संधि कार्य आदि का निषेध होकर प्रकृतिभाव ही रहता है। जैसे— अहो ईशाः यहाँ अहो ओकारान्त निपात है। अतः प्रस्तुत सूत्र से इसकी प्रगृह्य संज्ञा होने पर संधि कार्य नहीं हुआ, जो कि 'एचोऽयवायावः' सूत्र से आव् आदेश प्राप्त था और प्रकृतिभाव अर्थात् पहले जैसा ही रहा– अहो ईशाः।

३०. **ओमाङोश्च** (६/१/९५)– इससे पररूप प्रक्रिया का विधान किया गया है। इस सूत्र को समझने के लिए इससे पूर्व के सूत्रों 'आद्गुणः' (६/१/८७) से आत् पद की और 'एङि पररूपम्' (६/१/९४) से पररूपम् पद की तथा 'एकः पूर्वपरयोः' (६/१/८४) अधिकार सूत्र की अनुवृत्ति करके यह सूत्र इस प्रकार होगा – आत् ओमाङोश्च एकः पूर्वपरयोः पररूपम् अर्थात् अ अथवा आ के बाद ओम् या आङ् आने पर पूर्व और पर (अ + ओ, आ + आ आदि) के स्थान पर पररूप ओ एवं आ एकादेश हो जाएँगे।

जैसे— शिवाय + ओम् में शिवाय के यकार में स्थित अकार के बाद ओम् का ओ आने पर उपर्युक्त सूत्र से पररूप एकादेश होकर (अ + ओ = ओ) शिवायोम् रूप बना।

३१. **पूर्वत्रासिद्धम्** (८/२/१)– इस सूत्र की संख्या को देखने से स्पष्ट है कि यह आठवें अध्याय के दूसरे पाद का पहला सूत्र है अर्थात् इससे पूर्व अष्टाध्यायी के सात अध्याय तथा आठवें अध्याय का एक पाद पूर्ण हो चुके हैं। जिसे सपादसप्ताध्यायी भी कहा जा सकता है (वार्तिककार कात्यायन ने पूर्व सूत्रों को यही नाम दिया है) और इस सूत्र सहित शेष अष्टाध्यायी सूत्रों को त्रिपादी नाम दिया गया है, क्योंकि इसके बाद अष्टाध्यायी में तीन पाद और हैं।

प्रस्तुत सूत्र अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार अष्टाध्यायी के अन्तिम सूत्र तक जाता है, तदनुसार इस सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी के अन्तिम सूत्रों तक प्रयुक्त सभी सूत्र अपने से पहले प्रयुक्त सूत्र अथवा सूत्रों के प्रति असिद्ध हैं अर्थात् पहले

प्रयुक्त सूत्र की दृष्टि में बाद में प्रयुक्त सूत्र द्वारा किया गया कार्य न होने के समान है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र का संक्षिप्त अर्थ हुआ, सपाद सप्ताध्यायी (प्रारम्भ से ८/१) तक की दृष्टि में त्रिपादी (८/२/१ से अन्त तक) असिद्ध है। इतना ही नहीं इस त्रिपादी में भी पूर्व प्रयुक्त सूत्र की दृष्टि में बाद में प्रयुक्त सूत्र द्वारा किया गया कार्य न होने के समान है।

•जैसे— हर इह में यकार का `लोप, लोपः शाकल्यस्य' (८/३/१८९) के निर्देशानुसार होता है तथा गुणादेश `आद्गुणः' (६/१/८७) के द्वारा, क्योंकि `लोपः शाकल्यस्य' सूत्र त्रिपादी का है और `आद् गुणः' सपाद सप्ताध्यायी का। अतः `आद्गुणः' की दृष्टि में `लोपः शाकल्यस्य' द्वारा किया गया कार्य (यकार लोप) असिद्ध अर्थात् न हुए के समान है। अतः हर इह रूप ही बनता है, गुणादेश नहीं होता, क्योंकि `आद्गुणः' की दृष्टि में हर इह अपने रूप हरय् इह (एचोऽयवायावः) में ही रहते हैं। `लोपः शाकल्यस्य' द्वारा किया गया यकार लोप, `आद्गुणः' की दृष्टि में न होने के समान है। अतः यकार की उपस्थिति से `आद्गुणः' सूत्र अपना कार्य गुणादेश नहीं कर पाता है।

३२. **उपसर्गाः क्रियायोगे** (१/४/५९)– यह भी संज्ञा सूत्र है। इससे किन शब्दों की उपसर्ग संज्ञा होती है, इसका निर्देश किया गया है। इस सूत्र का अर्थ समझने के लिए भी इससे पहले आए सूत्र `प्रादयः' (१/४/५८) से प्रादयः की अनुवृत्ति करके अर्थ होगा-- प्र आदि की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा होती है। प्र आदि के अन्तर्गत २२ शब्द आते हैं-- प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप।

ऊपर परिगणित शब्दों में से जब किसी का योग क्रिया के साथ होता है, तब इनकी उपसर्ग संज्ञा होती है। जैसे— आ गच्छति यहाँ आ का योग गच्छति क्रियापद के साथ हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से इस आ की उपसर्ग संज्ञा हुई।

३३. **दूराद् धूते च** (८/२/८४)– किसी को दूर से पुकारने (संबोधन) में प्रयुक्त वाक्य की टि को विकल्प से प्लुत हो जाता है। जैसे— आगच्छ कृष्ण ३ इह पठामः। यहाँ कृष्ण को दूर से पुकारा गया है। अतः कृष्ण की टि णकार का उत्तरवर्ती अकार प्लुत होकर `कृष्ण ३' इस प्रकार लिखेंगे तथा प्लुत के परिणामस्वरूप संधि कार्य नहीं होंगे।

३४. **ऋत्यकः** (६/१/१२८)– यह सूत्र आद्गुणः और उरणपरः का अपवाद सूत्र है। ऋकार बाद में होने पर पद के अन्तिम अक् (अर्थात् आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ) को विकल्प से ह्रस्व रूप हो जाता है। जैसे— ब्रह्मा + ऋषिः– यहाँ पद के अन्तिम आ के बाद ह्रस्व ऋकार प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से पूर्व प्रयुक्त आकार को विकल्प से ह्रस्व होकर बना– ब्रह्म ऋषिः। ह्रस्व होने की स्थिति में संधि कार्य नहीं होंगे।

किन्तु विकल्प की दूसरी स्थिति होने पर अर्थात् ह्रस्व न होने पर गुण होकर आ + ऋ = अर् (उरणरपरः से) रपर होकर ब्रह्मर्षिः रूप बनेगा।

३५. **सर्वत्र विभाषा गोः** (६/१/१२२) (M. Imp.)– यह सूत्र `एङः पदान्तादति' का वैकल्पिक अपवाद है, क्योंकि इसके अनुसार वैदिक एवं लौकिक संस्कृत दोनों में एङ् प्रत्याहार के वर्णों ए या ओ के अन्त में प्रयुक्त होने पर तथा साथ ही गो पदान्त होने पर एवं उसके बाद अकार आने पर विकल्प से प्रकृतिभाव होता है। जैसे— गो + अग्रम् यहाँ पद के अन्त में एङ् प्रत्याहार युक्त गो शब्द प्रयुक्त हुआ है तथा उसके बाद अग्रम् शब्द आया है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से प्रकृतिभाव होकर बना– गो अग्रम्। इस स्थिति में संधिकार्य नहीं होगा।

किन्तु वैकल्पिक स्थिति में जब प्रकृतिभाव नहीं होगा तो `एङः पदान्तादति' से पूर्वरूप एकादेश होकर गो अग्रम् रूप बनेगा।

३६. **उपसर्गाद् ऋति धातौ** (६/१/९१)– जिस उपसर्ग के अन्त में अकार प्रयुक्त हुआ हो तथा उसके बाद ऋकार है आदि में जिसके ऐसी धातु प्रयुक्त हुई हो तो पूर्व और पर, अ + ऋ दोनों, के स्थान पर वृद्धि एकादेश हो जाता है; जैसे—

प्र + ऋच्छति, यहाँ प्र उपसर्ग के अन्त में अकार प्रयुक्त हुआ है तथा उसके बाद ऋच्छति क्रिया पद का प्रयोग हुआ है, जिसके प्रारम्भ में ऋकार आया है। अतः उपर्युक्त सूत्र से अ + ऋ के स्थान पर वृद्धि प्र् + अ + ऋ = आर् + च्छति = प्राच्छंति रूप बनेगा।

३७. **अन्तादिवच्च** (६/१/८५) यह वस्तुतः अतिदेश सूत्र है। जिस सूत्र के द्वारा समानता को आधार बनाकर कार्य करते हैं, उसे अतिदेश सूत्र कहते हैं। इस सूत्र के अनुसार - जहाँ भी एकादेश कहा जाए, वह पूर्व में स्थित वर्णसमुदाय के अन्त में स्थित वर्ण के समान और बाद में स्थित वर्णसमुदाय के प्रारम्भिक वर्ण के समान होगा। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट होगी – उप + इन्द्रः में `आद्गुणः' से उप के प में स्थित अ तथा इन्द्र के इ को गुण एकार एकादेश होकर उपेन्द्रः बना। यहाँ ए एकादेश है। अतः उपर्युक्त सूत्र से यहाँ ए को अकार मानकर आकार विषयक कार्य और इसे इकार मानकर इकार विषयक दोनों कार्य किये जा सकते हैं।

३८. **अनेकाल्शित् सर्वस्य** (१/१/५५)– यह अलोऽन्त्यस्य का अपवाद सूत्र है। यहाँ प्रयुक्त अल् प्रत्याहार है, जिसमें अ से लेकर ल् तक सभी स्वर एवं व्यञ्जन आ जाते हैं तथा शित् से अभिप्राय - शकार हुआ है इत् जिसमें वह। इस प्रकार अर्थ होगा, आचार्य पाणिनि के सूत्रों में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग करते हुए जिस आदेश का विधान किया गया है, यदि उसमें अनेक वर्ण (स्वर या व्यञ्जन) हो अथवा `श्' इत् हुआ हो तो वह आदेश सम्पूर्ण षष्ठ्यन्त पद के स्थान पर होगा।

जैसे— अस्तेर्भूः सूत्र से अस् धातु को भू आदेश का विधान किया गया है। यहाँ भू में अनेकाल् (भ् + ऊ) होने तथा अस्तेः षष्ठी विभक्ति वाला होने से भू आदेश सम्पूर्ण अस् के स्थान पर होगा।

३९. **ङिच्च** (१/१/५३)– यह पूर्व सूत्र 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' का अपवाद सूत्र एवं परिभाषा सूत्र है। ङकार इत् हुआ है जिसमें ऐसा आदेश, अनेकाल् (अनेक वर्णों वाला) होने पर भी केवल षष्ठ्यन्त पद के अन्तिम वर्ण से स्थान पर ही होगा।

जैसे— सखि + सु में 'अनङ्सौ' (७/१/९३) सूत्र से सखि के स्थान पर अनङ् आदेश का विधान किया गया है, किन्तु अनङ् में 'ङ् इत्' है। अतः ङित् होने से उपर्युक्त सूत्र से अनेकाल् होने पर भी यह आदेश सखि सम्पूर्ण पद के स्थान पर नहीं, अपितु इसके अन्तिम वर्ण सख् + इ में इकार के स्थान पर ही होगा तथा रूप बनेगा– सख् + अन् + सु जो बाद में व्याकरण नियमों के कारण सखा बनेगा।

४०. **अवङ् स्फोटायनस्य** (६/१/१२३)– ओकार है अन्त में जिसके ऐसे पद के अन्त में प्रयुक्त गो शब्द के बाद यदि कोई स्वर वर्ण आए तो उस सम्पूर्ण गो के स्थान पर विकल्प से अवङ् आदेश होता है, किन्तु अवङ् में 'ङ् इत्' होने के कारण प्रस्तुत सूत्र गो सम्पूर्ण का बाध करके, केवल ओ के स्थान पर ही आदेश का विधान कर रहा है। ऐसा स्फोटायन नामक आचार्य का मत है। प्रायः सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र में स्फोटायन का उल्लेख करने पर पाणिनि ने विकल्प का ही उल्लेख किया है।

जैसे— गो + अग्रम् में प्रयुक्त गो शब्द ओकारान्त भी है और पदान्त भी और उसके बाद स्वरवर्ण अग्रम् का अ भी प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से ग् + ओ + अग्रम् में ओ के स्थान पर अवङ् आदेश होकर ग् + अव (ङ् की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा) + अग्रम् गव अग्रम् रूप बनता है। पुनः 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश होकर बनेगा - गवाग्रम्।

विकल्प के दूसरे पक्ष में जब यह सब प्रक्रिया नहीं होगी तो गो + अग्रम् (एङः पदान्तादति से) पूर्वरूप एकादेश होकर गोऽग्रम् बनेगा तथा 'सर्वत्र विभाषा गोः' से प्रकृतिभाव होकर गो अग्रम् रूप भी बनेगा।

४१. **इन्द्रे च** (६/१/१२४)– इस सूत्र में इससे पहले के सूत्रों- एङः पदान्तादति, सर्वत्र विभाषा गोः और अवङ् स्फोटायनस्य से क्रमशः एङः, गोः, और अवङ् पदों की अनुवृत्ति करके इस प्रकार अर्थ करना होगा - यदि इन्द्र पद बाद में आया हो तो ओकारान्त गो पद के स्थान पर अवङ् (अव) आदेश हो जाता है। यह आदेश नित्य होगा अर्थात् विकल्प का यहाँ विधान नहीं है।

जैसे— गो + इन्द्रः यहाँ ओकारान्त गो शब्द के बाद इन्द्रः का प्रयोग हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से गो के स्थान पर अवङ् आदेश प्राप्त हुआ, किन्तु 'ङिच्च'

परिभाषा सूत्र से यह आदेश केवल (ग् + ओ,) के ओ को ही होकर ग् + अवङ् (ङ् इत्) इन्द्रः = गव् + अ + इ = ए + न्द्र = गवेन्द्रः रूप बना।

४२. **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** (६/१/१२५)– यदि बाद में कोई भी स्वर वर्ण प्रयुक्त हुआ हो तो प्लुत और प्रगृह्य पद प्रकृतिभाव के रूप में रहता है। प्रकृतिभाव का प्रयोजन है, संधि कार्यों का निषेध करना अर्थात् पद ज्यों के त्यों रहते हैं।

जैसे— आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति। यहाँ आगच्छ कृष्ण में दूर से पुकारने में कृष्ण के अन्त में स्थित णकार के अकार को 'दूराद् धूते' सूत्र से प्लुत हुआ और उसके बाद अत्र के स्वर अ के आने पर उपर्युक्त सूत्र से प्रकृतिभाव होकर संधिकार्य दीर्घ आदि नहीं हुए और ज्यों का त्यों रूप बना रहा।

४३. **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** (१/१/१६)– वेद भिन्न भाषा अर्थात् संस्कृत भाषा में इति बाद में होने पर सम्बुद्धि (सम्बोधन) को कारण मानकर उत्पन्न ओकार की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होगी। यहाँ आचार्य पाणिनि से पूर्व के आचार्य शाकल्य का मत विकल्प अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया गया है। यहाँ ओकार की प्रगृह्य-संज्ञा करने का प्रयोजन संधिकार्य का निषेध करना है।

जैसे— विष्णो इति, यहाँ विष्णो के अन्त में प्रयुक्त ओकार सम्बुद्धि (प्रथमा के एक वचन को सम्बोधन में सम्बुद्धि कहा जाता है) निमित्तिक प्रयुक्त हुआ है तथा उसके बाद इति भी आया है और यह वैदिक प्रयोग भी नहीं है। इसलिए प्रस्तुत सूत्र से णकार के बाद प्रयुक्त ओकार की प्रगृह्य-संज्ञा हुई। इसी कारण 'एचोऽयवायावः' सूत्र से होने वाले अवादेश का निषेध हो गया और विष्णो इति ही बना।

किन्तु विकल्प की स्थिति में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओ को अव् आदेश होकर विष्ण् + अव् + इति तथा जोड़ने पर विष्णविति बनेगा।

४४. **मय उञो वो वा** (८/३/३३)– प्रस्तुत सूत्र 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यादि पूर्व में व्याख्या किए गए सूत्र के प्रकृतिभाव का विकल्प से अपवाद प्रस्तुत कर रहा है। इसके अनुसार - मय् प्रत्याहार के वर्णों 'म्, ङ्, ण्, न्, के बाद यदि उञ् (उ) प्रयुक्त हुआ हो और उसके बाद कोई भी स्वर आए तो उञ् (उञ् में ञ् इत् संज्ञक है) के उ को विकल्प से वकार हो जाता है।

जैसे— किम् + उञ् + उत्तम् यहाँ किम् के अन्त में प्रयुक्त मय् प्रत्याहार के वर्ण के बाद उञ् का उ प्रयुक्त हुआ है और उसके बाद उत्तम् का उ स्वर आया है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से उ को व् होकर किम् व् उत्तम् और जोड़ने पर किम्वुत्तम् रूप बना।

किन्तु विकल्प की स्थिति में जब वकार आदेश नहीं होगा, तब प्रकृतिभाव होकर किमु उत्तम् बनेगा।

४५. **इकोऽसवर्णेशाकल्यस्य ह्रस्वश्च** (६/१/१२७)– प्रस्तुत सूत्र 'इकोयणचि' सूत्र से होने वाले यणादेश विधान का वैकल्पिक अपवाद है। यहाँ शाकल्य पद को

अन्य स्थलों के ही समान विकल्प अर्थ की अभिव्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। सूत्र का अभिप्राय है– यदि पद के अन्त में इक् प्रत्याहार के वर्ण इ, उ, ऋ, लृ, (ह्रस्व अथवा दीर्घ) आएँ तथा उसके बाद असवर्ण स्वर प्रयुक्त हुआ हो तो ह्रस्व या दीर्घ दोनों के स्थान पर विकल्प से ह्रस्व इकार, उकार, ऋकार तथा लृकार आदेश हो जाते हैं तथा ये आदेश प्रकृतिभाव होते हैं। अतः संधिकार्य नहीं होते हैं।

जैसे— चक्री + अत्र। यहाँ चक्री के अन्त में इक् प्रत्याहार का वर्ण ईकार प्रयुक्त हुआ है तथा उसके बाद अत्र में स्थित `अ' असवर्ण स्वर आया है। अतः प्रस्तुत सूत्र से चक्री के ईकार को ह्रस्व इकार होकर चक्रि अत्र बना तथा इकार के प्रकृतिभाव होने से इकोयणचि से प्राप्त यण्, आदेश रूप संधिकार्य न होकर चक्रि अत्र ही होगा।

किन्तु विकल्प की स्थिति में चक्री + अत्र में `इकोयणचि' सूत्र से ईकार को यण् होकर यकार बना– चक्र ई→य् + अत्र = चक्र् यत्र ही बनेगा।

४६. **अचोरहाभ्यां द्वे** (८/४/४६)– यहाँ अच् प्रत्याहार है, जिसके अन्तर्गत सभी स्वरवर्ण आ जाते है। यदि किसी स्वरवर्ण के बाद रकार अथवा हकार प्रयुक्त हुआ हो तथा उसके बाद यर् प्रत्याहार का कोई भी वर्ण आए तो उसे विकल्प से द्वित्व होता है।

जैसे— गौरी + औ यहाँ ग् में स्थित औ के बाद रकार प्रयुक्त हुआ है तथा रकार के बाद ईकार को `इकोयणचि' सूत्र से यण् आदेश `य' होकर गौर् + य् + औ बना और य्, यर् प्रत्याहार का वर्ण होने से उपर्युक्त सूत्र से य् को द्वित्व होकर गौर् य् य् औ = गौर्य्यौ शब्द बनेगा।

४७. **एत्येधत्यूठ्सु** (६/१/८९)– यह विधि सूत्र है। इसके अनुसार यदि अवर्ण (अ या आ) के बाद इण् (गतौ) एध् (वृद्धौ) तथा उद् बाद में हो तो पहले और बाद के दोनों वर्णों के स्थान पर एक वृद्धि (आ, ऐ, और औ) आदेश हो जाता है। यह आदेश `स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के आधार पर ही होगा।

जैसे— उप + एति यहाँ पकार में स्थित अकार के बाद इण् धातु का रूप एति प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से अ + ए को वृद्धि ऐ आदेश होकर उप् + ऐति = उपैति रूप बनेगा।

* * *

३. व्यञ्जन संधि

१. **स्तोः श्चुना श्चुः** (८/४/४०) (M. Imp.)– यदि स् या तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्)[१] के पहले या बाद में श् अथवा चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) आए तो स् को

१. व्याकरणशास्त्र में जब किसी व्यञ्जन का उल्लेख किया जाता है तो वहां स्वररहित व्यञ्जन से ही अभिप्राय लिया जाता है, स्वरयुक्त से नहीं।

श् और तवर्ग को चवर्ग हो जाता है। इसे इसप्रकार भी प्रदर्शित किया जा सकता है–

पूर्व में **बाद में**

त्, थ्, द्, ध्, न्, स्,→ च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, श्
↓ ↓ ↓ ↓ ↓ ↓
च् छ् ज् झ् ञ् श् (आदेश)

जैसे— सत् + चरितम् = सच्चरितम्।

स्पष्टीकरण— यहाँ सत् के अन्त में स्थित तवर्ग के त् के पश्चात् चरितम् के आरम्भ में स्थित चवर्ग का च् आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से त् को च् होकर सच्चरितम् शब्द निष्पन्न हुआ।

इसी प्रकार यहाँ कुछ अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत हैं, जिनमें छात्रों को उक्त नियम को समझते हुए अभ्यास करना चाहिए—

१. सत् + चित् = सच्चित्।	२. सद् + जनः = सज्जनः।
३. एतद् + जलम् = एतज्जलम्।	४. उत् + चारणम् = उच्चारणम्।
५. सत् + चरित्रः = सच्चरित्रः।	६. उद् + ज्वलः = उज्ज्वलः।
७. कस् + चित् = कश्चित्।	८. हरिस् + शेते = हरिश्शेते।
९. बृहद् + झरः = बृहज्झरः।	१०. रामस् + च = रामश्च
११. रामस् + चिनोति = रामाश्चिनोति।	१२. शार्ङ्गिन् + जयः = शार्ङ्गिञ्जयः।

यहाँ यह बात विशेषतया उल्लेखनीय है कि पूर्व वर्ण का परिवर्तन परवर्ण के अनुसार ही होगा और यह कार्य `यथासंख्यमनुदेशः' समानाम् सिद्धान्त सूत्र के अनुसार होगा अर्थात् त् को च्, थ् को छ्, द् को ज्, ध् को झ्, न् को ञ् तथा स् को श् ही होगा। उक्त सभी उदाहरण बाद में चवर्ग या श् आने के दिए गए हैं। एक उदाहरण पहले चवर्ग का भी प्रस्तुत है—

याच् + ना = याच्ञा।

उपर्युक्त उदाहरण में तवर्ग के ना के पूर्ण चवर्ग का च् आने का कारण उपर्युक्त सूत्र से न् को चवर्ग का अनुनासिक वर्ण ञ् आदेश हुआ।

२. अपवाद सूत्र– **शात्** (८/४/४४) प्रस्तुत सूत्र उपर्युक्त सूत्र का अपवाद है क्योंकि, इसके अनुसार— यदि श् के बाद तवर्ग आता है तो `स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र लागू नहीं होगा अर्थात् श् के बाद आने वाले तवर्ग को चवर्ग नहीं होगा।

जैसे— प्रश् + नः = प्रश्नः। विश् + नः = विश्नः।

स्पष्टीकरण— यहाँ प्रश् के अन्त में प्रयुक्त श् के बाद तवर्ग का अन्तिम वर्ण नः आने का कारण `स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से नः को चः होना चाहिए था, किन्तु `शात्' सूत्र से इसका बाध हो गया। अतः न् को च् न होकर ज्यों का त्यों ही बना रहा। इसी प्रकार विश्नः में भी समझना चाहिए।

३. **ष्टुना ष्टुः** (८/४/४१) (M. Imp.)– यदि स् या तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के पहले या बाद में ष् या टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्) आता है तो स् को ष् तथा तवर्ग को टवर्ग हो जाता है। इस प्रक्रिया को इस प्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं।—

← त्, थ्, द्, ध्, न्, स् → ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष्
↓ ↓ ↓ ↓ ↓ ↓
ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष्

जैसे— रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में रामस् के अन्त में प्रयुक्त स् के पश्चात् षष्ठः के प्रारम्भ में प्रयुक्त ष् आने का कारण उपर्युक्त सूत्र से स् को ष् होकर बना— रामष्षष्ठः। इसी प्रकार कुछ अन्य उदाहरण भी दिए जा रहे हैं, उनमें भी इस नियम को समझने का प्रयास करना चाहिए—

१. रामस् + टीकते =	रामष्टीकते =	स् को ष्→ ट्।
२. पेष् + ता =	पेष्टा =	ष्→ त् को ट्।
३. इष् + तः =	इष्टः =	ष्→ त् को ट्।
४. दुष् + तः =	दुष्टः =	ष्→ त् को ट्।
५. तत् + टीका =	तट्टीका =	त् को ट्→ ट्।
६. विष् + नुः =	विष्णुः =	ष्→ न् को ण्।
७. कृष् + नः =	कृष्णः =	ष्→ न् को ण्।
८. उद् + डीनः =	उड्डीनः =	द् को ड्→ ड्।

अपवाद सूत्र[1] (१) ४. **न पदान्ताट्टोरनाम्** (८/४/४२)– यदि टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्) पद के अन्त में प्रयुक्त हुआ हो तो बाद में प्रयुक्त स्, त्, थ्, द्, ध्, न् को क्रमशः ष्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण् नहीं होंगे, अपितु ज्यों का त्यों बना रहेगा अर्थात् कोई परिवर्तन नहीं होगा।

जैसे— षट् + सन्तः = षट्सन्तः।

स्पष्टीकरण— यहाँ षट् के अन्त में प्रयुक्त ट् के बाद सन्तः का स् आने पर भी 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से स् को ष् उपर्युक्त सूत्र के द्वारा निषेध कर देने के कारण नहीं हुआ, अपितु जैसा पहले था वैसा ही बना रहा। इसी प्रकार षट् + ते = षट्ते को भी समझना चाहिए।

१. व्याकरण शास्त्र में आचार्य पाणिनि ने भाषा की प्रवृत्ति में एक रूपता देखते हुए एक नियम का निर्माण किया, किन्तु उस नियम को बनाने के बाद स्वयं उनकी दृष्टि में कुछ ऐसे उदाहरण आए जो उस नियम की परिधि में होते हुए भी उसका पालन नहीं करते थे। ऐसे शब्दों को सिद्ध करने के लिए उन्होंने अलग से सूत्रों की रचना की, वे ही अपवाद सूत्र कहलाते हैं। आचार्य कात्यायन द्वारा विरचित इसी प्रकार के सूत्र वार्तिक सूत्र कहे जाते हैं।

किन्तु उपर्युक्त सूत्र की ही व्याख्या में एक बात ज्ञातव्य है कि यदि पद के अन्तिम टवर्ग के बाद नाम् पद का प्रयोग होगा तो 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से ही नाम् के न् को ण् अवश्य होगा, क्योंकि अपवाद सूत्र के अन्त में अनाम् पद का प्रयोग हुआ है। इसका तात्पर्य है कि यह नियम बाद में नाम् पद प्रयुक्त होने पर लागू नहीं होगा अर्थात् तब 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र ही प्रभावी होगा।

जैसे— षड् + नाम् = षड्णाम्, षण्णाम्।

विशेष— यहाँ षड् के अन्त में प्रयुक्त ड् को ण् आगे आने वाले सूत्र 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' से हुआ है, क्योंकि यह नियम 'वा' प्रयुक्त होने के कारण विकल्प से लागू होता है, इसलिए षड्नाम और षण्णाम् दोनों रूप बनेंगे।

५. अपवाद सूत्र (२) **अनाम्नवतिनगरीणामितिवाच्यम्** (वार्तिक सूत्र) प्रस्तुत सूत्र आचार्य कात्यायन द्वारा विरचित वार्तिक सूत्र है, जो उन्होंने 'न पदान्ताट्टोरनाम्' (८/४/४२) सूत्र के कार्यक्षेत्र में परिवर्तन करते हुए अपवाद सूत्र के रूप में प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार– पद के अन्तिम टवर्ग के बाद प्रयुक्त 'नाम्' को ही 'णाम्' नहीं होगा, अपितु नवति और नगरी पदों में प्रयुक्त न् को भी ण् होगा, अतः 'न पदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र में अनाम् पद के साथ-साथ नवति और नगरी पदों को भी जोड़ना चाहिए।

जैसे— १. षड् + नवतिः = षण्णवतिः[1] अथवा षड्णवतिः।

२. षड् + नगर्यः = षण्णगर्यः अथवा षड्णगर्यः।

६. अपवाद सूत्र (३) **तोः षि** (८/४/४३) प्रस्तुत सूत्र भी 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र के अपवाद रूप में दिया गया है। इसके अनुसार तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के बाद यदि ष् प्रयुक्त हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा।

जैसे— सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में सन् के अन्त में प्रयक्त तवर्ग के अन्तिम वर्ण न् के बाद षष्ठः का ष् आने के कारण 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से न् को ण् होकर सण्षष्ठः होना चाहिए था, किन्तु उपर्युक्त सूत्र ने इसका निषेध कर दिया, अतः ज्यों का त्यों ही रहा और बना सन् षष्ठः।

७. **झलां जशोऽन्ते** (८/२/३९) (M. Imp.)- पद के अन्त में प्रयुक्त झल् प्रत्याहार के वर्णों (वर्गों के १, २, ३, ४ तथा श्, ष्, स्, ह्) के स्थान पर जश् प्रत्याहार के वर्ण (ज्, ब्, ग्, ड्, द्) आदेश रूप में हो जाते हैं।

ये आदेश 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के अनुसार मुख में उच्चारण-स्थान और आभ्यन्तर-प्रयत्न समान होने पर ही होंगे।[1] उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट होगी।

१. इन शब्दों में भी षड् के ड् को ण विकल्प से 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' सूत्र से हुआ है। अतः यहाँ भी पूर्ववत् दोनों रूप बनेंगे।

जैसे— वाक् + ईशः = वाग् ईशः = वागीशः (पदान्त झल् 'क्' को जश् 'ग्')।

स्पष्टीकरण— यहाँ वाक् पद के अन्त में प्रयुक्त झल् प्रत्याहार के वर्ण क् को उपर्युक्त सूत्र से जश् प्रत्याहार का वर्ण ग् आदेश रूप में होकर बना– वागीशः।

अब प्रश्न उठता है कि क् को ग् आदेश ही क्यों हुआ? जश् प्रत्याहार में तो दूसरे भी वर्ण थे, वे क्यों नहीं हुए? इसका उत्तर है- 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के अनुसार, क्योंकि वाक् के पदान्त क् का उच्चारण स्थान है - कण्ठ, इसलिए उसके स्थान पर ज्, ब्, ग्, ड्, द् में से कण्ठस्थानीय ग् आदेश ही होगा, क्योंकि उच्चारण की दृष्टि से ग् ही क् के सर्वाधिक निकट है।[1]

इसी प्रकार दूसरे उदाहरण भी समझने चाहिएँ। जैसे—

१. दिक् + अम्बरः	= दिगम्बरः (पदान्त क् को कण्ठस्थानी[2] ग् आदेश)
२. जगत् + ईशः	= जगदीशः (पदान्त त् को दन्तस्थानी द् आदेश)
३. अच् + अन्तः	= अजन्तः (पदान्त च् को तालुस्थानी ज् आदेश)
४. दिक् + गजः	= दिग्गजः (पदान्त क् को कण्ठस्थानी ग् आदेश)
५. चित् + आनन्दः	= चिदानन्दः (पदान्त त् को दन्तस्थानी द् आदेश)
६. उत् + देश्यम्	= उद्देश्यम् (पदान्त त् को दन्तस्थानी द् आदेश)
७. षट् + आननः	= षडाननः (पदान्त ट् को मूर्धास्थानी ड् आदेश)
८. षट् + एव	= षडेव (पदान्त ट् को मूर्धास्थानी ड् आदेश)

विशेष— यहाँ यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि संधि का यह नियम दो स्वतन्त्र पदों पर लागू होता है। जैसे दिक् स्वतन्त्र पद है, जिसका अर्थ है दिशा तथा अम्बर स्वतन्त्र पद्, जिसका अर्थ है आकाश। इसीलिए पदान्त झल् क् को जश् ग् आदेश हो गया।

८. **झलां जश् झशि** (८/४/५३) (M. Imp.)– झलों को जश् हो जाता है, झश् परे होने पर। यहाँ झल्, जश् और झश् तीनों प्रत्याहार हैं। झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्गों के ४,३,२,१ उष्म तथा ह वर्ण आते हैं अर्थात् इन वर्णों के स्थान पर जश् (वर्गों के तृतीय वर्ण) हो जाते हैं, यदि बाद में झश् (वर्गों के तृतीय और चतुर्थ) प्रत्याहार के वर्ण आएँ तो। जश्, प्रत्याहार के अन्तर्गत पाँच वर्ण होते हैं– ज्, ब्, ग्, ड्, द्, इनमें से कौन सा होगा, इसका निर्धारण पूर्वसूत्र के समान 'स्थानेऽन्तरतमः' सूत्र के आधार पर ही किया जायेगा अर्थात् उच्चारण की दृष्टि से जो अधिक निकट होगा। वही आदेश किया जायेगा। उदाहरण द्वारा यह बात अधिक स्पष्ट होगी।

---

१. मुख में उच्चारणस्थान को समझने के लिए देखिये पृ० १७-२०।

२. इस नियम का सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। अतः छात्रों को इसे ध्यान पूर्वक समझना चाहिए।

जैसे— वृध् + धिः = वृद्धिः (झल् प्रत्याहार के वर्ण ध् को जश् प्रत्याहार का वर्ण द् आदेश)

स्पष्टीकरण— यहाँ वृध् के अन्त में प्रयुक्त झल् प्रत्याहार के वर्ण ध् के पश्चात् धिः में प्रयुक्त ध्, झश् प्रत्याहार का वर्ण प्रयुक्त होने से उपर्युक्त सूत्र से ध् को जश् प्रत्याहार का वर्ण द् 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा सूत्र के आधार पर आदेश होकर बना– वृद् + धिः = वृद्धिः (यहाँ वृद्धिः एक पद है)

विशेष— यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत सूत्र के लिए दो शर्तें हैं। प्रथम– यह नियम एक ही पद में लागू होगा, अर्थात, प्रकृति प्रत्यय के विषय में यह नियम लागू होगा तथा द्वितीय, यहाँ बाद में झश् प्रत्याहार का वर्ण होना आवश्यक है। तभी झल् को जश् आदेश होगा इसके विपरीत 'झलां जशोऽन्ते' में झल् का पदान्त होना अनिवार्य है, अन्य कोई शर्त वहाँ नहीं है।

उक्त नियम को इस प्रकार भी समझा जा सकता है—

एक पद

झलों को→	जश्→	झश् परे होने पर
वर्गों के १, २, ३, ४, वर्ण	वर्गों का ३ वर्ण	वर्गों के ३, ४ वर्ण
क ख ग घ	ज्	ज् झ्
च छ ज झ	ब्	ब् भ्
ट ठ ड ढ	ग्	ग् घ्
त थ द ध	ड्	ड् ढ्
प फ ब भ	द्	द् ध्
श ष स ह		

इस नियम को भलीभाँति समझने के लिए यहाँ कुछ और उदाहरण दिए जा रहे हैं—

१. सिध् + धिः	= सिद्धिः,	ध्→ द् आदेश।
२. दुघ् + धम्	= दुग्धम्,	घ्→ ग् आदेश।
३. दघ् + धः	= दग्धः,	घ्→ ग् आदेश।
४. बुध् + धिः	= बुद्धिः,	ध्→ द् आदेश।
५. दोघ् + धा	= दोग्धा,	घ्→ ग् आदेश।
६. लभ् + धः	= लब्धः,	भ्→ ब् आदेश।
७. क्षुभ् + धः	= क्षुब्धः,	भ्→ ब् आदेश।
८. आरभ् + धम्	= आरब्धम्,	भ्→ ब् आदेश।

९. **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** (८/४/४५) (M. Imp.)– पद के अन्तिम यर् प्रत्याहार के वर्णों को (ह को छोड़कर सभी व्यञ्जन वर्ण) अपने वर्ग का पञ्चम वर्ण हो जाता है, यदि बाद में कोई भी अनुनासिक वर्ण (वर्गों के पञ्चम वर्ण- ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) आएँ तो। सूत्र में वा पद होने के कारण यह नियम विकल्प से लागू होगा अर्थात् होगा भी और नहीं भी होगा। वस्तुतः व्याकरण में विकल्प वाली स्थिति में नियम इच्छा पर निर्भर होता है, करें या न करें। दोनों स्थितियाँ शुद्ध मानी जाएँगी।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को हम इस प्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं—

पदान्त 'यर्'	**कोई अनुनासिक वर्ण**		
क् ख् ग् घ् ङ्	= ङ्	ङ्	दिक् + नाग = दिङ्नाग
च् छ् ज् झ् ञ् य् श्	= ञ्	ञ्	
ट् ठ् ड् ढ् ण् र् ष्	= ण्	ण्	षट् + मुखः = षण्मुखः
त् थ् द् ध् न् ल् स्	= न्	न्	तत् + नः = तन्न
प् फ् ब् भ् म् व्	= म्	म्	

'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के अनुसार कवर्ग के वर्ण के स्थान पर ङकार, चवर्ग के वर्ण के स्थान पर ञकार, टवर्ग के वर्ण के स्थान पर णकार, तवर्ग के वर्ण के स्थान पर नकार तथा पवर्ग के वर्ण के स्थान पर मकार आदेश ही होता है।

इसके अतिरिक्त अन्तस्थ या उष्मवर्ण पदान्त होने पर उसके उच्चारण स्थान के समान उच्चारण स्थान से बोला जाने वाला वर्ण ही आदेशरूप में होगा।

जैसे— एतत् + मुरारिः = एतन्मुरारिः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में एतत् पद के अन्त में यर् प्रत्याहार का वर्ण त् प्रयुक्त हुआ है तथा उसके पश्चात् मुरारिः में स्थित म् अनुनासिक वर्ण आया है। अतः उपर्युक्त सूत्र से यर् प्रत्याहार के वर्ण त् को इसी तवर्ग का अन्तिम अनुनासिक वर्ण न् आदेश होकर बना-- एतन्मुरारिः।

जैसा कि पहले कहा गया है कि यह नियम विकल्प से लागू होता है। इसलिए एततमुरारिः और एतन्मुरारिः दोनों प्रयोग शुद्ध माने जाएँगे।

कुछ अन्य उदाहरणों पर भी चिन्तन करें—

१. सद् + मतिः = सन्मतिः (यर् प्रत्याहार के वर्ण द् को न् आदेश)

२. पद् + नगः = पन्नगः (यर् प्रत्याहार के वर्ण द् को न् आदेश)

३. तत् + मयम् = तन्मयम् (यर् प्रत्याहार के वर्ण त् को न् आदेश)

४. तत् + मात्रम् = तन्मात्रम् (यर् प्रत्याहार के वर्ण त् को न् आदेश)

५. वाक् + मयम् = वाङ्मयम् (यर् प्रत्याहार के वर्ण क् को ङ् आदेश)

१०. अपवाद सूत्र— **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** (वार्तिक)– प्रस्तुत सूत्र वार्तिक सूत्र है, इससे पूर्व आपने देखा कि यर् को अनुनासिक होना विकल्प से बताया गया था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने उसमें थोड़ा परिवर्तन करते हुए कहा कि यर् प्रत्याहार के वर्ण (ह् को छोड़कर सभी व्यञ्जन) को अनुनासिकत्व नित्य होगा यदि (१) वह वर्ण प्रत्यय का हो तो (२) वह प्रत्यय लौकिक संस्कृत-भाषा में प्रयुक्त हुआ हो अर्थात् वैदिक संस्कृत का नहीं हो, क्योंकि वैदिक संस्कृत में तो 'यरोऽनुनासिके' इत्यादि सूत्र से अनुनासिकत्व विकल्प से ही होगा। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी।

जैसे— चित् + मयम् = चिन्मयम्।

स्पष्टीकरण— यहाँ चित् पद के अन्तिम यर् प्रत्याहार के तकार के पश्चात् मयट् प्रत्यय का अनुनासिक वर्ण म् होने से उपर्युक्त वार्तिक सूत्र से त् को नित्य रूप से न् होकर चिन्मयम् शब्द निष्पन्न होगा, विकल्प में चित्मयम् नहीं बनेगा।

११. **तोर्लि** (८/४/६०) (M. Imp.)– यदि बाद में लकार प्रयुक्त हुआ हो तो उससे पहले प्रयुक्त तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के वर्ण को भी परसवर्ण आदेश ल् ही हो जाता है। उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी—

पूर्व में	→	**बाद में**
त्, थ्, द्, ध्, न्	→	ल्
ल् (त्, थ्, द्, ध् को), लँ आदेश (न् को)		

जैसे— तत् + लयः = तल्लयः।

स्पष्टीकरण— उपर्युक्त उदाहरण में तत् के अन्त में प्रयुक्त तकार के पश्चात् लयः पद में स्थित लकार आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से पहले प्रयुक्त तकार को लकार होकर बना– तल्लयः।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिए—

१. तत् + लीनः = तल्लीनः त्→ ल् = ल्ल।

२. उद् + लेखः = उल्लेखः द्→ ल् = ल्ल।

३. विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति न्→ ल् = ँल्ल।

उपर्युक्त उदाहरणों में से तृतीय उदाहरण विद्वाँल्लिखति में (ँल्ल) इसलिए हुआ है, क्योंकि ल् दो प्रकार का होता है–प्रथम अनुनासिक, द्वितीय अननुनासिक। स्थानेऽन्तरतमः[1] परिभाषा के अनुसार तवर्ग के अन्त में न् के स्थान पर इसके अनुनासिक होने के कारण अनुनासिक लँ ही आदेश रूप होगा।

---

१. इस सूत्र की व्याख्या के लिए इस पुस्तक का प्रथम भाग पृ० २० देखें।

१२. **झरो झरि सवर्णे** (८/४/६५)– किसी भी व्यञ्जनवर्ण के पश्चात् आए झर् प्रत्याहार के वर्णों (वर्गों के १, २, ३, ४ तथा उष्म) का विकल्प से लोप हो जाता है। यदि झर् प्रत्याहार का वर्ण सवर्ण हो तो। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र से झर् प्रत्याहार के वर्णों का विकल्प से लोप होने के लिए दो शर्तें हैं–

(क) झर् प्रत्याहार के वर्णों से पहले कोई व्यञ्जन आना चाहिए, स्वर नहीं।

(ख) झर् प्रत्याहार के वर्णों के बाद कोई सवर्ण झर् भी प्रयुक्त होना चाहिए। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी।

जैसे— उद् + स्थानम् = उत्थानम्।

स्पष्टीकरण— यहाँ पहले 'उदःस्थास्तम्भो' पूर्वस्य'[1] (८/४/६१) सूत्र से स्थानम् के स् को पूर्वसवर्ण आदेश थ् होकर बना— उद् + थ् + थानम्।

इस स्थिति में द् व्यञ्जन के पश्चात् झर् प्रत्याहार का वर्ण थ् प्रयुक्त हुआ है तथा उसके पश्चात् थानम् में स्थित थ् सवर्ण झर् प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से द् के पश्चात् प्रयुक्त थ् का लोप होकर उद् + थानम् बना।

उसके पश्चात् खरि च[2] (८/४/५५) सूत्र से उद् के द् को त् आदेश होकर बना— उत्थानम्। क्योंकि 'झरो झरि सवर्णे' सूत्र झर् प्रत्याहार के वर्ण का विकल्प से लोप करता है। इसलिए जब उद् + थ् + थानम् में द् के बाद प्रयुक्त थ् का लोप नहीं होगा, तब उत्थ्थानम् बनेगा। इस स्थिति में थ् को पुनः त् आदेश 'खरि च' सूत्र से होकर उत्त्थानम् शब्द भी बनना चाहिए था, किन्तु यह नहीं होता, क्योंकि 'खरि च' सूत्र की दृष्टि में 'उदः स्थास्तम्भो पूर्वस्य' (८/४/६१) सूत्र असिद्ध है।

इसलिए उसके द्वारा स् के स्थान पर किया हुआ थ् 'खरि च' की दृष्टि में न होने के समान है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएँ—

१. रुन्ध् + धः = रुन्धः (ध् लोप)

२. कृष्णर् + ध्धिः = कृष्णर्धिः (ध् लोप)

१३. **उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य** (८/४/६१)– उद् के बाद यदि √स्था अथवा √स्तम्भ् धातु का प्रयोग हुआ हो तो स्था और स्तम्भ् के स् को पूर्व सवर्ण आदेश थ् हो जाता है।

यहाँ स् का सवर्ण थ् 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्'[3] परिभाषा के अनुसार होगा। अतः 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा से गुणकृत् सादृश्य के अनुसार विवार, श्वास, अघोष और महाप्राण प्रयत्न वाले स् के स्थान पर उसी गुण वाला पूर्व सवर्ण थ् आदेश हो जाता है।

---

१. इस सूत्र की व्याख्या देखें पृ०-५३।

२. इस सूत्र की व्याख्या देखें पृ०-५३।

३. इस सूत्र की व्याख्या के लिए इस पुस्तक का संज्ञा-प्रकरण सूत्र संख्या-१० देखें।

जैसे— उद् + स्थानम् = उद् + थ् + थानम् (स्→ थ्)।

स्पष्टीकरण— यहाँ उद् के पश्चात् √स्था धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर बना पद 'स्थानम्' आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से स् के स्थान पर पूर्वसवर्ण थ् आदेश होकर बना– उद् + थ् + थानम्।

इसी प्रकार उद् + स्तम्भनम् = उद् + त् + तम्भनम् में भी समझना चाहिए।

१४. **खरि च** (८/४/५५) (V. M. Imp.)– झल् प्रत्याहार के वर्णों को चर् प्रत्याहार के वर्ण आदेश रूप में होते हैं, यदि बाद में खर्, प्रत्याहार का कोई वर्ण प्रयुक्त हुआ हो तो। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को हम इस प्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं—

झलों को	चर् हो जाता है	खर् परे होने पर
क् ख् ग् घ् → कण्ठस्थानी	क्	क् ख्
च् छ् ज् झ् → तालुस्थानी	च्	च् छ्
ट् ठ् ड् ढ् → मूर्धास्थानी	ट्	ट् ठ्
त् थ् द् ध् → दन्तस्थानी	त्	त् थ्
प् फ् ब् भ् → ओष्ठस्थानी	प्	प् फ्
श् ष् स् ह् →	श् ष् स्	श् ष् स्

यह चर् आदेश 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के अनुसार ही होगा।

जैसे— सद् + कारः = सत्कारः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में सद् के अन्त में स्थित द्, झल् प्रत्याहार का वर्ण प्रयुक्त हुआ है तथा उसके बाद खर् प्रत्याहार का वर्ण 'कारः' के प्रारम्भ में प्रयुक्त क् आया है। अतः उपर्युक्त सूत्र से सद् के द् को चर् प्रत्याहार का वर्ण त् आदेश होकर शब्द बना— सत्कारः।

विशेष— इस प्रसङ्ग में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि श् ष् स् के स्थान पर श्, ष्, स् ही आदेश रूप में होंगे।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएँ—

१. दिग् + पालः = दिक्पालः, ग्→ क् (चर् प्रत्याहार का वर्ण)

२. सुहृद् + क्रीडति = सुहृत्क्रीडति, द्→ त् (चर् प्रत्याहार का वर्ण)

३. तज् + शिवः = तच्छिवः, ज्→ च् (चर् प्रत्याहार का वर्ण)

(शश्छोऽटि से श् को छ् आदेश)

४. तद् + परः = तत्परः, द्→ त् (चर् प्रत्याहार का वर्ण)

५. सत् + शीलः = सच्छीलः, त्→ च् (चर् प्रत्याहार का वर्ण)

६. उद् + साहः = उत्साहः, द्→ त् (चर् प्रत्याहार का वर्ण)

७. उद् + पन्नः = उत्पन्नः, द्→ त् (चर् प्रत्याहार का वर्ण)

विशेष ध्यातव्य— छात्रों को संधि प्रकरण में प्रायः सूत्र स्मरण करने में अत्यधिक संदेह रहता है, किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है कि यदि दो पदों के बीच तृतीय वर्ण का आगम हो तो 'झलां जशोऽन्ते' तथा यदि प्रथम वर्ण आदेश रूप में आए तो 'खरि च' सूत्र को ध्यान रखें।

१५. अपवाद सूत्र-**वावसाने** (८/४/५६)– यह 'खरि च' सूत्र का अपवाद प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार - यदि बाद में कोई भी वर्ण प्रयुक्त नहीं हुआ हो तो भी झल् प्रत्याहार के वर्णों को चर् प्रत्याहार के वर्ण आदेश रूप में विकल्प से हो जाते हैं। जैसे—

१. रामात् और रामाद्। २. वाक् और वाग्।

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार दोनों पद शुद्ध हैं।

स्पष्टीकरण— उपर्युक्त उदाहरणों में रामाद् में द्, झल् प्रत्याहार का वर्ण होने तथा उसके बाद कोई भी वर्ण प्रयुक्त न होने से उपर्युक्त अपवाद सूत्र से विकल्प में झल् को चर् (द् को त्) आदेश हो भी जाएगा और नहीं भी, अतः दोनों रूप बनेंगे। इसी प्रकार वाक् और वाग् में भी समझना चाहिए।

१६. **शश्छोऽटि** (८/४/६३) (M. Imp.)– पद के अन्त में प्रयुक्त झय् प्रत्याहार के वर्णों (वर्गों के १, २, ३, ४ वर्ण) के पश्चात् प्रयुक्त शकार को छकार हो जाता है, यदि उसके बाद अट् प्रत्याहार का वर्ण प्रयुक्त हुआ हो तो अट् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी स्वर, ह, य् व् र् ल् वर्ण आते हैं।

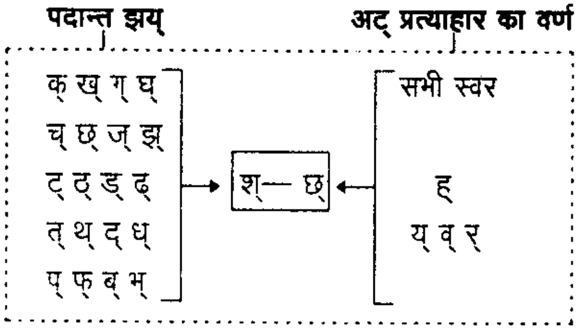

जैसे— तत् + शिवः = तच्शिवः, तच्छिवः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में दो सूत्रों का प्रयोग हुआ है। पहले 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८/४/४०) सूत्र से तत् के अन्त में प्रयुक्त तकार को बाद में शिवः में प्रयुक्त शकार आने के कारण च् होने तच्शिवः शब्द निष्पन्न हुआ।

पुनः प्रस्तुत सूत्र 'शश्छोऽटि' (८/४/६३) से तत् पद के अन्त में प्रयुक्त झय् प्रत्याहार के वर्ण च् के पश्चात् शिवः का शकार प्रयुक्त होने तथा उसके पश्चात् (श् + इ + वः) अट् प्रत्याहार का वर्ण इकार आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से श् को छ् होकर तच्छिवः शब्द निष्पन्न हुआ। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएं —

१. तत् + शिला = तच्शिला, तच्छिला

स्तोः श्चुना श्चुः से (त् को च्) (श् को छ्) शश्छोऽटि से

२. सत् + शीलः = सच्शीलः, सच्छीलः

स्तोः श्चुनाः श्चुः से (त् को च्) (श् को छ्) शश्छोऽटि से

३. उत् + श्रायः = उच्श्रायः, उच्छ्रायः

(उक्त उदाहरणों के समान) (त् को च्) (श्→ छ्)

१७.अपवाद सूत्र **छत्वममीति वाच्यम्** (वार्तिक सूत्र) प्रस्तुत सूत्र शश्छोऽटि (८/४/६३) के कार्यक्षेत्र में विस्तार करते हुए निर्देश कर रहा है कि श् के पश्चात् अम् प्रत्याहार के वर्ण (सभी स्वर, ह, अन्तस्थ वर्ण तथा वर्गों के पञ्चम वर्ण) हों तो भी श् को छ् हो जाता है, इस प्रकार भी कहना चाहिए।

कहने का तात्पर्य है कि 'शश्छोऽटि' ने श् के बाद ल् तथा वर्गों के पञ्चम वर्णों का उल्लेख नहीं किया था, किन्तु प्रस्तुत वार्तिक सूत्र ने इन वर्णों का उल्लेख करके 'शश्छोऽटि' के कार्यक्षेत्र में विस्तार कर दिया। अतः इसके परिप्रेक्ष्य में 'शश्छोऽटि' का अभिप्राय इस प्रकार होगा—

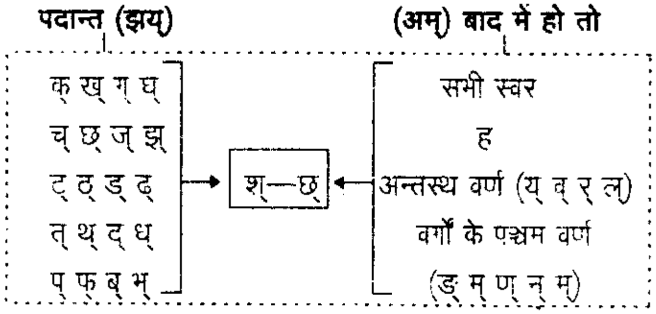

यहाँ भी श् को छ् विकल्प से होगा।

जैसे— तत् + श्लोकेन = तच्श्लोकेन, तच्छ्लोकेन

त्→ च् श्→ छ्

(स्तोः श्चुना श्चुः से) (शश्छोऽटि सहित वार्तिक सूत्र से)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में झय् प्रत्याहार के वर्ण तत् के अन्तिम त् के पश्चात् प्रयुक्त श्लोकेन पद के प्रारम्भ में, श् के पश्चात् प्रयुक्त अम् प्रत्याहार के वर्ण ल् आने के कारण उपर्युक्त वार्तिक सूत्र द्वारा 'शश्छोऽटि' के कार्यक्षेत्र में विस्तार

करने के कारण श् को छ् आदेश होकर बना– तच्छ्लोकेन। तत् के अन्तिम त् को च् 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से हुआ।

इस उदाहरण में शकार को छकार शश्छोऽटि सूत्र से नहीं हो रहा था। उपर्युक्त वार्तिक सूत्र के कारण ही यह सम्भव हो सका, किन्तु विकल्प की स्थिति में तच्श्लोकेन भी बनेगा।

१८. **मोऽनुस्वारः** (८/३/२३) (Imp.)– पद के अन्त में प्रयुक्त मकार को अनुस्वार हो जाता है, यदि बाद में कोई व्यञ्जन प्रयुक्त हुआ हो तो। इस विषय में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि पदान्त मकार स्वर रहित होना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो वह पदान्त मकार नहीं होगा, अपितु स्वरान्त होगा। इसलिए उस स्थिति में उसे अनुस्वार नहीं होगा।

जैसे— हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे।

स्पष्टीकरण— इस उदाहरण में हरिम् पद के अन्त में स्वर रहित मकार प्रयुक्त हुआ है तथा उसके पश्चात् वन्दे पद के प्रारम्भ में स्थित व्यञ्जन व् प्रयुक्त होने के कारण उपर्युक्त सूत्र से म् को अनुस्वार होकर हरिं वन्दे बना।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए।

१. धर्मम् + चर = धर्मं चर म् = ं
२. सत्यम् + वद = सत्यं वद म् = ं
३. कार्यम् + कुरु = कार्यं कुरु म् = ं

१९. अपवादसूत्र १ **नश्चापदान्तस्य झलि** (८/३/२४)– प्रस्तुत सूत्र मोऽनुस्वारः का अपवाद सूत्र है, क्योंकि उस सूत्र के अनुसार केवल पदान्त मकार को व्यञ्जन वर्ण परे होने पर अनुस्वार का विधान किया गया था, किन्तु इस सूत्र के अनुसार झल् प्रत्याहार का वर्ण (वर्गों के १,२,३,४ उष्म और ह वर्ण) बाद में होने पर अपदान्त न् और म् को भी अनुस्वार आदेश हो जाता है।

एक ही पद

अपदान्त **बाद में झल् प्रत्याहार का वर्ण**

न्, म् → ं (अनुस्वार)

क् ख् ग् घ्
च् छ् ज् झ्
ट् ठ् ड् ढ्
त् थ् द् ध्
प् फ् ब् भ्
श् ष् स् ह्

जैसे— यशान् + सि = यशांसि (न् को अनुस्वार स् परे होने पर)।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में यशांसि एक ही पद है। अतः यशान् के अपदान्त न् के पश्चात् झल् प्रत्याहार का वर्ण स् होने के कारण अपदान्त न् को भी उपर्युक्त सूत्र से अनुस्वार होकर यशांसि शब्द बना। 'मोऽनुस्वारः' से केवल पदान्त म् को ही अनुस्वार का विधान किया गया था। इस प्रकार इस सूत्र के द्वारा 'मोऽनुस्वारः' के कार्यक्षेत्र में भी विस्तार किया गया है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी इस नियम को समझने का प्रयास करना चाहिए—

क. पयान् + सि = पयांसि। (न् को अनुस्वार आदेश)
ख. नम् + स्यति = नंस्यति। (म् को अनुस्वार आदेश)
ग. आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते। (म् को अनुस्वार आदेश)

२०. अपवादसूत्र (२) **मो राजि समः क्वौ** (८/३/२५)– यह सूत्र भी मोऽनुस्वारः का अपवाद सूत्र है। उस सूत्र में पद के अन्त में प्रयुक्त म् को, बाद में व्यञ्जन वर्ण होने पर अनुस्वार हो जाता था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने उस नियम में थोड़ा परिवर्तन करते हुए कहा कि यदि पदान्त म् के बाद राज शब्द प्रयुक्त हुआ हो तो म् को अनुस्वार नहीं होगा, अपितु म् ही बना रहेगा।

जैसे— सम् + राज् = सम्राट्।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में सम् में पदान्त म् के बाद राज् शब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से म् को अनुस्वार न होकर म् ही बना रहा और बना– सम्राट्।

२१. **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** (८/४/५८) (M. Imp.)– अपदान्त अनुस्वार के पश्चात् यय् प्रत्याहार का वर्ण (वर्गों के १, २, ३, ४, ५ तथा अन्तस्थ) आए तो अनुस्वार को परसवर्ण अर्थात् अग्रिम वर्ण के वर्ग का पञ्चम अक्षर हो जाता है। यह परसवर्ण 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के अनुसार ही होगा।

जैसे— अं + कः = अङ्कः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में अपदान्त[1] अं में स्थित अनुस्वार के बाद यय् प्रत्याहार का वर्ण क् प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से अं के अनुस्वार को ङ् परसवर्ण आदेश इसलिए हुआ, क्योंकि बाद में क कण्ठस्थानी है। इसलिए अनुस्वार के स्थान पर कण्ठस्थानी के साथ कण्ठ एवं नासिका से उच्चारण किया जाने वाला ङ् वर्ण ही सवर्ण कहलाएगा। अतः यही आदेश होगा।

---

१. जो पद का अन्तिम न हो। जैसे- अं का अनुस्वार पदान्त नहीं है, अपितु पद के मध्य में स्थित है, क्योंकि यहाँ अं का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है—

अपदान्त अनुस्वार		यय् बाद में होने पर
ं →	ङ्	क् ख् ग् घ् ङ्
	ञ्	च् छ् ज् झ् ञ्
	ण् ←	ट् ठ् ड् ढ् ण्
	न्	त् थ् द् ध् न्
	म्	प् फ् ब् भ् म्
	यँ वँ रँ लँ	य् व् र् ल्

अन्य उदाहरण—

१. अं + चितः = अञ्चितः   २. गुं + जितः = गुञ्जितः

३. गुं + फितः = गुम्फितः   ४. शां + तः = शान्तः

५. शं + का = शङ्का   ६. कुं + ठितः = कुण्ठितः

२२. अपवादसूत्र **वा पदान्तस्य** (८/४/५९) (Imp.)– पदान्त अनुस्वार के बाद यय् प्रत्याहार का वर्ण आने पर परसवर्ण आदेश प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से होता है। पूर्व पर सूत्र और इस सूत्र में यही अन्तर है कि पहले सूत्र द्वारा अपदान्त अनुस्वार को यय् प्रत्याहार परे होने पर अनिवार्य रूप से परसवर्ण आदेश किया गया था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र पदान्त अनुस्वार को भी यय् प्रत्याहार परे होने पर परसवर्ण आदेश कर रहा है, किन्तु यह आदेश विकल्प से होगा अर्थात्, होगा भी और नहीं भी, इच्छा पर निर्भर है। दोनों प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध माने जाएँगे।

जैसे— त्वं + करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में त्वं पद के अन्त में प्रयुक्त अनुस्वार के पश्चात् करोषि के आरम्भ में स्थित 'क्' यय् प्रत्याहार का वर्ण प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से अनुस्वार को परसवर्ण (कण्ठ + अनुनासिक वर्ण) ङ् आदेश विकल्प से होकर त्वङ्करोषि तथा त्वं करोषि दोनों रूप बने।

इसी प्रकार इस नियम को अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए—

१. तृणं + चरति = तृणञ्चरति, तृणं चरति।

२. ग्रामं + गच्छति = ग्रामङ्गच्छति, ग्रामं गच्छति।

३. सं + गच्छध्वम् = सङ्गच्छध्वम्, सं गच्छध्वम्।

२३. **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्** (८/३/३२) (V. M. Imp.)– ह्रस्व स्वर के बाद यदि ङम् प्रत्याहार का वर्ण (ङ्, ण्, न्) प्रयुक्त हो तथा उसके पश्चात् कोई

भी स्वर आया हो तो ङम् प्रत्याहार के वर्ण (ङ्, ण्, न्) के पश्चात्, किन्तु बाद के स्वर से पूर्व क्रमशः ङ् ण् न् का आगम अतिरिक्त रूप में हो जाता है अर्थात् ङ् के पश्चात् ङ्, ण् के पश्चात् ण् और न् के पश्चात् न् का ही आगम होगा।

यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यह कार्य नित्य होता है, विकल्प से नहीं। यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध माना जाएगा।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है—

पूर्व में	बाद में	आगम	बाद में
कोई भी ह्रस्व स्वर→	ङ्	→ ङ्	कोई भी ह्रस्व
	ण्	→ ण् ←	या
	न्	→ न्	दीर्घस्वर

जैसे— प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा (ङ् के बाद ङ् का आगम)।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में प्रत्यङ् के य (य् + अ) में स्थित ह्रस्व अ के पश्चात् ङम् प्रत्याहार का वर्ण ङ् प्रयुक्त हुआ है तथा उसके बाद आत्मा के प्रारम्भ में स्थित आ स्वर का प्रयोग हुआ है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्'[1] परिभाषा के अनुसार ङ् के पश्चात् आ स्वर से पूर्व ङ् का अतिरिक्त आगम होकर प्रत्यङ् + ङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा शब्द निष्पन्न हुआ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएँ—

१. सुगण + ईशः = सुगण्णीशः (ग् + अ→ ण्→ **ण्**→ ई)

२. सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः (स् + अ→ न्→ **न्**→ अः)

३. तस्मिन् + इति = तस्मिन्निति (म् + इ→ न्→ **न्**→ इ)

२४. **ङ्णोः कुक् टुक् शरि** (८/३/२८)– यदि ङ् या ण् के पश्चात् शर् प्रत्याहार के वर्ण (श्, ष्, स्) हों तो विकल्प से शर् प्रत्याहार के वर्ण से पूर्व क् या ट् का आगम हो जाता है। अर्थात् 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' परिभाषा के अनुसार ङ् के बाद क् तथा ण् के बाद ट् का ही आगम होगा।

पूर्व में	आगम	शर् प्रत्याहार का वर्ण बाद में
ङ् ——→	क्	श्, ष्, स्
ण् ——→	ट्	

जैसे— सुगण + षष्ठः = सुगण्ट्षष्ठः।

१. इस सूत्र की व्याख्या के लिए देखिए इस पुस्तक का अच् संधि प्रकरण सूत्र संख्या-१४।

स्पष्टीकरण— उपर्युक्त उदाहरण में गण् पद के अन्त में प्रयुक्त ण् के पश्चात् शर् प्रत्याहार का वर्ण ष् आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से ण् के पश्चात् तथा ष् से पूर्व ट् का आगम होकर सुगण ट् षष्ठः शब्द बना।

विकल्प की स्थिति में जब यह नियम लागू नहीं होगा तो सुगणषष्ठः ही बनेगा।

इसी प्रकार प्राङ् + षष्ठः = प्राङ्क्षष्ठः = प्राङ्क्षष्ठः या प्राङ् षष्ठः में भी समझना चाहिए।

२५. **डः सि धुट्** (८/३/२९)– ड् के पश्चात् स् का प्रयोग होने पर ड् और स् के बीच विकल्प से ध् का आगम हो जाता है तथा उसके पश्चात् इस ध् को खरि च (८/४/५५) सूत्र से त् तथा इसी 'खरि च' से ड् को ट् हो जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार भी समझा जा सकता है—

पूर्व में	**आगम**	**बाद में**
ड् ⟶	ध्	⟵ स्
⟵ खरि च से ⟶		
ट्	त्	

जैसे— षड् + सन्तः = षट्त्सन्तः, षट् सन्तः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में षड् के अन्त में प्रयुक्त ड् के पश्चात् सन्तः के प्रारम्भ में स् का प्रयोग हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से ध् का आगम होकर बना— षड् · ध् · सन्तः। उसके बाद खरि च (८/४/५५) सूत्र से ध् को त् तथा ड् को ट् होकर षट्त्सन्तः शब्द बना।

विकल्प की स्थिति में जब यह नियम लागू नहीं होगा तो षड् सन्तः पद में 'खरि च' से ड् को ट् होकर षट्सन्तः शब्द बनेगा।

२६. **अपवादसूत्र नश्च** (८/३/३०)– प्रस्तुत सूत्र 'डः सि धुट्' का वस्तुतः विस्तारक अपवाद सूत्र है, क्योंकि यह उस सूत्र के कार्यक्षेत्र में विस्तार भी कर रहा है। इसके अनुसार केवल ड् के बाद ही नहीं, अपितु न् के पश्चात् भी स् का प्रयोग होने पर न् और स् के बीच विकल्प से ही धुट् (ध्) का आगम हो जाता है। (धुट् में उ और ट् इत् संज्ञक हैं। अतः उनका लोप हो जाता है) यहाँ भी ध् को 'खरि च' सूत्र से तकार हो जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं—

पूर्व में	**आगम**	**बाद में**
न् ⟶	ध् (धु ट्)	⟵ स्
	को	
	त् —— खरि च सूत्र से	

जैसे— सन् + सः = सन् + ध् + सः = सन्त्सः, सन्सः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में न् के पश्चात् सः का प्रयोग हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से न् और स् के बीच धुट् (ध्) का आगम पुनः 'खरि च' से ध् को त् आदेश होकर बना— सन्त्सः।

जब यह नियम विकल्प के कारण लागू नहीं होगा तो सन्सः ही बनेगा।

२६. **शि तुक्** (८/३/३१) (Imp.)– यदि न् के पश्चात् श् का प्रयोग हुआ हो तो न् तथा श् के बीच तुक् का आगम हो जाता है। तुक् में उ और क् इत् संज्ञक हैं। अतः उनका लोप हो जाता है और शेष बचता है—त्। पुनः श् को 'छत्वमिति वाच्यम्'[1] वार्तिक सूत्र से छ् आदेश हो जाता है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार भी प्रदर्शित किया जा सकता है—

पूर्व में	**आगम**	**बाद में**
न् ⟶	**त्** (तुक्)	⟵ श्
	(छत्वमिति वाच्यम् वार्तिक सूत्र से)	छ्

जैसे— सन् + शम्भुः = सन् + **त्** + शम्भुः = सन्त्शम्भुः = सन्त्छम्भुः = सन् च् छम्भुः = सञ्छम्भुः, सञ्छम्भुः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में सन् के अन्त में स्थित न् के पश्चात् शम्भुः के आरम्भ में स्थित श् आने का कारण उपर्युक्त सूत्र से न् और श् के बीच त् का आगम होकर सन् त्शम्भुः शब्द बना।

पुनः 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८/४/४०)– सूत्र से तकार को चकार होकर सन् च् शम्भुः रूप बना। इसके बाद इसी सूत्र से न् को ञ् होकर सञ् च् शम्भुः हुआ। इसके पश्चात् 'शश्छोऽटि' (८/४/६३) सूत्र से शम्भुः के श् को छ् होकर बना सञ्छम्भुः।

किन्तु विकल्प की स्थिति में जब यह नियम लागू नहीं होगा तो सञ्छम्भुः बनेगा, क्योंकि इस स्थिति में न् को ञ् 'स्तोः श्चुना श्चुः' से तथा श् को छ् 'शश्छोऽटि' से होंगे ही।

२८. **झयो होऽन्यतरस्याम्** (८/४/९२) (Imp.)– झय् प्रत्याहार के वर्णों (वर्गों के १, २, ३, ४) के पश्चात् हकार आने पर ह् को पूर्वसवर्ण आदेश विकल्प से हो जाता है।

'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के अनुसार— हकार का प्रयत्न संवाद, नाद, घोष और महाप्राण होने के कारण, इन्हीं प्रयत्नों वाले वर्गों के चतुर्थ वर्ण ही आदेश रूप में होंगे, क्योंकि ये ही पूर्व सवर्ण कहलाएँगे।

---

१. द्रष्टव्य अपवाद सूत्र १७, व्यञ्जन संधि प्रकरण।

पूर्व में झय् प्रत्याहार	आदेश	बाद में
क् ख् ग् घ्	→ घ्	
च् छ् ज् झ्	→ झ्	←—— ह
ट् ठ् ड् ढ्	→ ढ्	
त् थ् द् ध्	→ ध्	
प् फ् ब् भ्	→ भ्	

जैसे— तद् + हितः = तद्धितः (यहाँ ह् को ही ध् आदेश हुआ है)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में तद् में स्थित तवर्ग के द् के पश्चात् (जो झय् प्रत्याहार का वर्ण है) हितः के प्रारम्भ में स्थित ह का प्रयोग हुआ है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से उच्चारण, प्रयत्न आदि की दृष्टि से सवर्ण धकार आदेश होकर तद्धितः शब्द बना।

विशेष— इस सूत्र की व्याख्या में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यहाँ बाद में प्रयुक्त हकार में ही आदेश रूप परिवर्तन होता है। पूर्व वर्ण अपरिवर्तनीय रहता है।

इसी प्रकार कुछ अन्य उदाहरणों पर भी दृष्टिपात करें—

१. वाग् + हरिः = वाग्घरिः → ह् को घ् आदेश।
२. अच् + ह्रस्वः = अच्झ्रस्वः → ह् को झ् आदेश।
पुनः = अज्झ्रस्वः (झलां जशोऽन्ते से च् को ज् आदेश)
३. अच् + हीनम् = अच्झीनम् → ह् को झ् आदेश
= अज्झीनम् (झलां जशोऽन्ते से च् को ज् आदेश)
४. तद् + हानिः = तद्धानिः → ह् को ध् आदेश।
५. त्रिष्टुब् + हसति = त्रिष्टुब्भसति → ह् को भ् आदेश।

२९. **छे च** (६/१/७३)— ह्रस्व स्वर के पश्चात् छ वर्ण का प्रयोग होने पर स्वर और छ् के बीच तुक् का आगम हो जाता है। तुक् में उक् इत् संज्ञक है, अतः उसका लोप हो जाता है, शेष बचता है त्। उसके बाद 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से इस त् को च् आदेश हो जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार भी प्रदर्शित किया जा सकता है—

पूर्व में	आगम	बाद में
कोई भी ह्रस्व स्वर——→	त् (तुक्)	←—— छ् वर्ण
	च् (स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से)	

जैसे— शिव + छाया = शिवच्छाया (शिव त् छाया, शिव च् छाया)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में शिव के व में स्थित ह्रस्व स्वर (व् + अ = व) अ के पश्चात् छाया के प्रारम्भ में प्रयुक्त छ वर्ण आने के कारण उपर्युक्त 'छे च' सूत्र से त् का आगम होकर बना शिव त् छाया।

पुनः 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से इस त् को बाद में चवर्ग का छ् वर्ण होने के कारण च् आदेश होकर बना— शिवच्छाया = शिवच्छाया

इसी प्रकार स्व + छन्दः = स्वत्छन्दः = स्वच्छन्दः उदाहरण में भी समझना चाहिए।

३०. अपवादसूत्र **पदान्ताद् वा** (६/१/७६)— प्रस्तुत सूत्र इससे पूर्व प्रयुक्त सूत्र का अपवाद सूत्र है। इसके अनुसार पद के अन्तिम दीर्घ स्वर (आ ई ऊ आदि) के बाद छ् का प्रयोग होने पर विकल्प से तुक् का आगम होता है, तुक् में उक् इत् संज्ञक है। अतः उसका लोप हो जाता है, शेष बचता है त्।

इस तुक् का आगम 'आद्यन्तौ टकितौ'[1] (१/१/४६) परिभाषा सूत्र के अनुसार दीर्घ स्वर का अन्तिम अवयव ही होगा अर्थात् त् का आगम, दीर्घ स्वर और छ् के बीच ही होगा, अन्यत्र नहीं। पुनः 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से त् को च् आदेश पूर्ववत् हो जाता है।

पूर्व में		आगम	बाद में
	आ ——→		
दीर्घ स्वर	ई ——→	त् (तुक्)	छ् वर्ण
	ऊ ——→	च् (स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से)	

जैसे— लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मी त् छाया, लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में लक्ष्मी पद के अन्त में दीर्घ स्वर ई का प्रयोग हुआ है तथा उसके पश्चात् छाया के प्रारम्भ में छकार प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से दीर्घस्वर ईकार तथा छकार के बीच में त् का आगम होकर बना— लक्ष्मीत्छाया।

पुनः 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से त् को च् आदेश होकर बनेगा— लक्ष्मीच्छाया।

किन्तु विकल्प की स्थिति में जब यह नियम लागू नहीं होगा तब, लक्ष्मीछाया ही रहेगा।

३१. **नश्छव्यप्रशान्** (८/३/७) (M. Imp.)— पद के अन्त में प्रयुक्त न् को रु आदेश हो जाता है यदि बाद में छव् प्रत्याहार का वर्ण (च् छ्, ट् ठ्, त् थ्) आए

---

१. द्रष्टव्य व्यञ्जन संधि प्रकरण सूत्र संख्या-४२।

तथा उस छव् प्रत्याहार के वर्ण के पश्चात् अम् प्रत्याहार का वर्ण (स्वर, ह, अन्तस्थ, वर्गों के ५ वर्ण) प्रयुक्त हुआ हो तो। प्रशान् में यह नियम लागू नहीं होगा। रु मे उ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। शेष बचता है– र्। पुनः र् को 'खरवसानयोः विसर्जनीयः' से : (विसर्ग) आदेश होने पर 'विसर्जनीयस्य सः' से स् हो जाता है।

इस प्रकार इस सूत्र की व्याख्या में ये बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१. नकार, पद का अन्तिम होना चाहिए, जिसे रु आदेश होता है।

२. यह नकार प्रशान् पद का नहीं होना चाहिए।

३. नकार के पश्चात् छव् प्रत्याहार का कोई एक वर्ण प्रयुक्त होना चाहिए।

४. छव् प्रत्याहार के वर्ण के बाद अम् प्रत्याहार का वर्ण आना भी अनिवार्य है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार भी प्रदर्शित किया जा सकता है—

आरम्भ में	आदेश	बाद में छव्	उसके भी बाद अम्
पदान्त न्→	रु→ र्→ : → स् =	च् छ्व	→सभी स्वर
(प्रशान् को छोड़कर)		ट् ठ्	ह
	ँश्	त् थ्	अन्तस्थ
	(स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से)		वर्गों के ५ वर्ण

विशेष— इस सूत्र में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इसमें न् का अस्तित्व भी अनुस्वार रूप में बना रहता है। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी। जैसे— कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित्

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में कस्मिन् के अन्त में नकार का प्रयोग हुआ है और वह नकार प्रशान् का भी नहीं है। उसके पश्चात् चित् के प्रारम्भ में च् वर्ण छव् प्रत्याहार का है और च् के बाद अम् प्रत्याहार का वर्ण च् में स्थित स्वर इ प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र की सभी शर्तें पूर्ण होने के कारण न् को रु, रु को र्, र् को विसर्ग, विसर्ग को स् तथा स् को श् (ऊपर बताई प्रक्रिया से) होकर बना– कस्मिंश्चित्।

यहाँ म के ऊपर स्थित अनुस्वार न् के अस्तित्व को भी प्रदर्शित कर रहा है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी इस नियम को समझने का प्रयास करना चाहिए—

१. महान् + छेदः = महांश्छेदः (न्→ रु→ र्→ : → स्→ँश्)

किन्तु जिन स्थलों पर 'स्तोः श्चुना श्चुः' का अवसर नहीं होगा। वहाँ स् ही बना रहेगा जैसे—

१. तस्मिन् + तरौ = तस्मिंस्तरौ (न्→ रु→ र्→ : →ँस्)

२. पतन् + तरुः = पतंस्तरुः (न्→ रु→ र्→ : →ँस्)

३२. **समः सुटि** (८/३/५)– सम् के स्थान पर रु आदेश होता है, यदि बाद में सुट् का प्रयोग हुआ हो तो। यह रु 'अलोऽन्त्यस्य'[1] परिभाषा के अनुसार सम् के म् को ही होगा। यहाँ यह बात विशेषतया उल्लेखनीय है कि यह रु अनुनासिक होता है। रु को र्, र् को :, पुनः विसर्ग को स् पूर्व सूत्र में बताए गए विधान के अनुसार करना होगा।

जैसे— सम् + स्कर्ता = सं रु स्कर्ता = संर् स्कर्ता = (संस्स्कर्ता)।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में सम् के पश्चात् सुट् युक्त स्कर्ता पद प्रयुक्त होने के कारण उपर्युक्त सूत्र से सम् के म् के स्थान पर रुँ आदेश होकर बना स रुँ स्कर्ता।

विशेष— √कृ धातु से तृच् प्रत्यय का प्रयोग करके 'सम्परिभ्यां करो तौ भूषणे' (६/१/१३७) सूत्र से सुट् का आगम होकर बना स्कर्ता। सुट् में उट् इत् संज्ञक है। अतः उसका लोप हो जाता है, शेष बचता है– स्। अतः स्कर्ता का स् सुट् होने से उपर्युक्त नियम लागू हुआ।

३३. **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** (८/३/२) प्रस्तुत सूत्र रु से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक करने का विधान कर रहा है। अभी आपने देखा 'नश्छव्यप्रशान्' में रु से पूर्व अनुनासिक था। इसी प्रकार 'समः सुटि' में भी रु से पूर्व अनुनासिक था। उन सभी स्थलों पर प्रस्तुत सूत्र ही अनुनासिक या अनुस्वार करने में कारण रहा था।[2]

प्रस्तुत सूत्र के अनुसार– जहाँ जहाँ 'ससजुषो रुः' से भिन्न रु आदेश होता है। उन-उन स्थलों पर रु से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक हो जाता है।

जैसे— सम् + स्कर्ता = सँ रु स्कर्ता।

स्पष्टीकरण—प्रस्तुत उदाहरण में 'ससजुषो रुः' से भिन्न रु आदेश होने के कारण रु से पूर्व वर्ण स् को अनुनासिक सं होकर बना - सं रु स्कर्ता वस्तुतः प्रस्तुत सूत्र केवल रु से पूर्व के वर्ण को अनुनासिक ही करता है। किन्तु यह नियम विकल्प से होने के कारण स रु स्कर्ता रूप भी बनेगा।

३४. अपवादसूत्र **अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः** (८/३/४)– प्रस्तुत सूत्र इससे पूर्व प्रयुक्त सूत्र 'अत्रानुनासिकः' इत्यादि का अपवाद एवं विस्तारक सूत्र है, क्योंकि वह सूत्र रु से पूर्व वर्ण को अनुनासिक विकल्प से कर रहा था, किन्तु यह सूत्र विकल्प की स्थिति में भी जिन स्थलों पर रु से पूर्व अनुनासिक नहीं होता, वहाँ भी पूर्ववर्ती वर्ण के पश्चात् अनुस्वार के आगम का विधान कर रहा है। अर्थात् 'ससजुषो रुः' से भिन्न सभी रु आदेश वाले स्थलों पर पूर्ववर्ती वर्ण पर अनुस्वार का आगम अनिवार्य रूप से होगा।

---

१. व्याख्या के लिए द्रष्टव्य अच् संधि प्रकरण सूत्र २७।

२. अग्रिम सूत्र संख्या ३४ भी इसका सहयोगी सूत्र है। अतः उसका भी ध्यानपूर्वक अध्ययन करें।

जैसे— सम् + स्कर्ता = सं रु→ र्→ स्[1] = स्कर्ता।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में 'समः सुटि' से म् के आदेश रूप रु के पूर्ववर्ती वर्ण स को अनुस्वार होकर बना– सं रु रकर्ता।

विशेष— पूर्व सूत्र 'समः सुटि' से रु के केवल म् के स्थान पर आदेश रूप में करने का विधान किया था। 'अत्रानुनासिकः' इत्यादि ने सँ को अर्थात् रु के पूर्ववर्ती वर्ण को अनुनासिक विधान किया और प्रस्तुत सूत्र ने रु के पूर्ववर्ती वर्ण स को अनुस्वार सं करने के लिए आदेश किया। अतः तीनों सूत्रों के कार्यों को भलीभाँति समझ लेना चाहिए।

३५. **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** (८/३/१५) (M. Imp.)– प्रस्तुत सूत्र वस्तुतः विसर्ग-संधि का सूत्र है, किन्तु हल् संधि प्रकरण में भी इसकी उपयोगिता होने के कारण लघुसिद्धान्त कौमुदी में इसे इसी प्रकरण में रखा गया है; इस लिए हम यहाँ इसकी व्याख्या कर रहे हैं।

इस सूत्र के अनुसार यदि बाद में खर् प्रत्याहार का वर्ण (वर्ग के १, २ वर्ण तथा उष्म) प्रयुक्त हुआ हो अथवा कुछ भी न आया हो तो रकार को विसर्ग आदेश होता है।

पूर्व में	आदेश	बाद में
र् ⟶	: (विसर्ग)	कुछ भी न होने पर अथवा खर् प्रत्याहार के वर्ण क् च् ट् त् प्, श् स् ष् ख् छ् ठ् थ् फ् होने पर

जैसे— सम् + स्कर्ता = सं रु— र्— :— स् स्कर्ता = संस्स्कर्ता।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में 'समः सुटि' (८/३/५) सूत्र से सम् के म् को पहले रु आदेश हुआ। पुनः रु के उ को इत् संज्ञा होकर लोप, बचा– र्-सं र् स्कर्ता। इस स्थिति में र् के पश्चात् खर् प्रत्याहार का वर्ण स् आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से र् को विसर्ग आदेश होकर बना— सं : स्कर्ता। इसके पश्चात् अग्रिम सूत्र 'विसर्जनीयस्य सः' कार्य करेगा।

इसी प्रकार अवसान के उदाहरण रूप में रामः पद को ले सकते है।

---

१. यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संस्कर्ता शब्द व्याकरण की दृष्टि से पूर्णतया शुद्ध है, किन्तु ऐसा प्रयोग में नहीं आता। उसमें भाष्यकार का वचन 'समो वा लोपमेके' प्रमाण है। इसलिए संस्कार प्रयोग होता है।

राम + रु	रु के उ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा तथा लोप।
राम + स्	ससजुषो रुः से स् को रु।
राम + रु	पुनः रु के उ की इत् संज्ञा और लोप।
राम + र्	पुनः प्रस्तुत सूत्र 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से बाद में कुछ न होने के कारण (अवसान होने से) र् को विसर्ग आदेश होकर बना– रामः।

३६. **विसर्जनीयस्य सः** (८/३/३४) (V. M. Imp.)– यदि खर् प्रत्याहार के वर्णों (वर्गों के १, २ तथा उष्म वर्ण) में से कोई भी वर्ण बाद में आए तो विसर्ग को स् आदेश हो जाता है। यह सूत्र भी विसर्ग संधि का सूत्र है, किन्तु लघुसिद्धान्त कौमुदी में यह हल् संधि प्रकरण में आया है। अतः यहीं पर हम इसकी भी व्याख्या कर रहे हैं।

		बाद में
विसर्ग (:) को ⟶	**स् आदेश**	⟵ खर् प्रत्याहार का वर्ण क् च् ट् त् प् ख् छ् ठ् थ् फ् श् ष् स् प्रयुक्त होने पर

जैसे— सम् + स्कर्ता = सं रु→ र्→ : → स्→ संस्स्कर्ता।

स्पष्टीकरण— सूत्र ३५ में स्पष्टीकरण के अन्तर्गत र् को विसर्ग खरवसानयोः इत्यादि से हुआ। पुनः उसके पश्चात् स्कर्ता के प्रारम्भ में प्रयुक्त खर् प्रत्याहार का वर्ण स् प्रयुक्त होने के कारण उपर्युक्त 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र से विसर्ग को स् होकर बना— सं स् स्कर्ता।

३७. **तस्मादित्युत्तरस्य** (१/१/६७)– आचार्य पाणिनि द्वारा विरचित सूत्रों के जिन पदों में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग करके निर्देश किया गया हो, वह कार्य ठीक उस पद के बाद के स्थान पर किया जायेगा। यह परिभाषा सूत्र है।

जैसे— 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' इत्यादि सूत्र में उदः पद में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। अतः प्रस्तुत परिभाषा सूत्र के आधार पर इस पद द्वारा निर्दिष्ट विधान इस पद के ठीक पश्चात् किया जाएगा। इसी कारण उद् थ् थानम् में थ् आदेश उद् के ठीक बाद में ही हुआ है।

३८. **आदेः परस्य** (१/१/५३)– यह भी पूर्व सूत्र के समान ही परिभाषा सूत्र है। इसके अनुसार पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग करके जिस पद के द्वारा जो आदेश परवर्ण के स्थान पर किया जाता है, वह आदेश परवर्ण के प्रारम्भिक वर्ण के स्थान पर ही होगा, सम्पूर्ण पद या केवल परवर्ण के अन्त में स्थित वर्ण के स्थान पर नहीं होगा।

जैसे— उद् + स्थानम् = उत्थानम्, इत्यादि उदाहरण में 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' सूत्र द्वारा बाद में स्थित √स्था धातु के स्थान पर पूर्व सवर्ण आदेश का विधान किया गया था।[1] प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या के अनुसार यह आदेश इस धातु के आदि वर्ण सकार के स्थान पर ही होगा, सम्पूर्ण √स्था धातु अथवा अन्य किसी वर्ण के स्थान पर नहीं। यह मार्गदर्शन हमें उपर्युक्त सूत्र के द्वारा ही प्राप्त हुआ।

३९. **हे मपरे वा** (८/३/२६)– प्रस्तुत सूत्र 'मोऽनुस्वारः' का अपवाद सूत्र है, किन्तु सूत्र में 'वा' पद का प्रयोग होने से यह विकल्प का भी प्रावधान कर रहा है। 'मोऽनुस्वारः' में म् वर्ण के बाद व्यञ्जन वर्ण आने पर म् को अनुस्वार होता था, किन्तु इस सूत्र ने कहा कि यदि म् वर्ण के पश्चात् हकार का प्रयोग हुआ हो तो म् वर्ण के स्थान पर अनुस्वार विकल्प से होगा अर्थात् म् को म् वर्ण भी बनेगा और अनुस्वार भी होगा।

जैसे— किम् + ह्मलयति = किं ह्मलयति, किम्ह्मलयति।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में किम् के अन्त में प्रयुक्त म् वर्ण के पश्चात् हकार का प्रयोग होने से म् को अनुस्वार विकल्प से होने के कारण दोनों रूप बनेंगे— किं ह्मलयति और किम्ह्मलयति।

४०. **यवल परे यवला वा** (वार्तिक सूत्र)—यह वार्तिक सूत्र भी 'मोऽनुस्वारः' का अपवाद सूत्र है तथा म् वर्ण को विकल्प से अनुस्वार विधान करने के साथ-साथ म् वर्ण के पश्चात् यकार के साथ संयुक्त ह, वकार के साथ संयुक्त ह् तथा लकार के साथ संयुक्त ह वर्ण बाद में होने पर (ह्यः, ह्व, ह्ल) हकार से ठीक पहले 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के अनुसार मकार को अनुनासिक यकार, अनुनासिक वकार और अनुनासिक लकार आदेश हो जाते हैं।

जैसे— १. किम् + ह्यः = किय्ँ ह्यः, किं ह्यः।

२. किम् + ह्वलयति = किव्ँ ह्वलयति, किं ह्वलयति।

३. किम् + ह्लादयति = किल्ँ ह्लादयति, किं ह्लादयति।

स्पष्टीकरण— उपर्युक्त प्रथम उदाहरण में किम् पद के अन्तिम मकार के पश्चात् ऐसा हकार प्रयोग हुआ है जिसके साथ संयुक्त रूप में यकार भी जुड़ा हुआ है। अतः उपर्युक्त वार्तिक सूत्र से म् के स्थान पर अनुनासिक यकार य्ँ आदेश रूप में होकर बना– किय्ँ ह्यः।

किन्तु विकल्प की स्थिति में मोऽनुस्वारः सूत्र से मकार को अनुस्वार ही हुआ और बना– किं ह्यः।

४१. **नपरे नः** (८/३/२७) यह सूत्र भी पूर्व सूत्र के समान ही 'मोऽनुस्वारः सूत्र के अपवाद रूप में उसके कार्यक्षेत्र में विस्तार कर रहा है। इसके अनुसार—

१. द्रष्टव्य सूत्र संख्या १३।

यदि बाद में नकार युक्त हकार (ह्न) प्रयुक्त हुआ हो तो पद के अन्तिम मकार को विकल्प से नकार आदेश हो जाता है। पक्ष में 'मोऽनुस्वारः' से मकार को अनुस्वार ही होगा।

जैसे— किम् + ह्नुते = किन्ह्नुते, किं ह्नुते।

स्पष्टीकरण– प्रस्तुत उदाहरण में किम् के अन्त में प्रयुक्त मकार के पश्चात् ऐसा हकार प्रयुक्त हुआ है, जिसमें नकार संयुक्त है। अतः उपर्युक्त सूत्र से किम् के मकार के स्थान पर नकार आदेश होकर बना– किन्ह्नुते तथा विकल्प की स्थिति में जब म् को अनुस्वार होगा तब बनेगा किं ह्नुते।

४२. **आद्यन्तौ टकितौ** (१/१/४६) **(Imp.)**– जिसमें टवर्ण की इत् संज्ञा हुई हो, उसे टित् कहते हैं। ऐसा प्रत्यय जिसे विधान किया जाए तो वह उसके आदि में होता है तथा जिसमें क् की इत् संज्ञा हुई हो, ऐसा कित् प्रत्यय विधान किए जाने पर अन्त में होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि– विधान किए जाने पर टित् प्रत्यय पहले रखा जाएगा और कित् प्रत्यय बाद में। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी।

जैसे— षड् सन्तः में 'डः सि धुट्' से सकार के अवयव के रूप में ध् के आगम का विधान किया गया, क्योंकि धुट् में उट् की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है, ध् तथा ट् की इत् संज्ञा होने से यह ध् टित् भी हुआ। अतः उपर्युक्त परिभाषा सूत्र से यह ध् सकार से पहले ही होगा। षड् + ध् + सन्तः।

इसी प्रकार कित् प्रत्यय के विधान में भी समझना चाहिए।

४३. **पुमः खय्यम्परे** (८/३/६)– पुम् के अन्तिम म् को रु आदेश हो जाता है, यदि बाद में अम् प्रत्याहार के वर्ण से युक्त (स्वर, अन्तस्थ, ह, वर्गों के ५ म वर्ण) खय् प्रत्याहार का वर्ण (वर्गों के १, २ वर्ण) प्रयुक्त हुआ हो। यहाँ रु में उ इत्संज्ञक है, शेष बचता है– र् तथा उसे 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर तथा उसके बाद 'विसर्जनीयस्य सः' से स् आदेश हो जाता है।

जैसे— पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में पुम् पद के पश्चात् खय् प्रत्याहार के वर्ण ककार का प्रयोग हुआ है तथा वह ककार भी अम् प्रत्याहार के वर्ण ओ स्वर से युक्त प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से पुम् के म् को रु आदेश होकर बना पु– रु कोकिलः। इस विषय में एक बात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ 'अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः' (८/३/४) सूत्र संख्या ३४ से रु के पूर्ववर्ण पु को अनुस्वार होकर पुं रु कोकिलः बनेगा। रु को स् बनने की प्रक्रिया व्याख्या में बता दी गई है। अन्त में पुंस्कोकिलः शब्द निष्पन्न होगा।

४४. **नॄन् पे** (८/३/१०)– पकार बाद में होने पर नॄन् के स्थान पर प्रस्तुत सूत्र रु आदेश कर रहा है। पूर्ववत् इस रु में उ इत्संज्ञक है। शेष बचता है– र्

और यह र् आदेश भी 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषा के अनुसार अन्तिम न् के स्थान पर ही होगा।

जैसे— नृन् + पाहि = नृ रु पाहि = नृ र् पाहि।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में नृन् पद के पश्चात् पाहि का पकार आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से तथा अलोऽन्त्यस्य परिभाषा की सहायता से नृन् के न् को रु आदेश होकर बना– नृ रु पाहि। यहाँ भी पहले सूत्र के समान ही 'अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः' (८/३/४) के द्वारा रु से पूर्व वर्ण नृ को अनुनासिक या अनुस्वार होकर नृँ रु पाहि।

यहाँ रु के उ की इत्संज्ञा और लोप होकर नृँ र् पाहि। पुनः र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग आदेश नृँ र्→: पाहि। इसके बाद 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र से विसर्ग को स् प्राप्त था, किन्तु अग्रिम सूत्र ने उसका निषेध कर दिया।

४५. **कुप्वोः कपौ च** (८/३/३७)– कवर्ग या पवर्ग का वर्ण बाद में होने पर विसर्ग को जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश होते हैं। विकल्प में विसर्ग को, विसर्ग भी बना रहता है। कहने का तात्पर्य है कि यदि बाद में कवर्ग का वर्ण होगा तो जिह्वामूलीय तथा पवर्ग का वर्ण होगा तो उपध्मानीय आदेश होगा।

जैसे — नृं : पाहि।

स्पष्टीकरण— पूर्व सूत्र के अन्त में नृं: पाहि तक हमने सिद्ध कर दिया था; अत: उसके परिप्रेक्ष्य में अब आगे विचार करते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में रु के विसर्ग के पश्चात् पाहि में स्थित प् वर्ण का प्रयोग हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से पवर्ग का प्रयोग होने के कारण विसर्ग को उपध्मानीय आदेश होकर बना– नृंपाहि।

किन्तु अभाव के पक्ष में जब यह उपध्मानीय नहीं होगा तो विसर्ग ही रहेंगे और रूप बनेगा— नृं:पाहि।

क्योंकि न् को रु भी विकल्प से होता है, तब अभाव के पक्ष में नृन् पाहि भी बनेगा। इनमें अनुनासिक रूप भी बनेंगे नृँ: पाहि, नृँपाहि।

४६. **तस्य परमाम्रेडितम्** (८/१/२)– यह संज्ञा सूत्र है, क्योंकि यह आम्रेडित को परिभाषित कर रहा है। इसके अनुसार– जो पद दो बार पढ़ा जाए उसके बाद वाला रूप आम्रेडित कहलाता है।

जैसे— कान् कान्।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में कान् पद का दो बार प्रयोग हुआ है। दूसरे शब्दों में वह दो बार पढ़ा गया है। अतः उपर्युक्त सूत्र से बाद वाले कान् पद की आम्रेडित संज्ञा होगी। वस्तुतः प्रस्तुत सूत्र का 'कानाम्रेडिते' इत्यादि अग्रिम सूत्र में उपयोग होगा।

४७. **कानाम्रेडिते**[1] (८/३/१२) आम्रेडित बाद में होने पर प्रथम कान् शब्द के न् के स्थान पर रु आदेश हो जाता है। यह रु भी 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषा के अनुसार नकार के स्थान पर ही होगा। शेष प्रक्रिया पूर्व में बताए गए सूत्रों के अनुसार ही होगी।

जैसे— कान् कान् = का रु कान् = कौं र्→ :→ स् कान्— कांस्कान्।

स्पष्टीकरण—प्रस्तुत उदाहरण में कान् का दो बार प्रयोग होने से अन्तिम कान् की आम्रेडित संज्ञा हुई तथा उपर्युक्त सूत्र से आम्रेडित बाद में होने पर पूर्व प्रयुक्त कान् के अन्तिम न् को रु आदेश और 'अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः' से रु से पूर्व वर्ण का अनुनासिक कौं होकर बना— कौं रु कान्। पुनः रु को र्, र् को विसर्ग, विसर्ग को स् पूर्ववत् होकर बना कौंस्कान्। कांस्कान् रूप भी बनेगा।

४. विसर्ग सन्धि

४८. **ससजुषो रुः** (८/२/६६) (M. Imp.)– पद के अन्त में स्थित स् तथा सजुष् के ष् को रु आदेश होता है। इस रु को प्रायः विसर्ग हो जाता है। इस रु के विषय में एक बात जानने योग्य है कि यह हल् सन्धि प्रकरण में बताए गये रु से भिन्न होता है, क्योंकि इससे पूर्व का वर्ण अनुनासिक या अनुस्वार युक्त नहीं होता।

जैसे— राम + सु = राम + स् = राम + रु→ (उ लोप) र्→ :।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में सु के उ की इत् संज्ञा होकर[2] लोप हुआ और बना राम + स्। पुनः उपर्युक्त सूत्र से स् को रु आदेश होकर बना राम + रु। जिसमें रु के उ की पुनः इत्संज्ञा होकर लोप होकर बनता है, राम + र्। इस र् को पूर्व कथित[3] 'खरवसानयोर्विसर्जनीय': सूत्र से विसर्ग आदेश होकर बनता है– रामः।

४९. **वा शरि** (८/३/३६) (Imp.)– प्रस्तुत सूत्र विसर्जनीयस्य सः (८/३/३४) (सूत्र संख्या ३६) सूत्र का अपवाद है। इसके अनुसार - यदि शर् प्रत्याहार का वर्ण (श् ष् स्) बाद में प्रयुक्त हुआ हो तो विसर्ग को स् विकल्प से होता है अर्थात् विसर्ग को स् होता भी है और नहीं भी, विकल्प की स्थिति में विसर्ग ही बना रहेगा।

जैसे— हरिः + शेते = हरि स् शेते = हरिश्शेते, हरिःशेते।

स्पष्टीकरण—प्रस्तुत उदाहरण में हरिः के अन्त में प्रयुक्त विसर्गों को बाद में शर् प्रत्याहार का वर्ण शेते के प्रारम्भ में स्थित श् प्रयुक्त होने के कारण उपर्युक्त

---

१. वस्तुतः लघुसिद्धान्त कौमुदी में हल् संधि प्रकरण में सूत्रों की संख्या कुल मिलाकर ४१ है, किन्तु हमने बीच में प्रयुक्त वार्तिक सूत्रों को भी संख्याबद्ध किया है। अतः यह संख्या ४७ हो गई है।

२. उपदेशेऽजनुनासिक इत् संज्ञा सूत्र से।

३. सूत्र संख्या ३५।

सूत्र से विसर्ग को स् विकल्प से हुआ अर्थात् हरि स् शेते और हरिः शेते दोनों रूप बने।

विशेष— यहाँ विसर्ग को स् आदेश 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र से होता है, 'वा शरि' तो केवल विकल्प का प्रावधान कर रहा है। 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र की व्याख्या हम सूत्र संख्या ३६ पर कर आए हैं। अतः पुनः यहाँ व्याख्या नहीं की गई है।

५०. **अतो रोरप्लुतादप्लुते** (६/१/११३) (M. Imp.)– ह्रस्व अकार के पश्चात् रु को उ हो जाता है, यदि बाद में ह्रस्व अकार प्रयुक्त हुआ हो तो।

जैसे— शिव स् + अर्च्यः = शिव स्→ रु→ उ + अर्च्यः।

स्पष्टीकरण—प्रस्तुत उदाहरण में शिव के व में स्थित ह्रस्व अकार के पश्चात् स् प्रयुक्त हुआ है, जिसे पहले रु, पूर्व में बताई गई प्रक्रिया से हुआ, उसके पश्चात् अच्यः के प्रारम्भ में स्थित ह्रस्व अकार आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से रु को उ आदेश होकर बना– शिव उ अर्च्यः। इसके पश्चात् आद् गुण[1] सूत्र से शिव के व में स्थित अ और उ को मिलकर गुण ओ आदेश होकर बना– शिव् + ओ + अर्च्यः। पुनः एङः पदान्तादति[2] सूत्र से अर्च्यः के अ को पूर्वरूप एकादेश होकर बना– शिवोऽर्च्यः।

५१. **हशि च** (६/१/११४) (V. M. Imp.)– प्रस्तुत सूत्र इससे पूर्व के सूत्र के कार्यक्षेत्र में विस्तार कर रहा है। इसके अनुसार ह्रस्व अकार के बाद प्रयुक्त रु को उ आदेश हो जाता है। यदि बाद में हश् प्रत्याहार का वर्ण (ह, अन्तस्थ, वर्गों के ३, ४, ५ वर्ण) प्रयुक्त हुआ हो तो। स्पष्ट है कि 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' सूत्र की शर्त थी कि बाद में ह्रस्व अकार प्रयुक्त होने पर रु को उ आदेश होता है।

किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने कहा रु को उ आदेश, बाद में हश् प्रत्याहार का वर्ण होने पर भी होगा। शेष शर्तें पूर्ववत् ही रहेंगी।

जैसे— शिवस् + वन्द्यः = शिव रु वन्द्यः = शिव रु→ उ वन्द्यः =व् + अ + उ = ओ।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत सूत्र में शिव के अन्तिम व में स्थित अ के पश्चात् प्रयुक्त स् को 'ससजुषो रुः' से रु आदेश होकर बना– शिव रु वन्द्यः। पुनः बाद में वन्द्यः में स्थित हश् प्रत्याहार का वर्ण व होने के कारण रु को उ 'आदेश' = शिव + उ + वन्द्यः। इसके बाद शिव के व में स्थित अ और उ को मिलाकर आद्गुणः सूत्र से गुणादेश ओ होकर बना = शिवो वन्द्यः।

---

१. द्रष्टव्य अच् संधि सूत्र संख्या ५।

२. द्रष्टव्य अच् संधि सूत्र संख्या ८।

५२. **भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य योऽशि** (८/३/१७) (Imp.)– भोस् भगोस् अघोस् शब्दों में से किसी भी एक के बाद अथवा अ या आ के बाद प्रयुक्त रु को य् आदेश हो जाता है, यदि बाद में अश् प्रत्याहार का वर्ण (स्वर, ह, अन्तस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) प्रयुक्त हुआ हो तो। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'रु' ससजुषो रुः सूत्र से होता है। उपर्युक्त दो स्थितियों में यह रु, य् में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रक्रिया को हम इस प्रकार भी प्रकट कर सकते हैं—

प्रस्तुत सूत्र से — **अश् प्रत्याहार का वर्ण**

१. भोः → स्→ रु→ य् ← स्वर, ह, अन्तस्थ
भगोः → स्→ रु→ य् ← ग् ध् ङ्
अघोः → स्→ रु→ य् ← ज् झ् ञ्
(विसर्जनीयस्य सः से) (ससजुषो रुः से) — ड् ढ् ण्
विसर्ग को स् — स् को रु — द् ध् न्
ब् भ् म्

२. अ या आ→ : → स्→ रु→ **य्**

जैसे— देवास् + इह = देवास्→ रु→ य् + इह = देवायिह।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में देवा पद के अन्त में व् में स्थित आ के पश्चात् प्रयुक्त स् को 'ससजुषो रुः' से रु आदेश होने पर, उसके पश्चात् इह का 'इ' अश् प्रत्याहार का वर्ण होने के कारण उपर्युक्त सूत्र से रु को य् आदेश होकर बना– देवा य् इह = देवायिह।

विशेष— यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि इस य् आदेश को 'लोपः शाकल्यस्य' (८/३/१९) सूत्र के द्वारा विकल्प से लोप होता है। अर्थात् य् का लोप होने की स्थिति में देवा इह रूप बनेगा और संधि कार्य आदि नहीं होंगे। किन्तु आगे आने वाले सूत्र से य् लोप नित्य होगा, इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएँ।

५३. **हलि सर्वेषाम्** (८/३/२२) (M. Imp.)– 'भोभगोऽघोऽपूर्वस्य येऽशि' सूत्र से जिस रु को य् आदेश हुआ था, उस य् का 'लोपः शाकल्यस्य' सूत्र से विकल्प लोप का विधान किया गया था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र के अनुसार उस य् का नित्य लोप हो जाता है, यदि बाद में कोई हल् प्रत्याहार का वर्ण अर्थात् व्यञ्जन हो तो।

अतः यह निश्चित हुआ कि रु के य् का लोप बाद में व्यञ्जन वर्ण होने पर 'हलिसर्वेषाम्' सूत्र से नित्य रूप से होगा और स्वर वर्ण होने पर इस य् का लोप 'लोपः शाकल्यस्य' सूत्र से विकल्प से होगा।

जैसे— भोस् + देवाः = भो स्→ रु→ य् (लोप) देवाः = भो देवाः।

स्पष्टीकरण— उपर्युक्त उदाहरण में भोस् के अन्त में स्थित स् को `ससजुषो रुः' से रु, पुनः `भोभगोऽधोऽपूर्वस्य योऽशि' सूत्र से रु को य् आदेश होकर बना– भो य् देवाः। पुनः उपर्युक्त `हलिसर्वेषाम्' सूत्र से य् आदेश के पश्चात् हल् प्रत्याहार का वर्ण देवाः के प्रारम्भ में स्थित द् आने के कारण य् लोप अनिवार्य एवं नित्य रूप से होकर बना– भो देवाः। यहाँ भी एक बात ध्यातव्य है कि य् लोप होने की स्थिति में संधिकार्य आदि नहीं होते हैं।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएँ—

१. मनुष्याः + गच्छन्ति = मनुष्या स्→ रु→ य् (लोप) गच्छन्ति = मनुष्या गच्छन्ति।

२. देवाः + नम्याः = देवा स्→ रु→ य् (लोप) नम्याः देवा = नम्याः।

५४. **रोऽसुपि** (८/२/६९)– अहन् के न् को र् आदेश हो जाता है यदि बाद में सुप् प्रत्यय का प्रयोग न हुआ हो तो। यहाँ सुप् से अभिप्राय सु औ जस् आदि २१ प्रत्ययों से है।[1] जैसे— अहन् + अहः = अहरहः (अह न्→ र् + अ र हः)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में अहन् पद के अन्तिम न् को र् आदेश उपर्युक्त सूत्र से हुआ, क्योंकि बाद में सुप् प्रत्यय का प्रयोग नहीं हुआ है, अपितु अहः पद आया है। पुनः र् में अहः का अ संयुक्त होकर बना– अहरहः।

इसी प्रकार अहन् + गणः = अहर्गणः में भी समझना चाहिए।

विशेष— यदि बाद में सुप् विभक्ति का प्रयोग होगा तो न् को र् आदेश नहीं होगा, अपितु न् को रु और उ आदि होकर अहन्→ रु→ उ -भ्याम् = अहोभ्याम् रूप बनेगा।

५५. **रोरि** (८/३/१४) (Imp.)– यदि र् वर्ण के बाद र् आता है तो पहले र् का इस सूत्र से लोप हो जाता है।

जैसे— पुनर् + रमते = पुन रमते।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में पुनर् के अन्त में प्रयुक्त र् के पश्चात् रमते के प्रारम्भ में प्रयुक्त र आने के कारण पहले प्रयुक्त र् का उपर्युक्त सूत्र से लोप होकर बना– पुन रमते। इसके बाद अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

५६. **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** (६/३/१११) (M. Imp.)– ढ् या र् का लोप होने पर उससे पहले प्रयुक्त अण् प्रत्याहार के वर्ण अ, इ, उ को दीर्घ हो जाता है।

जैसे— पुनर् + रमते = पुन (न् + अ-आ दीर्घ = ना) = पुना रमते।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण मे पुनर् के र् का बाद में र् आने के कारण `रोरि' सूत्र से लोप होकर बना– पुन रमते। पुनः र् का लोप होने के कारण

१. द्रष्टव्य संज्ञा प्रकरण, सूत्र १४, पादटिप्पणी १।

उपर्युक्त सूत्र से लुप्त वर्ण से पूर्व प्रयुक्त न में स्थित अ को दीर्घ आ होकर बना– पुना रमते।

५७. **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** (१/४/२)– यदि एक ही स्थान पर एक समान बल वाले दो सूत्रों का प्रयोग हो रहा हो अर्थात् दोनों लागू हो रहे हों तो अष्टाध्यायी के क्रम में बाद वाला सूत्र[1] प्रभावी होगा, पहले वाला नहीं? अतः बाद वाले सूत्र से जो कार्य हो रहा होगा, वही कार्य होगा, अन्य नहीं।

जैसे—मनस् + रथः=मन स्→रु (र्)→ उ→ न में स्थित अ+ उ = ओ = मनोरथः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में मनस् के अन्त में प्रयुक्त स् को `ससजुषो रुः' से रु आदेश, रु के उ की इत् संज्ञा होकर लोप, शेष बचा र्। इस स्थिति में र् के पश्चात् रथः के प्रारम्भ में स्थित `र' आने के कारण `रोरि' सूत्र से प्रथम प्रयुक्त र् का लोप प्राप्त था।

किन्तु साथ ही `हशि च' से प्रथम प्रयुक्त रु को उ भी प्राप्त था। अतः दोनों सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट कार्य एक साथ सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत सूत्र ने व्यवस्था दी इसके लिए हमें इन सूत्रों की संख्या देखनी होगी। संख्या देखने पर पता लगता है कि `रोरि' सूत्र बाद में आता है क्योंकि `हशि च' सूत्र की संख्या ६/१/११४ है तथा `रोरि' की ८/३/१४ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से र् का लोप होना चाहिए था।

किन्तु `पूर्वत्राऽसिद्धम्' परिभाषा के अनुसार `हशि च' की दृष्टि में `रोरि' सूत्र असिद्ध हुआ। इस स्थिति में `हशिच' सूत्र से र् को उ होकर– मन स्→ रु→ र्→ उ + रथः। पुनः मन के न में स्थित अ और उ को गुणादेश होकर बना– मनोरथः।

५८. **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि** (६/१/१३२) (Imp.)– एतत् और तत् के सु का लोप हो जाता है, यदि ये नञ् समास से युक्त न हो और ककार से रहित हो तथा बाद में कोई हल् प्रत्याहार का वर्ण अर्थात् व्यञ्जन हो।

कहने का तात्पर्य है कि एषः और सः के विसर्गों का लोप होने के लिए प्रस्तुत सूत्र तीन शर्तों का कथन कर रहा है—

(क) बाद में कोई व्यञ्जन वर्ण प्रयुक्त हुआ हो।

(ख) एतत् और तत् पदों में नञ् समास का प्रयोग न हुआ हो।

जैसे— असः आदि।

१. आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है आठ अध्यायों में विभक्त है तथा प्रत्येक अध्याय पादों में और प्रत्येक पाद में सूत्र हैं। अतः सूत्र के साथ जो संख्या लिखी होती, है इसमें पहली संख्या अध्याय की, दूसरी संख्या पाद की तथा तीसरी संख्या सूत्र की है। अर्थात् यह सूत्र अष्टाध्यायी में पहले अध्याय के चौथे पाद का दूसरा सूत्र है। (१/४/२)

(ग) एतत् और तत् पदों में ककार का प्रयोग न हुआ हो। जैसे एषकः आदि।

जैसे— सः + गच्छति = स गच्छति। एषः + विष्णुः = एष विष्णुः।

स्पष्टीकरण— उपर्युक्त उदाहरण में सः पद तत् प्रातिपदिक का पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति का रूप है। उसके विसर्ग को, नञ् समास न होने के कारण तथा ककार युक्त न होने एवं बाद में हल् प्रत्याहार का वर्ण गच्छति का ग् होने के कारण उपर्युक्त सूत्र से, लोप होकर रूप बना– स गच्छति।

इसी प्रकार— एषः विष्णुः में भी समझना चाहिए।

५९. **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** (६/१/१३४)– सः के विसर्गों का लोप बाद में अच् प्रत्याहार के वर्ण (किसी भी स्वर के) होने पर भी हो जाता है, यदि उन विसर्गों के लोप करने पर श्लोक की पादपूर्ति हो रही हो तो। इस विषय में ध्यातव्य है कि श्लोक की पादपूर्ति के अभाव में सः के विसर्गों का लोप बाद में स्वर होने पर भी नहीं होगा।

जैसे— सैष दाशरथी रामः।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण श्लोक का एक पाद (चरण) है। यहाँ यदि सः पद पर विसर्गों का प्रयोग किया जाए तो श्लोक में मात्रा बढ़ जाती है, क्योंकि उस स्थिति में स् को रु, रु को य् 'भो भगोऽघोऽपूर्वस्य योऽशि' (८/३/१७) से होकर बनेगा, सयेषः और विकल्प में स एषः।

इन दोनों ही स्थितियों में इस पाद में नौ अक्षर हो जाते हैं। जिससे छन्दोभंग होने की सम्भावना रहेगी, जबकि प्रस्तुत पाद अनुष्टुप् छन्द का है, जिसमें मात्र आठ अक्षर ही होते हैं।

अतः पादपूर्ति की दृष्टि से उपर्युक्त सूत्र से सः के सु का लोप होकर स + एष → अ + ए मिलकर 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि आदेश होकर सैषः पद प्रयुक्त हुआ।

५. संधि-प्रकरण (सिद्धि भाग)

परीक्षा में सूत्र-निर्देशपूर्वक सिद्धि करने के लिए कहा जाता है। छात्र इस प्रश्न को प्रायः छोड़ देते हैं। हम यहाँ इस प्रश्न को हल करने के दो प्रकारों का उल्लेख कर रहे हैं। विद्यार्थी जिसे सरल एवं उचित समझें, उसका अभ्यास कर सकते हैं।

(अ) १. **हिमालयः**— हिम + आलयः　दीर्घ संधि
म् + अ + आ
म्　आ　**अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से अ + आ = आ
जोड़ने पर– **हि मा ल यः**　　दीर्घ एकादेश

२. **दयार्णवः**— दया + अर्णवः　दीर्घ संधि
य् + आ + अ　**अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से आ + अ = आ
य्　आ　　दीर्घ एकादेश
जोड़ने पर– **द या र्णवः**

३. **वधूत्सवः**— वधू + उत्सवः　दीर्घ संधि
ध् + ऊ + उ
ध्　ऊ　**अकः सवर्णे दीर्घ** सूत्र से ऊ + उ = ऊ
जोड़ने पर– **व धू त्सवः**　　दीर्घ एकादेश

४. **रमेशः**— रमा + ईशः　गुण संधि
म् + आ + ई　**आद्गुणः** सूत्र से आ + ई = ए
म् + ए
जोड़ने पर– **र मे शः**　　गुण एकादेश

५. **पीनोरुः**— पीन + उरुः　गुण संधि
न् + अ + उ　**आद्गुणः** सूत्र से अ + उ = ओ
न्　ओ
जोड़ने पर– **पी नो रुः**　गुण एकादेश

६. **महर्षिः**— महा + ऋषिः　गुण संधि
ह् + आ + ऋ　**आद्गुणः** एवं **उरणपरः** सूत्र से
ह् +　अर्　　आ + ऋ = अर् आदेश।
जोड़ने पर– **म हर् षिः = महर्षिः**

७. **देवैश्वर्यम्**— देव + ऐश्वर्यम् वृद्धि संधि

व् + अ + ऐ **वृद्धिरेचि** सूत्र से अ + ऐ = ऐ

व् ऐ वृद्धि आदेश

जोड़ने पर– **दे वै श्वर्यम्**

८. **तथैव**— तथा + एव वृद्धि संधि

थ् + आ + ए वृद्धिरेचि सूत्र आ + ए = ऐ वृद्धि

थ् + ऐ एकाआदेश

जोड़ने पर– **त थै व**

९. **तण्डुलौदनम्**— तण्डुल + ओदनम् वृद्धि संधि

ल् + अ + ओ

ल् औ **वृद्धिरेचि** सूत्र से अ + ओ

जोड़ने पर– **तण्डु लौ दनम्** = औ वृद्धि एकादेश।

१०. **यद्यपि**— यदि + अपि यण् संधि

द् + इ + अ **इको यणचि** सूत्र से इ को यण् आदेश

य् + अ

जोड़ने पर– **य द् य पि** - यद्यपि

११. **प्रत्युपकारः**— प्रति + उपकारः यण् संधि

त् + इ + उपकार

इकोयणचि सूत्र से इ को यण्-य

य् + उ आदेश

जोड़ने पर– **प्र त् यु पकारः** = प्रत्युपकारः

१२. **अन्वयः**— अनु + अयः– यण् संधि

न् + उ + अ

इकोयणचि सूत्र से उ को व् आदेश

व् + अ

जोड़ने पर– **अ न् व यः** = अन्वयः

१३. **नयनम्**— ने + अनम्– अयादि संधि

न् + ए + अ

एचोऽयवायावः सूत्र से ए को अय्

न् अय् अ आदेश

जोड़ने पर– **न य नम्** = नयनम्

१४. **नायकः**— नै + अकः– अयादि संधि

न् + ऐ + अ

एचोऽयवायावः सूत्र से ऐ को आय्

न् + आय् + अ आदेश

जोड़ने पर– **ना य कः** = नायकः

१५. **पावकः**— पौ + अकः अयादि संधि

प् + औ + अ

एचोऽयवायावः सूत्र से औ को

प् + आव् + अ आव् आदेश

जोड़ने पर– **पा व कः** = पावकः

१६. **रामोऽस्मि** = रामो + अस्मि पूर्वरूप संधि

म् + ओ + अ

एङः पदान्तादति सूत्र से अ को पूर्व

म् ओ ऽ रूप एकादेश

जोड़ने पर– **रा मो ऽस्मि** = रामोऽस्मि

संधियुक्त पदों की सूत्रनिर्देशपूर्वक सिद्धि की दूसरी विधि—

१. **कर्णामृत्—** कर्ण + अमृतम् - इस विग्रह में,

र्ण् + अ + अ **'अकः सवर्णे दीर्घः'** सूत्र से कर्ण के र्ण के अ तथा अमृत के अ को मिलाकर - अ + अ = आ दीर्घ एकादेश हुआ।

र्ण् + आ

जोड़ने पर– **क र्णा मृतम्**

२. **देवालयः—**

संधिविग्रहः – देव + आलयः

सूत्र-निर्देश – अकः सवर्णे दीर्घः

संधि-प्रक्रिया– देव + आलयः, इस विग्रह में देव के व में स्थित अ के पश्चात् आलयः का आ सवर्ण आने पर उपर्युक्त सूत्र से दीर्घ एकादेश आ होकर **देवालयः** शब्द बना।

३. **तथेति—**

संधिविग्रह – तथा + इति

सूत्र-निर्देश – आद्गुणः

संधि-प्रक्रिया– तथा + इति, इस विग्रह में तथा के था में स्थित आ के पश्चात् इति का इ आने के कारण उपर्युक्त सूत्र से आ + इ = ए, गुणादेश होकर **तथेति** शब्द निष्पन्न हुआ।

४. **गायकः—**

संधि-विग्रह – गै + अकः

सूत्र-निर्देश – एचोऽयवायावः

संधि-प्रक्रिया - गै + अकः - इस विग्रह में गै में स्थित ऐ के पश्चात् अकः में स्थित अ स्वर के आने पर उक्त सूत्र से ऐ को आय् आदेश होकर **गायकः** शब्द बना।

५. **महौषधिः—**

संधि-विग्रह – महा + औषधिः

सूत्र-निर्देश – वृद्धिरेचि

संधि-प्रक्रिया– महा + औषधिः, इस विग्रह में महा के हा में स्थित आ के पश्चात् औषधिः का औ आने पर उपर्युक्त आ + औ = औ वृद्धि एकादेश होकर बना– **महौषधिः**।

६. **प्रत्युकारः—**

संधि-विग्रह – प्रति + उपकारः

सूत्र-निर्देश – इकोयणचि

संधि-प्रक्रिया– प्रति + उपकार, इस विग्रह में प्रति के ति में स्थित इ को, उपकार में स्थित उ के आने पर 'इकोयणचि' सूत्र से इ को य् यण् आदेश होकर **प्रत्युपकार** शब्द निष्पन्न हुआ।

७. **भवति—**

संधि-विग्रह – भो + अति

सूत्र-निर्देश – एचोऽयवायावः

संधि-प्रक्रिया– भो + अति इस विग्रह में भो में स्थित ओ के बाद, अति में स्थित अ स्वर आने का कारण उपर्युक्त सूत्र से ओ को अव् आदेश होकर **भवति** शब्द निष्पन्न हुआ।

८. **शिश्वैक्यम्—**

संधि-विग्रह – शिशु + एक्यम् (उ + ऐ)

संधि-सूत्र – इकोयणचि (व् + ऐ = वै)

संधि-प्रक्रिया– उक्त विग्रह में शिशु के श् में स्थित उ को बाद में ऐक्यम् का ऐ अच् होने पर उ को व् आदेश होकर **शिश्वैक्यम्** शब्द बना।

६. समास प्रकरण

समसनं समासः— संक्षेप को समास कहते हैं अर्थात् जब दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर इस प्रकार कहा जाए कि उनका संक्षेप हो जाए, उनके आकार में कमी हो जाए तो वह समस्त पद कहलाता है तथा उस सम्पूर्ण क्रिया को समास कहते हैं।

जैसे— राजा का पुरुष इन तीन शब्दों को हम संक्षेप में कहना चाहें तो राजपुरुष कहा जा सकता है। यहाँ 'का' विभक्ति स्वतन्त्र रूप से कहने की आवश्यकता नहीं है! इसी प्रकार राम और कृष्ण इसे संक्षेप में रामकृष्णौ भी कह सकते हैं। इसीलिए 'और' समुच्चयार्थक शब्द का इस संक्षेप रूप में प्रयोग न होने के कारण रामकृष्णौ समस्त पद कहलाएगा।

समास मुख्यतया आठ प्रकार के होते है—

१. अव्ययीभाव समास	२. तत्पुरुष	३. कर्मधारय समास
४. द्विगु समास	५. द्वन्द्व समास	६. बहुब्रीहि समास
७. नञ् समास	८. अलुक् समास	

अब हम इनका सोदाहरण विवेचन करेंगे—

१. **अव्ययीभाव समासः**— इस समास की सबसे महत्त्वपूर्ण पहचान है कि इसका पहला पद अव्यय होता है, जिसकी प्रायः प्रधानता रहती है। यह कोई उपसर्ग भी हो सकता है एवं 'यथा' आदि अव्यय पद भी। इसमें दूसरा पद संज्ञा होता है। इन दोनों पदों के मिलने पर समस्त पद अव्यय ही बनता है। इसका रूप नपुंसकलिंग एकवचन के समान होता है। इसके रूप नहीं चलते हैं। जैसे—

१. यथाकामम् - कामं अनतिक्रम्य	११. यथाशक्तिः - शक्तिमनतिक्रम्य
२. उपगंगम् - गंगायाः समीपम्	१२. सचक्रम् - चक्रेण युगपत्
३. निर्मक्षिकम् - मक्षिकाणामभावः	१३. सतृणम्- तृणमपि अपरित्यज्य
४. अनुरूपम् - रूपस्य योग्यम्	१४. बहिर्वनम् - वनात्,बहिः
५. अधिहरिः - हरौ इति	१५. उपयमुनम्- यमुनायाः समीपम्
६. सुमद्रम् - मद्राणां समृद्धिः	१६. उपकृष्णम् - कृष्णस्य समीपम्
७. दुर्यवनम् - यवनानां व्यृद्धिः	१७. निर्द्वन्द्वम् - द्वन्द्वानां अभावः
८. अतिहिमम् - हिमस्य अत्ययः	१८ निर्विघ्नम् - विघ्नानां अभावः
९. अतिनिद्रम् - निद्रा सम्प्रति न युज्यते	१९. निर्जनम् - जनानां अभावः
१०. अनुविष्णुः - विष्णोः पश्चात्	२०. अनुरथम् - रथस्य पश्चात्

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस समास का विग्रह करते समय 'उपसर्ग के अर्थ का भी विग्रह में उल्लेख करते हैं।' **जैसे**— गंगायाः समीपम्, उपगंगम् का विग्रह किया। यहाँ 'उप' उपसर्ग का प्रयोग 'समीप' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है। अतः विग्रह में समीप शब्द का स्पष्ट कथन करके गंगा शब्द में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग कर दिया।

समास विग्रह करने की सुगम रीतिः— छात्रों को प्रायः समास विग्रह का कार्य अत्यन्त जटिल प्रतीत होता है। इसीलिये वे प्रायः परीक्षा में इस प्रश्न को छोड़ देते हैं या फिर यों ही अनुमान से कुछ भी लिख देते हैं। इस आशा से कि परीक्षक कुछ न कुछ तो अंक प्रदान करेगा ही, किन्तु ऐसा सोचना सर्वथा अनुचित है। हम यहाँ समास विग्रह की सुगम रीति का उल्लेख कर रहे हैं। यदि छात्र इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़कर थोड़ा अभ्यास कर लें तो निश्चय ही उन्हें समास विग्रह का कार्य कठिन प्रतीत नहीं होगा।

१. समास विग्रह से पूर्व हमें समस्त पद का हिन्दी अर्थ आना आवश्यक है।

२. हिन्दी अर्थ के अनुसार विभक्ति का प्रयोग करते हुए समास विग्रह करना चाहिए। जैसे— निर्मक्षिकम् - शब्द का अर्थ है - मक्खियों का अभाव। अब इस हिन्दी अर्थ की हमें केवल संस्कृत बनानी है, बस वही इस समास का विग्रह होगा। 'मक्खियों का' इस अंश में षष्ठी विभक्ति बहुवचन का प्रयोग हुआ है।अतः मक्खी शब्द के षष्ठी विभक्ति बहुवचन के शब्द रूप हमें आने चाहिएँ। मक्खी को संस्कृत में '**मक्षिका**' कहते हैं और वह दीर्घ आकारान्त स्त्रीलिंग है। अतः इसके रूप रमा की तरह चलेंगे और रमा शब्द का षष्ठी विभक्ति बहुवचन में रूप बनता है, रमाणाम्। अतः मक्षिका पद का षष्ठी विभक्ति बहुवचन में रूप बनेगा— मक्षिकाणाम्। अभाव, शब्द पुल्लिंग है। अतः इसका रूप बनेगा— अभावः। इसलिए निर्मक्षिकम् का समास-विग्रह हुआ— मक्षिकाणामभावः। इसी प्रकार दूसरे पदों का भी अभ्यास करना चाहिए। हाँ कुछ शब्दों का बिल्कुल भिन्न प्रकार से विग्रह होता है। अतः उन शब्दों को लाल स्याही से रेखांकित करके विशेषतया याद कर लें तो समास विग्रह की समस्या बहुत कुछ दूर हो जायेगी।

२. **तत्पुरुष समासः**— इस समास में प्रायः दो पद होते हैं। इनमे पहला पद प्रायः विशेषण और दूसरा विशेष्य होता है और प्रधानता दूसरे पद की होती है। इस समास में द्वितीया विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक के चिह्न (कर्म - को, करण - से, के द्वारा आदि) छिपे रहते हैं। इस दृष्टि से इसके छः भेद होते हैं—

द्वितीया तत्पुरुष	१. ग्रामगतः - ग्रामं गतः (गाँव **को** गया)
	२. सुखापन्नः - सुखं आपन्नः (सुख **को** प्राप्त)
तृतीया तत्पुरुष	१. प्रकाशयुक्तः - प्रकाशेन युक्तः (प्रकाश **से** युक्त)
	२. व्याघ्रहतः - व्याघ्रेण हतः (व्याघ्र **के द्वारा** मारा गया)
	३. भासरचितः - भासेन रचितः (भास **द्वारा** रचित)

चतुर्थी तत्पुरुष १. विप्रदानम् - विप्राय दानम् (विप्र **के लिए** दान)

२. हस्तलेपः - हस्ताय लेपः (हाथ **के लिए** लेप)

३. अलंकारस्वर्णम् - अलंकाराय स्वर्णम् (आभूषण **के लिए** स्वर्ण)

पंचमी तत्पुरुष १. वृक्षपतितः - वृक्षात् पतितः (वृक्ष **से** गिरा हुआ)

२. भयभीतः - भयात् भीतः (भय **से** डरा हुआ)

३. संसारमुक्तः - संसारात् मुक्तः (संसार **से** मुक्त)

षष्ठी तत्पुरुष १. राजपुरुषः - राज्ञः पुरुषः (राजा **का** पुरुष)

२. दासी पुत्रः - दास्याः पुत्रः (दासी **का** पुत्र)

३. नन्दगृहम् - नन्दस्य गृहम् (नन्द **का** घर)

सप्तमी तत्पुरुष १. सभापण्डितः - सभायां पण्डितः (सभा **में** पण्डित)

२. युद्धवीरः - युद्धे वीरः (युद्ध **में** वीर)

३. मुनिश्रेष्ठः - मुनिषु श्रेष्ठः (मुनियों **में** श्रेष्ठ)

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि तत्पुरुष समास का विग्रह करने में अन्तिम पद ज्यों का ज्यों प्रयुक्त होता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता तथा प्रथम पद में उसके कारक-विभक्ति चिह्न के अनुसार तथा शब्द की प्रकृति के अनुसार (अकारान्त, आकारान्त, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग इत्यादि) विभक्ति का प्रयोग करते हुए समासविग्रह किया जाता है।

३. **कर्मधारय समासः**— इस समास में उपमान– उपमेय या विशेषण–विशेष्य का प्रयोग होता है तथा प्रायः दो पद प्रयुक्त होते हैं और विशेष बात यह है कि दोनों शब्द प्रायः एक ही विभक्ति में प्रयुक्त होते हैं।

इसमें और तत्पुरुष समास में केवल यही अन्तर होता है कि तत्पुरुष में द्वितीया से लेकर सप्तमी विभक्ति तक के चिह्नों का प्रथम पद में प्रयोग होता है, इसमें नहीं।

जैसे— नीलकमलम् - नीलम् कमलम् (नीला, कमल, विशेषण, विशेष्य)

सुन्दरनरः - सुन्दरः नरः (सुन्दर, पुरुष, विशेषण, विशेष्य)

घनश्यामः - घन इव श्यामः (बादल के समान काला, उपमान, उपमेय)

मुखकमलम् - मुखं कमलं इव (कमल के समान मुख, उपमान, उपमेय)

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस समास में भी अन्तिम पद का स्वरूप, विग्रह करने पर ज्यों का त्यों रहता है, क्योंकि प्रायः पहले प्रयुक्त पद बाद में प्रयुक्त शब्द का विशेषण होता है। अतः प्रथम पद की विभक्ति, वचन, और लिंग भी अपने विशेष्य की विभक्ति, वचन एवं लिंग के समान ही प्रयुक्त होते हैं।

४. **द्विगु समासः**— इस समास में पहला पद संख्यावाचक होता है और इसका विग्रह प्रथम पद में षष्ठी के द्विवचन या बहुवचन का प्रयोग करते हुए समाहार पद का प्रयोग करते हैं। जैसे—

सप्तर्षिः - सप्तानां ऋषीणां समाहारः। (सात ऋषियों का समूह)

पञ्चग्रामम् - पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः। (पाँच गाँवों का समूह)

त्रिदिनम् - त्र्याणां दिनानां समाहारः। (तीन दिनों का समूह)

त्रिजटा - तिसृणाम् जटानां समाहारः। (तीन जटाओं का समूह)

त्रैमातुरः - तिसृणाम् मातृणां अपत्यं पुमान्। (तीन माताओं की पुरुष संतान)

५. **द्वन्द्व समासः**— इस समास में दोनों पदों की प्रधानता होती है। विग्रह करते समय इसमें **'च'** पद का प्रयोग किया जाता है। इसमें दो या दो से अधिक पदों का भी प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु सभी पद प्रथमान्त ही प्रयुक्त होंगे। जैसे—

रामकृष्णौ - रामश्च कृष्णश्च (राम और कृष्ण)

पाणिपादम् - पाणी च पादौ च (हाथ और पैर)

हस्तपादम् - हस्तौ च पादौ च (हाथ और पैर)

हंसौ - हंसश्च हंसी च (हंस और हंसी)

मातापितरौ - माता च पिता च (माता और पिता)

पितरौ - माता च पिता च (माता और पिता)

रामलक्ष्मणभरताः - रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च (राम लक्ष्मण और भरत)

फलपुष्पे - फलं च पुष्पं च (फल और पुष्प)

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस समास का विग्रह करते समय थोड़ी सावधानी की आवश्यकता है। जैसे— हस्तपादम् कहने से इनका विग्रह हस्तम् पादम् न करके हस्तौ च पादौ च करेंगे, क्योंकि हस्त और पाद नित्यद्विवचनान्त पद हैं। हाथ और पैर दो-दो होते हैं। इसलिए इनका विग्रह द्विवचनान्त पदों के द्वारा ही करेंगे। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में व्यावहारिकता को देखते हुए ही विग्रह किया जाएगा। जैसे पितरौ कहने से माता-पिता का अभिप्राय लेना होगा। इसी प्रकार हंसौ कहने से हंस और हंसी का।

६. **बहुव्रीहि समासः**— जब दो या दो से अधिक पद किसी अन्य शब्द का विशेषण होकर आते हैं तो बहुव्रीहि समास होता है। यद्यपि यह भी विशेषण विशेष्य का समास है, किन्तु इसकी विशेषता यह है कि यहाँ दोनों पद मिलकर तीसरे पद की विशेषता बताते हैं, जैसे—

दशाननः -दश आननानि यस्य सः। निर्गतबलः -निर्गतं बलं यस्मात् सः।

वीणापाणिः -वीणा पाणौ यस्याः सा। प्राप्तोदकः -प्राप्तं उदकं यं सः।

शान्तिप्रियः -शान्तिः प्रियः यस्मै सः। आरूढवानरः -आरूढः वानरः यं सः (वृक्षः)
चक्रपाणिः -चक्रं पाणौ यस्य सः। दत्तधनः -दत्तम् धनम् यस्मै सः।
चन्द्रशेखरः -चन्द्रः शेखरे यस्य सः। पीताम्बरः -पीतं अम्बरं यस्य सः।

७. **नञ् समासः**— इसे नञ् तत्पुरुष भी कहा जाता है, क्योंकि यह तत्पुरुष समास का ही एक भेद है। इस समास में अभाव का अर्थ निहित होता है तथा समस्त पद के प्रारम्भ में अ या अन् का प्रयोग करते हैं। इस विषय में यह नियम उल्लेखनीय है कि यदि शब्द स्वर से प्रारम्भ होता है तो समास में प्रारम्भ में अन् का प्रयोग करते है और यदि शब्द व्यञ्जन से आरम्भ होता है तो शब्द से पहले अ का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार शब्द के प्रारम्भ में अ या अन् को देखकर इस समास की पहचान सरलता से की जा सकती है, किन्तु विग्रह करते समय दोनों प्रकार के पदों में 'न' का समान रूप से प्रयोग होता है। जैसे—

अब्राह्मणः	-न ब्राह्मणः, इति।	अनुपस्थितिः	-न उपस्थितिः, इति।
अशक्तः	-न शक्तः, इति।	अनीश्वरः	-न ईश्वरः, इति।
असुन्दरः	-न सुन्दरः, इति।	अनागतम्	-न आगतम्, इति।
अविद्या	-न विद्या, इति।	अनश्वः	-न अश्वः, इति।
असत्यम्	-न सत्यम्, इति।	अनुच्चरितम्	-न उच्चरितम्, इति।
अकृतम्	-न कृतम्, इति।	अविकला	-न विकला, इति।

८. **अलुक् समासः**— जहाँ पूर्व शब्द में प्रयुक्त विभक्ति का लोप नहीं होता अर्थात् शब्द का विभक्ति के साथ ही प्रयोग होता है। वह अलुक् समास कहलाता है। यह भी तत्पुरुष समास का ही एक भेद है। जैसे—

देवानां प्रियः, आत्मनेपदम्, दूरादागतः, परस्मैपदम्, पश्यतोहरः, वाचस्पतिः, अन्तेवासी, खेचरः, युधिष्ठिरः, सरसिजम्।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इन पदों मे अन्य समस्त पदों के समान विभक्ति का लोप नहीं होता, अपितु यह विभक्ति समास विग्रह की अवस्था में तथा समस्त पद, दोनों में ज्यों की त्यों प्रयुक्त होती है, क्योंकि इस समास में विभक्ति का लोप नहीं होता, इसलिए इसे अलुक् (नहीं हुआ है लोप, जहाँ विभक्ति का) समास कहा जाता है। लुक् का अर्थ है, लोप होना।

परीक्षा में पूछा जाता है कि समास विग्रह कीजिए और समास का नाम बताईये। अतः समास विषयक प्रश्नों के उत्तर लिखने की विधि का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

१. उपयमुनम् (क) समास का नाम– अव्ययीभाव।
(ख) समास-विग्रह– यमुनायाः समीपम्।

२. राजपुरुषः (क) समास का नाम– षष्ठी तत्पुरुष।
(ख) समास-विग्रह– राज्ञः पुरुषः।

३. कृष्णसर्पः (क) समास का नाम– कर्मधारय।
(ख) समास-विग्रह–कृष्णः सर्पः।
(कृष्णः चासौ सर्पः इति)।

४. कुपुत्रः (क) समास का नाम– कर्मधारय।
(ख) समास-विग्रह– कुत्सितः पुत्रः।

५. नीलकमलम् (क) समास का नाम– कर्मधारय।
(ख) समास-विग्रह– नीलम् कमलम्।

६. दशाननः (क) समास का नाम– बहुव्रीहि।
(ख) समास-विग्रह– दश आननानि यस्य सः।

७. नवरात्रम् (क) समास का नाम– द्विगु।
(ख) समास-विग्रह– नवानां रात्रीनां समाहारः।

८. अनुचितः (क) समास का नाम– नञ् समास।
(ख) समास-विग्रह– न उचितः, इति।

९. पितरौ (क) समास का नाम– द्वन्द्व।
(ख) समास-विग्रह– माता च पिता च।

१०. रामकृष्णौ (क) समास का नाम– द्वन्द्व समास।
(ख) समास-विग्रह– रामश्च कृष्णश्च

११. विद्यालयः (क) समास का नाम– षष्ठी तत्पुरुष।
(ख) समास-विग्रह– विद्यायाः आलयः।

१२. पीताम्बरः (क) समास का नाम– बहुव्रीहि।
(ख) समास-विग्रह– पीत अम्बर यस्य सः।

१३. महादेवः (क) समास का नाम– कर्मधारय।
(ख) समास-विग्रह– महान् चासौ देवः।

१४. त्रिभुवनम् (क) समास का नाम– द्विगु।
(ख) समास-विग्रह– त्रयाणां भुवनानां समाहारः।

१५. पितृतुल्यः (क) समास का नाम– बहुव्रीहि।
(ख) समास-विग्रह– पिता इव यः सः।

१६. ज्ञानशून्यः (क) समास का नाम– पञ्चमी तत्पुरुष।
(ख) समास-विग्रह– ज्ञानात् शून्यः।

७. कारक-प्रकरण

जिसका क्रिया से सीधा सम्बन्ध होता है, उसे कारक कहते हैं। इनकी संख्या छः मानी गई है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण,[1] सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया है। पुनरपि सम्बन्ध का, के, की, रा, रे, री, चिह्न मानते हुए उसमें षष्ठी विभक्ति का विधान होता है।

कारक प्रकरण से कुछ विशिष्ट सूत्रों की ही हम यहाँ सोदाहरण व्याख्या करेंगे।

द्वितीया-विभक्ति विधायक सूत्र—

१. **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** (१.४.४९) (M. Imp.)– कर्ता अपनी क्रिया द्वारा जिसे सर्वाधिक चाहता है, उसकी प्रस्तुत सूत्र से कर्म-संज्ञा होती है तथा 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से उसमें द्वितिया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - पयसा ओदनं भुङ्क्ते - दूध से भात खाता है। यहाँ कर्ता अपनी खाना क्रिया के द्वारा भात को अधिकतम चाहता है। अतः उपर्युक्त सूत्र से ओदन की कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से ओदन में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ।

यद्यपि यहाँ दूध का सम्बन्ध भी कर्ता की खाना क्रिया से है, किन्तु वह कर्ता की खाना क्रिया का साधन मात्र है। इसलिए पयसा में द्वितीया न होकर 'साधकतमं करणं' से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ।

२. **अकथितं च** (१/४/५१) (M. Imp.)– अपादान आदि विशेष कारकों से अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा होती है। कहने का तात्पर्य है कि जहाँ अपादानादि विभक्तियों का अर्थ तो प्रकट हो रहा हो, किन्तु वक्ता उस विभक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहता तो तथा कर्म की विवक्षा रखता हो। वहाँ उस कारक की कर्म संज्ञा होती है, और उसमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

वस्तुतः यह नियम द्विकर्मक धातुओं के योग में प्रयुक्त होता है अर्थात् द्विकर्मक धातुओं के योग में अपादानादि विभक्तियों का प्रयोग होने पर भी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

द्विकर्मक धातुएँ— दुह् (दुहना), याच् (मांगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना), पृच्छ् (पूछना), चि (चुनना), ब्रू (बोलना), शास् (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरण करना), कृष् (जोतना), वह् (ढोना) आदि हैं।

जैसे— सः गाम् दुग्धं दोग्धि (वह गाय से दूध दुहता है) यहाँ सामान्य स्थिति में गाय अपादान कारक है, क्योंकि गाय से दूध अलग हो रहा है, किन्तु द्विकर्मक दुह् धातु के योग में वक्ता को अपादान विवक्षित न होने से उपर्युक्त सूत्र से दूध रूप

---

१. कर्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट्।।

कर्म के निमित्त रूप में विवक्षित होने से कर्म हुआ है। अतः उसकी कर्म संज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होकर 'गाम्' का प्रयोग हुआ।

३. **अधिशीङ्स्थासां कर्म** (१/४/४६) (M. Imp.)– अधि उपसर्गपूर्वक शीङ् (सोना), स्था (ठहरना) तथा आस् (बैठना) धातुओं के आधार की कर्म संज्ञा होती है और 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से उसमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— हरिः बैकुण्ठम्, अधितिष्ठति, अधिशेते, अध्यास्ते वा। प्रस्तुत उदाहरण में अधि उपसर्गपूर्वक क्रमशः स्था, शीङ् और आस् धातुओं का प्रयोग हुआ है। इन क्रियाओं का आधार बैकुण्ठ है। अतः आधार की अधिकरण संज्ञा होकर बैकुण्ठ में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होना चाहिए था, किन्तु उपर्युक्त सूत्र से आधार बैकुण्ठ की कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होकर 'बैकुण्ठम्' पद का प्रयोग हुआ।

४. **उपान्वध्याङ्वसः** (१/४/४८) (M. Imp.)– (उप + अनु + अधि + आङ् (आ) + (वस्) उप, अनु, अधि और आङ्(आ) उपसर्ग के पश्चात् यदि वस् धातु का प्रयोग होता है, तो इस क्रिया के आधार की अधिकरण संज्ञा न होकर प्रस्तुत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है और 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से आधार में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— हरिः बैकुण्ठम् उपवसति (हरि बैकुण्ठ में निवास करते हैं) यहाँ बैकुण्ठ आधार होने से सामान्य रूप से इसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होना चाहिए था, किन्तु √वस् धातु से पूर्व 'उप' उपसर्ग का प्रयोग होने से उपर्युक्त सूत्र से आधार बैकुण्ठ की कर्म संज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

५. **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (२/३/५) (M. Imp.)– अत्यन्त संयोग होने पर समयवाची या मार्गवाची शब्दों में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। यहाँ 'अत्यन्त संयोग' से अभिप्राय - 'निरन्तर संयोग या कार्य की निरन्तरता' से है।

जैसे— मासम् अधीते - मास भर तक पढ़ता है। प्रस्तुत उदाहरण में कालवाची 'मास' पद का प्रयोग हुआ है तथा पढ़ना रूप क्रिया को एक मास तक बिना किसी व्यवधान के निरन्तरता से किया गया है। अतः अत्यन्त संयोग हुआ। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से कालवाची मास पद में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार 'क्रोशम् कुटिला नदी' मार्गवाची पद का उदाहरण है।

तृतीया-विभक्ति विधायक सूत्र

६. **साधकतमं करणम्** (१.४.४२) (M. Imp.) जो कारक क्रिया की सिद्धि में सर्वाधिक सहायक होता है, उसकी प्रस्तुत सूत्र करण संज्ञा करता है और करण में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते है।

जैसे— रामः बाणेन रावणं अहन् (राम ने रावण को बाण से मारा) प्रस्तुत उदाहरण में मारना क्रिया में बाण सर्वाधिक सहायक है। अतः बाण साधकतमम् हुआ। इसलिए बाण की उपर्युक्त सूत्र से करण संज्ञा हुई तथा 'करणे तृतीया' सूत्र से बाण में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ।

७. **अपवर्गे तृतीया** (२/३/६) (M. Imp.)– अपवर्ग का अभिप्राय है– फलप्राप्ति अर्थात् किसी वाक्य में फल की प्राप्ति या कार्य की सिद्धि का कथन करने वाले कालवाची या मार्गवाची शब्दों में अत्यन्त संयोग होने पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं। प्रस्तुत सूत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' का अपवाद सूत्र है।

जैसे— मासेन अनुवाकः अधीतः (मास भर में एक अध्याय (अनुवाक) पढ़ लिया) यहाँ अध्ययन क्रिया मास भर होने से अत्यन्त संयोग हुआ। अतः 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से कालवाची मास पद में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होना चाहिए था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र से अध्याय को समाप्त करने रूप में फल-प्राप्ति अर्थात् अपवर्ग होने से कालवाची शब्द मास में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

८. **सहयुक्तेऽप्रधाने** (२/३/१९) (M. Imp.)– साथ अर्थ के योग में अप्रधान कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है अर्थात् यदि वाक्य में 'साथ' अर्थ के वाचक (सह, साकम्, सार्धम्, समम्) किसी भी शब्द का प्रयोग हुआ हो तो अप्रधान कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं—

जैसे— हरिः रामेण सह गच्छति (हरि राम के साथ जाता है) यहाँ क्रिया से सीधा सम्बन्ध हरि का है। अतः वह प्रधान कर्ता हुआ तथा राम गौण या अप्रधान तथा वाक्य में 'साथ' अर्थ का भी प्रयोग हुआ है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से अप्रधान कर्ता राम में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

९. **येनाङ्गविकारः** (२/३/२०) (M. Imp.)– शरीर के विकृत अंग से यदि अंगी में विकार परिलक्षित होता हो तो उस अंगवाची शब्द में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

जैसे— रामः नेत्रेण काणः अस्ति (राम नेत्र से काना है) यहाँ राम अंगी है तथा नेत्र अंग तथा नेत्र अंग, में कानापन विकार होने से अंगी राम में विकार परिलक्षित हो रहा है। अतः उपर्युक्त सूत्र से अंगवाची शब्द नेत्र में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

१०. **इत्थं भूतलक्षणे** (२/३/२१) (V. M. Imp.)– यहाँ इत्थं भूत का अर्थ है 'ऐसा हुआ' या इस प्रकार हुआ अर्थात् किसी विशेष दशा का कथन करने वाले चिह्न में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - जटाभिः तापसः (जटाओं से तपस्वी) यहाँ किसी व्यक्ति का तपस्वी होना बताया गया है। इसलिए लक्षणवाची शब्द (चिह्न) जटाओं में उपर्युक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

चतुर्थी-विभक्ति विधायक सूत्र

११. **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्**– (१/४/३२) कर्ता, कर्म के द्वारा जिसकी इच्छा करता है अर्थात् जिसे लक्ष्य बनाता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यहाँ कर्म से अभिप्राय दानादि कर्म से है। अतः दानादि कर्म के लिए कर्ता जिस व्यक्ति को चाहता है, उसकी प्रस्तुत सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होती है और सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

जैसे— ब्राह्मणाय गां ददाति। (ब्राह्मण को गाय देता है) यहाँ कर्ता, गाय रूपी कर्म को दान देने के लिए ब्राह्मण की इच्छा कर रहा है। अतः उपर्युक्त सूत्र से ब्राह्मण की सम्प्रदान संज्ञा हुई तथा उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ।

१२. **रुच्यर्थानां प्रीयमाणः** (१/४/३३) (Imp.)– 'रुचि' अर्थ वाली रुच् धातु या इसी अर्थ में प्रयुक्त अन्य किसी धातु के योग में प्रसन्न होने वाले की सम्प्रदान संज्ञा होती है तथा उसमें 'सम्प्रदाने चतुर्थी' से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— बालकाय मोदकं रोचते (बालक को लड्डू अच्छा लगता है) यहाँ रुचि अर्थवाली 'रुच्' धातु का प्रयोग हुआ है तथा उससे प्रसन्न होने वाला बालक है। अतः उपर्युक्त सूत्र से प्रसन्न होने वाले बालक की सम्प्रादन संज्ञा होकर उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

१३. **धारेरुत्तमर्णः** –(१/४/३५) लोक व्यवहार में उत्तमर्ण– ऋण देने वाला तथा अधमर्ण– ऋण लेने वाला होता है। यदि 'धारि' धातु ऋण लेना अर्थ में प्रयुक्त हुई हो तो ऋण देने वाले अर्थात् उत्तमर्ण की प्रस्तुत सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होती है।

जैसे— भक्ताय हरिः मोक्षम् धारयति (हरि भक्त के लिए मोक्ष धारण करता है अर्थात् मोक्ष का ऋणी है) यहाँ ऋण धारण करना इस अर्थ में प्रेरणार्थक 'धारि' धातु का प्रयोग हुआ है और भक्त की तपस्या के परिणाम स्वरूप हरि भक्त को मोक्ष देने के लिये बाध्य है। अतः भक्त उत्तमर्ण हुआ तथा हरि अधमर्ण।

इसलिए उपर्युक्त सूत्र से उत्तमर्ण भक्त की सम्प्रदान संज्ञा होकर उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

१४. **क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः** (१/४/३७) (M. Imp.) क्रुध्, (क्रोध करना), द्रुह् (द्रोह करना), ईर्ष्य् (ईर्ष्या करना) असूय् (दूसरों के गुणों में दोष देखना) इन धातुओं के योग में या इनके समान अर्थ वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है तथा सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— सः हरये क्रुध्यति (वह हरि पर क्रोध करता है) यहाँ क्रोध करना अर्थ में 'क्रुध्' धातु का प्रयोग हुआ है, तथा हरि पर क्रोध किया जा रहा है। अतः उपर्युक्त सूत्र से हरि की सम्प्रदान संज्ञा होकर उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

१५. **तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या**— (वार्तिक) यहाँ प्रयुक्त 'तादर्थ्य' का अभिप्राय है 'उसके लिए' अर्थात् जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य व वस्तु होती है। उस प्रयोजनवाची शब्द में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि को भजता है) यहाँ क्योंकि हरि के भजन का प्रयोजन मुक्ति को प्राप्त करना है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से प्रयोजनवाची शब्द मुक्तिः में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

१६. **नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालं वषट् योगाच्च**— (२/३/१६) (M. Imp.) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— गुरवे नमः (गुरु को नमस्कार है) यहाँ नमः पद के योग में गुरु शब्द में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार प्रजाभ्यः स्वस्ति, पितृभ्यः स्वधा अग्नये स्वाहा तथा अलं विवादाय तथा इंद्राय वषट् आदि उदाहरणों में भी समझना चाहिए।

पञ्चमी-विभक्ति विधायक सूत्र

१७. **ध्रुवमपायेऽपादानम्** – (१/४/२४) यहाँ प्रयुक्त 'अपाय' का अर्थ है, अलग होना अर्थात् जब कोई वस्तु या व्यक्ति किसी स्थानादि से अलग होता है, तो उस स्थानवाची शब्द की अपादान संज्ञा होती है। अपादान में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

जैसे— वृक्षात् पत्राणि पतन्ति (वृक्ष से पत्ते गिरते हैं)।

प्रस्तुत उदाहरण में वृक्ष से पत्ते अलग हो रहे हैं, अतः उपर्युक्त सूत्र के अनुसार स्थानवाची शब्द वृक्ष की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

१८. **भीत्रार्थानां भयहेतुः** (१/४/२५((M. Imp.) √भी (डरना) तथा √त्रै (रक्षा करना) अर्थात् भय और रक्षा करना अर्थ में प्रयुक्त √भी या √त्रै धातुओं या इन अर्थों में प्रयुक्त अन्य धातुओं के योग में जिससे डरा जाता है या रक्षा की जाती है, उसकी अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— बालकः सिंहात् बिभेति (बालक सिंह से डरता है)। यहाँ भय अर्थ वाली 'भी' धातु का प्रयोग हुआ है। अतः भय के हेतु सिंह की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

१९. **आख्यातोपयोगे** (१/४/२९) (M. Imp.)– इस सूत्र में प्रयुक्त 'उपयोग' शब्द से अभिप्राय है 'नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करना'। यदि किसी से नियमपूर्वक विद्या ग्रहण की जाती है तो उस स्थिति में अध्यापक या शिक्षक की (आख्याता की) अपादान संज्ञा होती है तथा उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— उपाध्यायाद् अधीते (उपाध्याय से विद्या ग्रहण करता है)। यहाँ क्योंकि अध्यापक से नियमपूर्वक विद्या ग्रहण की जा रही है, इसलिए उपर्युक्त सूत्र से आख्याता अर्थात् पढ़ाने वाले की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

विशेष– नियमपूर्वक अध्ययन के अभाव में अध्यापक की अपादान संज्ञा नहीं होगी।

२०. **जनिकर्तुः प्रकृतिः** (१/४/३०) (M. Imp.)– यहाँ प्रयुक्त √जनि का अर्थ है, उत्पन्न होना अर्थात् उत्पन्न होने वाले की प्रकृति (हेतु) की अपादान संज्ञा होती है तथा उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— गोमयात् वृश्चिकाः जायन्ते (गोबर से बिच्छू पैदा होते हैं) यहाँ बिच्छुओं का उत्पत्ति स्थान (प्रकृति) गोबर होने के कारण उसकी अपादान संज्ञा हुई तथा उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ।

२१. **भुवः प्रभवश्च** (१/४/३१) (Imp.)– यहाँ प्रयुक्त प्रभव का अर्थ है– प्रथम प्रकाश स्थान अर्थात् उत्पत्ति स्थल, अर्थात् उत्पन्न होने वाले के प्रथम प्रादुर्भाव स्थल की इस सूत्र से अपादान संज्ञा होती है और उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— हिमवतः गंगा प्रभवति (हिमालय से गंगा निकलती है) यहाँ गंगा का प्थम दिखाई देने वाला उत्पत्ति स्थल, हिमालय होने से उपर्युक्त सूत्र से हिमालय की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

२२. **वारणार्थानामीप्सितः**— (१/४/२७) यहाँ वारण का अर्थ है– किसी कार्य में लगे होने को रोकना अर्थात् रोकना अर्थवाली धातुओं के प्रयोग होने पर ईप्सित वस्तु, जिससे हटाने की इच्छा होती है, अपादान संज्ञा वाली होती है और उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— यवेभ्यः गाम् वारयति (धान से गाय को हटाता है)। यहाँ वारण अर्थ वाली √वार् धातु का प्रयोग हुआ है तथा गाय को धान से हटाया जा रहा है। अतः उपर्युक्त सूत्र से 'यव' की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

२३. **दूरान्तिकार्थेभ्यः द्वितीया च**— (२/३/३५) दूरवाची तथा निकटवाची (अन्तिक आदि) शब्दों में द्वितीया विभक्ति का भी प्रयोग होता है। वैसे दूर और निकटवाची शब्दों के साथ सप्तमी, पञ्चमी तथा तृतीया विभक्ति का भी कुछ अन्य सूत्रों में विधान किया गया है। प्रस्तुत सूत्र उन विभक्तियों के अतिरिक्त द्वितीया विभक्ति का भी विधान कर रहा है।

जैसे— ग्रामस्य दूरम्, दूरात्, दूरेण, दूरे वा।

प्रस्तुत उदाहरण में दूरवाची शब्द में द्वितीया (तृतीया, पञ्चमी तथा सप्तमी आदि) विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

२४. **पृथक् विना नाना तृतीयान्यतरस्याम्**—(२/३/३२) पृथक्, विना, नाना इन पदों के होने पर विकल्प से (अन्यतरस्याम्) तृतीया विभक्ति का भी प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त इन शब्दों के योग में पञ्चमी तथा द्वितीया विभक्ति का भी अन्यत्र सूत्रों में विधान किया गया है।

जैसे— पृथक् रामेण रामात् रामम् वा (राम से अलग) में यहाँ पृथक् शब्द के योग में राम शब्द में पञ्चमी तथा द्वितीया के साथ विकल्प से तृतीया विभक्ति का भी प्रयोग हुआ है।

षष्ठी-विभक्ति विधायक सूत्र

२५. **षष्ठी शेषे**—(२/३/५०) यहाँ प्रयुक्त शेष शब्द का अभिप्राय है, जो कहा जा चुका, उससे बचा हुआ अर्थात् जो बात अन्य विभक्तियों के द्वारा नहीं बताई जा सकी, उसे बताने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।

षष्ठी विभक्ति प्रायः संज्ञा तथा सर्वनामों के एक दूसरे के प्रति सम्बन्धों का कथन करती है और यह सम्बन्ध संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से कारक की श्रेणी में नहीं आता, यह बात हम पहले भी कह चुके हैं।

जैसे— राज्ञः पुरुषः (राजा का पुरुष) यहाँ व्यक्ति और राजा का सम्बन्ध बताया गया है। अतः उपर्युक्त सूत्र से यहाँ राज्ञः में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है, क्योंकि यह सम्बन्ध अपादानादि अन्य विभक्तियों के द्वारा नहीं कहा जा सकता। इसे षष्ठी विभक्ति ही कहने की सामर्थ्य रखती है।

२६. **षष्ठी हेतुप्रयोगे**—(२/३/२६) यदि किसी वाक्य में हेतु शब्द का प्रयोग हुआ हो तथा वहाँ कारणता भी प्रकट की गई हो तो उस हेतु शब्द एवं कारणता का कथन करने वाले दोनों शब्दों में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के लिए रहता है) यहाँ हेतु शब्द का प्रयोग हुआ है तथा रहने का कारणवाचक शब्द अन्न का भी कथन हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से हेतु शब्द तथा कारणता बोधक शब्द अन्न में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ

२७. **कर्तृकर्मणोः कृतिः** (२/३/६५) (M. Imp.)– कृदन्त शब्दों का प्रयोग होने पर कर्ता एवं कर्म में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है अर्थात् कृत् प्रत्यय, तृच् (तृ), घञ् (अ), क्तिन् (ति), ण्वुल् (अक), ल्युट् (अन) आदि प्रत्ययों का प्रयोग होने पर उस वाक्य के कर्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

जैसे— अस्य जगतः कर्ता कृष्णोऽस्ति। (इस जगत् का कर्ता कृष्ण है) यहाँ कर्ता शब्द √कृ धातु से तृच् प्रत्यय होने के कारण कृदन्त है तथा कर्म जगत् है। अतः कृदन्त पद के योग में उपर्युक्त सूत्र से जगतः में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

२८. **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्**— (२/३/७२) तुला एवं उपमा इन दो शब्दों के अतिरिक्त तुल्य अर्थ में प्रयुक्त शब्दों के योग में विकल्प से (अन्यतरस्याम्) तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है अर्थात्, तुल्य, सदृश, सकाश आदि शब्दों के योग में जो तुल्य अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हों तो उस शब्द में तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति का प्रयोग करते हैं, जिससे किसी व्यक्ति या वस्तु की तुलना की जाती है।

जैसे— कृष्णस्य कृष्णेन वा तुल्यः मोहनः। (मोहन कृष्ण के समान है) यहाँ तुलना अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए तुल्य पद का प्रयोग हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से कृष्ण में षष्ठी अथवा तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है, क्योंकि यहाँ मोहन की तुलना कृष्ण से की जा रही है।

सप्तमी-विभक्ति विधायक सूत्र

२९. **आधारोऽधिकरणम्** (१/४/४५) (M. Imp.)– जहाँ कोई कार्य सम्पन्न होता है, उसे आधार कहते हैं तथा प्रस्तुत सूत्र उस आधार की अधिकरण संज्ञा करता है। अधिकरण में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

जैसे— सः शय्यायां तिष्ठति। (वह शय्या पर बैठता है) यहाँ बैठने का आधार शय्या है। अतः उपर्युक्त सूत्र से इसकी अधिकरण संज्ञा हुई और उसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ।

इस प्रसंग में यह जानना आवश्यक है कि आधार तीन प्रकार के होते हैं—

१. **औपश्लेषिक आधार**— जब दो वस्तुएँ प्रत्यक्ष रूप में अलग-अलग दिखाई देती हैं तथा उनका एक दूसरे से जुड़ना स्पष्ट दिखाई दे, तो वह आधार औपश्लेषिक होता है। जैसे— कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है) यहाँ चटाई और बैठने वाला दोनों अलग-अलग वस्तुएँ प्रत्यक्ष हैं तथा उस व्यक्ति का चटाई से जुड़ना प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। अतः यहाँ चटाई औपश्लेषिक आधार होगी।

२. **वैषयिक आधार**—जब कर्ता किसी विषय में अपने चित्त या बुद्धि का सम्बन्ध स्थापित करता है तो वहाँ वैषयिक आधार होता है। जैसे— मोक्षे इच्छा (मोक्ष में इच्छा)। यहाँ कर्ता की बौद्धिक या मानसिक स्थिति मोक्ष में होने से मोक्ष बुद्धि का, इच्छा का वैषयिक आधार कहलाएगा।

३. **अभिव्यापक आधार**— जहाँ किसी वस्तु या विषय की किसी वस्तु या विषय में व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध से स्थिति होती है। वहाँ वस्तु का आधार अभिव्यापक कहलाता है। जैसे तिलेषु तैलम् (तिलों में तेल), यहाँ तेल तिलों में व्याप्य-व्यापक भाव से स्थित है। अतः यहाँ तिल अभिव्यापक आधार कहलाएँगे।

३०. **सप्तम्यधिकरणे**— (२/३/३६) अधिकरण में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है अर्थात् 'आधारोऽधिकरणम्' सूत्र से जिन-जिन की अधिकरण संज्ञा होती है। उनमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— स्थाल्याम् ओदनं पचति। (बटलोई में भात पकाता है) यहाँ क्योंकि पकाने का कार्य थाली में हो रहा है और चावल और थाली दोनों प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं तथा इनमें चावलों का आधार थाली है। अतः 'आधारोऽधिकरणम्' से बटलोई की अधिकरण संज्ञा होकर (औपश्लेषिक आधार में) उपर्युक्त सूत्र से उसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ।

३१. **साध्वसाधुप्रयोगे च** (वार्तिक)—साधु (उचित, श्रेष्ठ) अथवा असाधु (अनुचित) इन शब्दों का प्रयोग होने पर जिसके प्रति साधुता या असाधुता कही जाती है, उसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

जैसे— कृष्णः मातरि साधुः। (कृष्ण माता के प्रति श्रेष्ठ है) इस वाक्य में साधु शब्द का प्रयोग होने से उपर्युक्त सूत्र से माता शब्द में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है, क्योंकि यहाँ कृष्ण की साधुता माता के प्रति कही गई है।

३२. **यस्य च भावेन भावलक्षणम्** (२/३/३७) (V. M. Imp.)– जब एक कार्य के होने के पश्चात् दूसरी क्रिया का होना बताया जाता है तो जो कार्य पहले हो चुका है उसके कर्ता में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

जैसे— गोषु दुह्यमानासु गतः (गायों के दुहे जाने पर वह गया)।

यहाँ गायों के दुहे जाने के पश्चात् कर्ता की गमन क्रिया का कथन किया गया है। इसलिए उपर्युक्त सूत्र से प्रथम क्रिया गायों में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। दोहन क्रिया में विशेषण विशेष्यभाव से सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। यहाँ गाय विशेष्य है तथा दोहन क्रिया विशेषण।

३३. **षष्ठी चानादरे** (२/३/३८) (M. Imp.)– जिसका अनादर या अपमान करके कोई कार्य किया जाए। तो जिसका अनादर किया जाता है, उसमें षष्ठी या सप्तमी दोनों में से एक विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

जैसे— रुदति रुदतः वा माता गता (बच्चे को रोते को छोड़कर माता चली गई)। प्रस्तुत उदाहरण में माता का अपने बच्चे के प्रति अनादर भाव (उपेक्षा) प्रदर्शित किया गया है, अतः उपर्युक्त सूत्र से जिसके प्रति यह भाव प्रकट किया गया है, उस बच्चे में षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

३४. **यतश्च निर्धारणम्** (२/३/४१) (M. Imp.) जब किसी वस्तु की किसी विशेषण के माध्यम से अथवा कोई विशेषता बताकर समुदाय में वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया जाता है तो समुदायवाची शब्द में षष्ठी या सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करते है।

जैसे— कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः (कालिदास कवियों में श्रेष्ठ हैं) यहाँ कालिदास की कविसमुदाय में विशेषता प्रतिपादित की गई है। अतः समुदायवाची शब्द कविषु में सप्तमी तथा षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

८. परीक्षा में उत्तर लिखने की विधि

निम्न सूत्र का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए सोदाहरण स्पष्टीकरण कीजिए–

१. **सूत्र**— सहयुक्तेऽप्रधाने

२. **सूत्र का अभिप्राय**— यदि वाक्य में 'साथ' अर्थ के वाचक सह, साकम्, सार्धम्, समम् इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग हुआ हो तो अप्रधान कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

३. **उदाहरण**— हरिः रामेण सह गच्छति। हरि राम के साथ जाता है।

४. **स्पष्टीकरण**— यहाँ हरि का क्रिया से सीधा सम्बन्ध होने से वह प्रधान कर्ता हुआ तथा राम अप्रधान कर्ता। वाक्य में साथ अर्थ का भी प्रयोग हुआ है। अतः उपर्युक्त सूत्र से अप्रधान कर्ता राम में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

इसके अतिरिक्त परीक्षक इस प्रकार भी प्रश्न पूछ सकता है–

निम्न वाक्यों में से रेखांकित पदों में विभक्ति-निर्देश करते हुए सूत्र-निर्देशपूर्वक विभक्ति का कारण बताइये– **जटाभिः तापसः**। इसका उत्तर छात्रों को इस प्रकार लिखना चाहिए–

जटाभिः

१. **विभक्तिनिर्देशः** - तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

२. **सूत्रनिर्देशः** - इत्थंभूत लक्षणे।

३. **स्पष्टीकरणः** - 'ऐसा हुआ' इस प्रकार कहकर कथन करने वाले चिह्न में 'इत्थं भूतलक्षणे' सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

उक्त उदाहरण में किसी व्यक्ति का तपस्वी होना बताया गया है। अतः तपस्वी के चिह्न जटाओं में उपर्युक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

९. स्त्री प्रत्यय

संस्कृत में तीन लिङ्ग होते हैं– पुल्लिग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसक लिङ्ग। इनमें कुछ पुल्लिग शब्दों में जिनके जोड़े बन जाते हैं, स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए कुछ प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें स्त्री - प्रत्यय कहते हैं। जैसे— अज शब्द से 'टाप्' स्त्री प्रत्यय का प्रयोग करके 'अजा' स्त्रीलिङ्ग शब्द बना। स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए प्रत्यय हैं— १. **टाप्** (आ) २. **ङीप्** (ई) ३. **ङीष्** (ई) ४. **ङीन्** (ई) ५. **ऊङ्** (ऊ) तथा ६. **ति**।

हम यहाँ केवल प्रथम तीन का ही उल्लेख करेंगे, क्योंकि इन तीनों का ही सर्वाधिक प्रयोग होता है।

(क) **टाप्— (अजाद्यतष्टाप्)** (४/१/४) अकारान्त पुल्लिग शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए टाप् प्रत्यय का प्रयोग होता है। टाप् में तीन वर्ण हैं – ट् + आ + प्।

इनमें प्रारम्भ में स्थित ट् की **चुटू**[1] (१/३/७) से तथा अन्त में स्थित प् की **हलन्त्यम्** (१/३/३) सूत्र से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है और शेष बचता है— आ।

जब यह प्रत्यय अकारान्त पद के अन्त में जोड़ा जाता है, तो उस पद के अन्त में स्थित 'अ' तथा प्रत्यय का बचा हुआ 'आ', **अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से दीर्घ होकर आ हो जाते हैं। जैसे—

अज + टाप् = अज् + अ + ट् + आ + प् (ट् और प् इत् संज्ञा होकर लोप)

आ (दीर्घ)

= अज् + आ = अजा शब्द बना।

इन सभी शब्दों के रूप रमा पद के समान चलते है तथा प्रथमा विभक्ति, एकवचन में सु प्रत्यय का '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्य पृक्तं हल्**'[2] (६/१/६८) इत्यादि सूत्र से सु लोप होकर मूल पद अजा आदि ही बना रहता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिए— एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, बाला, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, मन्दा आदि।

विशेष नियम— टाप् प्रत्यय का जिस शब्द से प्रयोग किया गया है, यदि उसमें प्रत्यय जोड़ने से पहले अर्थात् शब्द के अन्त में 'क' का प्रयोग हुआ हो और 'क' से पहले 'अ' आया हो तो उसके स्थान पर 'इ' हो जाता है। किन्तु यह नियम तभी लागू होगा जब 'क' किसी प्रत्यय का हो और टाप् से पहले सुप्[3] प्रत्ययों में से किसी का प्रयोग न हुआ हो। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी।

जैसे— मूषक + टाप् = मू + ष् + अ → इ + क + ट् + आ + प्

= मू + ष् + इ + क् + अ + आ = आ (दीर्घ) = मूषिका

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में मूषक शब्द अकारान्त होने से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए '**अजाद्यतष्टाप्**' सूत्र से टाप् होकर बना - मूषक + टाप्। टाप् में ट् और प् की इत् संज्ञा होकर लोप हुआ, शेष बचा आ = मूषक + आ। पुनः उपर्युक्त नियम से मूषक के अन्त में स्थित 'क' सुप् प्रत्ययों से भिन्न प्रत्यय का होने (√मुष् + ण्वुल् → वु को अक आदेश = मूषक) तथा क से पहले ष में स्थित अ होने से उसे इ होकर बना– मूषिक + आ। पुनः 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ सन्धि होकर 'क' में स्थित 'अ' तथा टाप् का अवशिष्ट 'आ' को सवर्ण दीर्घ आदेश हुआ और बना– मूषिका।

---

१. प्रत्यय के प्रारम्भ में स्थित चवर्ग एवं टवर्ग की इत् संज्ञा।

२. हलन्त के बाद दीर्घ ङी (ई) तथा आ के बाद सु के स् का लोप।

३. सु, औ, जस्। अम्, औट्, शस्। टा, भ्याम्, भिस्। ङे भ्याम्, भ्यस्। ङसि, भ्याम्, भ्यस्। ङस्, ओस्, आम्। ङि, ओस्, सुप्।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए—

कारक (√कृ + ण्वुल्) + टाप् = कारिक + आ = कारिका।

सर्वक (सर्व + ण्वुल्) + टाप् = सर्विक + आ = सर्विका।

मामक (माम् + ण्वुल्) + टाप् = मामिक + आ = मामिका।

'क' प्रत्यय का न होने की स्थिति में यह नियम लागू नहीं होगा। जैसे— शङ्क टाप् = शङ्का। यहाँ 'शङ्क' के अन्त में स्थित क प्रत्यय का न होने से उक्त विशेष नियम लागू नहीं हुआ।

(ख) **ङीप् नियम-१– (ऋन्नेभ्यो ङीप्** - ४/१/५) ऋकारान्त और नकारान्त शब्दों के बाद स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए 'ङीप्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

ङीप् मे तीन वर्ण हैं – ङ् + ई + प्। इनमें प्रारम्भ में स्थित ङ् की 'लशक्वतद्धिते'[1] (१/३/८) से तथा अन्त में स्थित प् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' (१/३/९) से इत्संज्ञक ङ् और प् का लोप होकर 'ई' शेष बचता है।

जब यह प्रत्यय प्रयोग करना हो तो उसका सरल तरीका है कि उस पद का तृतीया विभक्ति का एकवचन का रूप लेकर उसके अन्त में स्थित स्वर को हटाकर ङीप्' प्रत्यय के शेष 'ई' को जोड़ दिया जाता है। जैसे—

१. कृ + ङीप् (ङ् + ई + प्) = कर्त्रा (तृ. वि., ए.व.) कर्त्र् + ई = कर्त्री।

२. दातृ + ङीप् (ङ् + ई + प्) = दात्रा (तृ. वि., ए.व.) दात्र् + ई = दात्री।

३. राजन् + ङीप् (ङ् + ई + प्) = राज्ञा (तृ. वि., ए.व.) राज्ञ् + ई = राज्ञी।

४. श्वन् + ङीप् (ङ् + ई + प्) = शुना (तृ. वि., ए.व.) शुन् + ई = शुनी।

(उपर्युक्त सभी उदाहरणों में तृतीया विभक्ति, एकवचन के रूपों में अन्त में स्थित स्वर 'आ' को हटाकर शेष में केवल 'ई' को जोड़ा गया है)

अन्य उदाहरण— जनयितृ → जनयित्री, शिक्षयितृ → शिक्षयित्री, मालिन् → मालिनी, दण्डिन् → दण्डिनी, मानिन् → मानिनी, कामिन् → कामिनी गुणिन् → गुणिनी, मनोहारिन् → मनोहारिणी, तपस्विन् → तपस्विनी।

अपवाद— स्वसृ, मातृ, दुहितृ, ननान्दृ, तिसृ, चतसृ शब्दों से ङीप् प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता, अपितु स्वसा, माता, दुहिता, ननान्दा, तिस्रः, चतस्रः बनेगा।

नियम २— जिन शब्दों के अन्त में 'कर' का प्रयोग हुआ हो तथा नद, चोर, देव ग्राह, गर, प्लव आदि पदों के बाद भी स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीप् प्रत्यय का ही प्रयोग किया जाता है। जिनका ट् इत् हुआ हो।[2] स्त्रीलिंग बनाने के लिए ऐसे शब्दों से ङीप प्रत्यय का प्रयोग करेंगे।

---

१. तद्धित प्रत्यय से भिन्न प्रत्यय के आरम्भ में स्थित ल्, श् और कवर्ग के वर्णों की इत् संज्ञा।

२. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ् कञ् क्वरपः (४/१/१५)।

जैसे— भोगकरः से भोगकरी, नद से नदी, चोर से चोरी, देव से देवी, ग्राह से ग्राही, गर से गरी, प्लव से प्लवी।

विशेष— यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि अकारान्त पदों में ङीप् का प्रयोग करने से पूर्व उनके अन्तिम स्वर को 'यस्येति च' सूत्र से हटा दिया जाता है। जैसे नद + ङीप् = नद् + अ (लोप) + ई = नद् + ई = नदी।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए।

नियम ३— इसके अतिरिक्त जिन शब्दों के अन्त में ढक्, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नञ्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्ययों में से किसी का भी प्रयोग हुआ हो तो स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीप् प्रत्यय का ही प्रयोग किया जायेगा।

जैसे— सुपर्णी + ढक्[1] (एय्), आदि स्वर उकार को वृद्धि औकार तथा ईकार लोप (यस्येति च सूत्र से) सौपर्ण् + एय् + ङीप् (ई) = सौपर्णेयी। इसी प्रकार अण् का इन्द्र से ऐन्द्री, अञ् का उत्स से औत्सी, द्वयसच् का उरुद्वयसी, दघ्नञ् का उरुदघ्नी, मात्रच् का उरुमात्री, तयप् का पञ्चतयी ठक्, का आक्षिकी, ठञ् का लावणिकी, कञ् का यादृशी और क्वरप् का इत्वरी आदि उदाहरण समझने चाहिए।

नियम ४— (वयसि प्रथमे ४/१/२०) अन्तिम अवस्था को छोड़कर अन्य आयु वर्ग का बोध कराने वाले शब्दों में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीप् प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

जैसे— कुमार→ ङीप् (ई) = कुमार् + (अ - लोप) + ई = कुमारी।

प्रस्तुत उदाहरण में कुमार शब्द के द्वारा प्रथम अवस्था का बोध हो रहा है। इसमें स्त्रीलिङ्ग का बोध कराने के लिए 'वयसि प्रथमे' सूत्र से ङीप् प्रत्यय का प्रयोग हुआ। ङीप् में 'ङ्' तथा 'प्' की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। शेष 'ई' बचता है। कुमार के अन्तिम र में स्थित 'अ' का 'यस्येति च' सूत्र से लोप होकर बना— कुमार् + ई = कुमारी।

इसी प्रकार किशोर→ किशोरी, वधूट→ वधूटी इत्यादि उदाहरणों को भी समझना चाहिए।

विशेष— इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यदि वृद्धावस्था आदि का प्रयोग होगा तो उनसे स्त्रीलिङ्ग बनाने में ङीप् का प्रयोग नहीं करेंगे, अपितु वहाँ टाप् प्रत्यय का ही प्रयोग होगा। जैसे—

---

१. ढ् को एय् आदेश होता है तथा ढ् में स्थित अ = एय् + अ = एय के अन्तिम अ (य् + अ) को पुनः यस्येति च से लोप हो जाता है।

वृद्ध→ वृद्धा, स्थविर (बूढ़ा)→ स्थविरा (बुढ़िया)

(ग) **ङीष्– नियम १ (षिद् गौरादिभ्यश्च** - ४/१/४१)—जिन शब्दों के निर्माण में ऐसे प्रत्ययों का प्रयोग हुआ हो, जिनमें ष् वर्ण इत् संज्ञक हो, ऐसे शब्दों तथा गौरादि गण के शब्दों (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, वदर, उभय, भृङ्ग, अनडुह, नट, मण्डल, मङ्गल और बृहत् आदि) के बाद स्त्रीलिङ्ग बनाने में 'ङीष्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

ङीष् में भी ङीप् के ही समान ङ् और ष् की पूर्वोल्लिखित सूत्रों से ही इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है और 'ई' शेष बचता है।

जैसे— नर्तक + ङीष् (ङ् + ई + ष्) = नर्तक् + अ (लोप) + ई = नर्तकी

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में √नृत् धातु से ष्वुन्[1] प्रत्यय हुआ। पुनः ष् और न् की इत् संज्ञा और लोप, शेष बचा वु। जिसे अक आदेश होकर बना– √नृत् + अक तथा धातु के ऋ को अर् गुणादेश होकर बना - नर्तक। 'ष्वुन्' प्रत्यय में ष् इत् होने के कारण नर्तक शब्द षित् कहलायेगा।

पुनः उपर्युक्त सूत्र से षित् 'नर्तक' शब्द में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीष् प्रत्यय का प्रयोग किया तो नर्तक + ङीष् बना। ङीष् मे ङ् और ष् की इत् संज्ञा, शेष बचा ई = नर्तक + ई। पुनः नर्तक के क में स्थित स्वर 'अ' का लोप 'यस्येति च' सूत्र से[2] नर्तक् + ई, जोड़ने पर नर्तकी। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएँ।

जैसे— गौरी, हरिणी, आमलकी, वदरी, उभयी, भृङ्गी, अनडुही, नटी, मङ्गली, मण्डली, बृहती।

नियम २— ऐसे पुल्लिंग शब्द, जिनसे पुरुष का बोध हो रहा हो, किन्तु अन्त में 'पालक' शब्द का प्रयोग न हुआ हो, स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए 'ङीष्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।[3]

जैसे— गोप→ ङीष्→ ई = गोप + ई = गोप् + अ (लोप) + ई = गोपी।

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में गोप पुल्लिंग शब्द है तथा उससे पुरुष का भी बोध हो रहा है और उसके अन्त में पालक शब्द का भी प्रयोग नहीं हुआ है। अतः इससे स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए 'ङीष्' प्रत्यय का प्रयोग किया गया और पूर्वकथित प्रक्रिया के अनुसार ही बना– गोपी।

---

१. शिल्पिनि ष्वुन्।

२. जिन शब्दों के अन्त में स्वर हो उसके इ, ई और अ, आ का लोप हो जाता है, यदि बाद में प्रत्यय का ई या तद्धित प्रत्यय का प्रयोग हुआ हो।

३. पुंयोगादाख्यायाम् (४/१/४८) पालकान्तान्न (वाः)।

विशेष— पालक पद का प्रयोग होने पर 'टाप्' होकर 'गोपालिका' शब्द बनेगा।

अन्य उदाहरण– शूद्र— शूद्री।

नियम ३— ऐसे अकारान्त जातिवाचक शब्दों से, जिनके अन्तिम स्वर या व्यञ्जन से पूर्व (उपधा) य् का प्रयोग न हुआ हो, स्त्रीलिङ्ग बनाने में 'ङीष्' का प्रयोग करते हैं।[1]

जैसे—	ब्राह्मण + ङीष्	→ ब्राह्मण् + ई	= ब्राह्मणी।
	मानुष + ङीष्	→ मानुष् + ई	= मानुषी।
	सिंह + ङीष्	→ सिंह् + ई	= सिंही।
	व्याघ्र + ङीष्	→ व्याघ्र् + ई	= व्याघ्री।
	भल्लूक + ङीष्	→ भल्लूक् + ई	= भल्लूकी।
	शूकर + ङीष्	→ शूकर् + ई	= शूकरी।
	गर्दभ + ङीष्	→ गर्दभ् + ई	= गर्दभी।

(ये सभी शब्द जातिवाचक प्रयुक्त हुए हैं तथा उपधा में य् वर्ण भी नहीं आया है)

इन शब्दों की सभी प्रक्रिया नियम १ के अनुसार ही रहेगी।

नियम ४— जाया (पत्नी) अर्थ की अभिव्यक्ति में इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य और ब्रह्मन् शब्दों में 'ङीष्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं तथा शब्द और प्रत्यय के बीच आनुक् (आन्) का आगम हो जाता है।[2]

इसके अतिरिक्त विस्तार अर्थ की अभिव्यक्ति में हिम और अरण्य के बाद, खराब यव अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए यव के बाद, यवनों की लिपि अर्थ की अभिव्यक्ति में यवन पद के बाद तथा मातुल (मामा) और उपाध्याय शब्दों के बाद भी ङीष् प्रत्यय से पहले आनुक् (आन्) का आगम होता है। जैसे—

इन्द्र + ङीष्	= इन्द्र[3] + आनुक् + ई	= इन्द्र + आन्[4] + ई = इन्द्राणी
वरुण + ङीष्	= वरुण + आन् + ई	= वरुणानी (वरुण की पत्नी)
भव + ङीष्	= भव + आन् + ई	= भवानी (शिव की पत्नी)
शर्व + ङीष्	= शर्व + आन् + ई	= शर्वाणी (शर्व की पत्नी)
रुद्र + ङीष्	= रुद्र + आन् + ई	= रुद्राणी (रुद्र की पत्नी)

१. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (४/१/६३)।

२. इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृड हिमा रण्ययव यवन मातुला चार्याणामानुक् (४/१/४९)।

३. न् को ण् 'रषाभ्यां नो णः समान पदे' से।

४. अकः सवर्णे दीर्घः से पद के अन्तिम अ और आन् के आ को सवर्ण दीर्घ आदेश हुआ।

मृड + ङीष्	= मृड + आन् + ई	= मृडानी (मृड की पत्नी)
आचार्य + ङीष्	= आचार्य + आन् + ई	= आचार्याणी (आचार्य की पत्नी)
ब्रह्मन् + ङीष्	= ब्रह्म (न् लोप) + आन् + ई	= ब्रह्माणी (ब्रह्मा की पत्नी)
हिम + ङीष्	= हिम + आन् + ई	= हिमानी (हिम का विस्तार)
अरण्य + ङीष्	= अरण्य + आन् + ई	= अरण्यानी (अरण्य का विस्तार)
यव + ङीष्	= यव + आन् + ई	= यवानी (खराब यव)
यवन + ङीष्	= यवन + आन् + ई	= यवनानी (यवनों की लिपि)
मातुल + ङीष्	= मातुल + आन् + ई	= मातुलानी (मामा की पत्नी)

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए।

नियम ५— उकारान्त गुणवाची शब्दों के बाद स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीष् प्रत्यय का प्रयोग विकल्प से करते हैं।[1]

जैसे— मृदु + ङीष् = मृद् + उ→ व् (यण् आदेश) + ई = मृद्व् ई = मृद्वी

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत उदाहरण में मदु गुणवाची पद है तथा उकारान्त भी। अतः 'वातोगुणवचनात्' (४/१/४४) सूत्र से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रयोग हुआ। 'ङीष्' में ङ् और ष् की इत् संज्ञा होकर लोप, शेष बचा ई। पुनः मृदु के अन्त में प्रयुक्त उ को 'इकोयणचि' सूत्र से 'व्' आदेश होकर मृद् व् ई, जोड़ने पर बना → मृद्वी।

किन्तु विकल्प की अवस्था में जब यह प्रत्यय नहीं होगा तो मृदु ही रहेगा।

अन्य उदाहरण—पटु+ ङीष्=पटवी, साधु + ङीष्= साध्वी, गुरु + ङीष् = गुर्वी।

विशेष— किन्तु यदि उकारान्त गुणवाची पद की उपधा[2] में संयुक्त वर्ण होगा तो उक्त नियम लागू नहीं होगा और ज्यों का त्यों ही रहेगा। जैसा— पाण्डु। पुल्लिंग और स्त्रीलिङ्ग दोनों में ही यह पाण्डु ही रहेगा।

ठीक इसी प्रकार ह्रस्व और दीर्घ ईकारान्त गुणवाची शब्दों का पुल्लिंग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में एक जैसा रहता है। जैसे— शुचि, सुधी।

४. ङीन्– शारङ्गरव आदि शब्दों में तथा अकारान्त जातिवाचक शब्दों से ङीन् प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।[3] इसका भी 'ई' शेष बचता है। शेष की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। जैसे— शारङ्गरवी + ङीन् (ई) = शार्ङ्गरवी, नृ + ङीन् = नारी।

१. वातोगुणवचनात् (४/१/४४)।

२. अन्तिम अल् से पूर्व के वर्ण की उपधा संज्ञा होती है (अभोऽन्त्यात् पूर्व उपधा)।

३. शारङ्गरवाद्यञो ङीन।

५. **ति**– युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में 'ति' प्रत्यय का प्रयोग होता है।[1] युवन् के अन्त में स्थित 'न्' का लोप हो जाता है। जैसे— युवन् + ति = युवतिः।

१०. कृदन्त प्रत्यय

जिन प्रत्ययों को धातु में जोड़कर संज्ञा, विशेषण और अव्यय शब्द बनाये जाते हैं। उन्हें कृत् प्रत्यय कहा जाता है तथा इस प्रत्यय से युक्त शब्द कृदन्त कहलाते हैं। जैसे—√कथ् धातु से अनीयर् प्रत्यय प्रयोग करने पर कथनीयः शब्द बना। यहाँ अनीयर् कृत् प्रत्यय होने से 'कथनीयः' (पुल्लिंग) कृदन्त शब्द कहलाएगा।

ये कृत प्रत्यय तीन प्रकार के होते हैं १. कृत्य २. कृत ३. उणादि। इनमें से कृत्य[2] प्रत्ययों की विशेषता है कि इनका कर्तृवाच्य में प्रयोग नहीं होता, अपितु ये केवल कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं—

(क) **कृत्य प्रत्यय**– (१) **तव्यत् (तव्य)** – चाहिए अथवा योग्य अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। यह प्रायः सभी धातुओं के साथ जोड़ा जा सकता है। तव्यत् के अन्त में प्रयुक्त त् की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा शेष बचता है→ तव्य। इस प्रत्यय का प्रयोग होने के बाद तीनों लिङ्गों में रूप बनते हैं।

जैसे— √दा (देना) + तव्यत् = दातव्यः, दातव्या, दातव्यम्[3]

(२) **तव्य**– तव्यत् और तव्य में लौकिक संस्कृत में विशेष अन्तर नहीं है। तव्यत् के अन्तिम 'त्' की इत् संज्ञा होने से केवल वैदिक संस्कृत में स्वरों में अन्तर पड़ता है। वहाँ इस प्रत्यय से युक्त शब्द स्वरित होते हैं।[4]

विशेष— (क) इन प्रत्ययों का प्रयोग करके रूप बनाने के लिए सेट् धातुओं में प्रत्यय और धातु के बीच 'इ' का प्रयोग करते हैं। जैसे—

√पठ् + तव्यत् = √पठ् + इ + तव्य = पठितव्यः।

इसी प्रकार चरितव्यः, भक्षितव्यः, शंसितव्यः, कथितव्यः, पूजितव्यः, ईक्षितव्यः, जनितव्यः, रक्षितव्यः आदि को भी समझना चाहिए।

(ख) जिन धातुओं के अन्त में अथवा अन्तिम व्यञ्जन से पूर्व इकार या उकार का प्रयोग होता है तो उसे गुण (अर्थात् इ को ए, उ को ओ) करके ही प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।[5]

---

१. यूनस्तिः।

२. तव्यत् तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, ण्यत्।

३. तीनों लिंगों में क्रमशः (पु०, स्त्री०, नपु०)

४. तित्स्वरितम्।

५. इन सभी प्रत्ययों के विस्तृत रूप अन्त में दिये गए हैं। वहीं इनका अभ्यास करना चाहिए।

जैसे— √चि + तव्यत् = चेतव्यम्। √लिख् + तव्यत् = लेखितव्यम्। √नी + तव्यत् = नेतव्यम्। √भिद् + तव्यत् = भेत्तव्यम्, √छिद् + तव्यत् = छेत्तव्यम्। √भुज् + तव्यत् = भोक्तव्या, √कुप् + तव्यत् = कोपितव्या, √मुच् + तव्यत् = मोक्तव्या, √मुद् + तव्यत् = मोदितव्या।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस प्रत्यय से निर्मित शब्द के तीनों लिङ्गों तथा सातों विभक्तियों में रूप चलते हैं। पुल्लिंग में राम के समान, स्त्रीलिङ्ग में रमा के तथा नपुंसकलिङ्ग में पुस्तक के समान।

(३) **अनीयर्**– तव्यत् प्रत्यय के समान ही इसका भी 'चाहिए' अथवा 'योग्य' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए ही प्रयोग होता है। इसके अन्त में स्थित 'र्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— अनीय।

हलन्त धातुओं के साथ इस प्रत्यय का प्रयोग अत्यन्त सरल है, क्योंकि वहाँ अन्तिम स्वररहित व्यञ्जन में 'अनीय' का 'अ' जोड़कर रूप सरलता से बना लेते हैं। जैसे—√पठ् + अनीयर् = पठनीयः, √गम् + अनीयर् = गमनीयः, √चल् + अनीयर् = चलनीयः।

गुण (उ को ओ) तव्यत् प्रत्यय के ही समान होता है। जैसे— √भुज् + अनीयर् = भोजनीयः, √चुर् + अनीयर् = चोरणीयः।

किन्तु यहाँ ह्रस्व इ एवं ईकारान्त धातु की 'इ' को 'अय्' आदेश होकर रूप बनता है— √चि— च् + इ → अय् + अनीयर् = चयनीयः। √नी + अनीयर् = न् + ई → अय् + अनीय = नयनीयः।

इस प्रत्यय के शब्दों के रूप भी तीनों लिंगों एवं सभी विभक्तियों में तव्यत् के समान ही चलते हैं अर्थात् चलनीयः, चलनीया, चलनीयम् तीनों रूप बनेंगे।

४. **केलिमर्**— तव्यत्, तव्य तथा अनीयर् प्रत्ययों के समान ही इस प्रत्यय का भी प्रयोग होता है, किन्तु इस प्रत्यय का अत्यल्प प्रयोग मिलता है। इसके प्रारम्भ में स्थित क् की 'लशक्वतद्धिते' से तथा अन्त में स्थित र् की 'हलन्त्यम्' इत्संज्ञक सूत्रों से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है– एलिम।

इस प्रत्यय का प्रयोग अत्यन्त सरल है। जैसे— √छिद् + केलिमर् = छिदेलिम, √भिद् + केलिमर् (एलिम) = भिदेलिम, √पच् + केलिमर् (एलिम) = पचेलिम।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि धातु के अन्त में प्रयुक्त स्वररहित व्यञ्जन में प्रत्यय के प्रारम्भ में स्थित 'ए' को संयुक्त करके रूप आसानी से बनाया जा सकता है।

५. **यत्**— केवल 'योग्य' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। इसका 'य' शेष बचता है, क्योंकि 'हलन्त्यम्' सूत्र से प्रत्यय के अन्त में प्रयुक्त 'त्' की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है।[2]

---

१. इन नियमों का ध्यानपूर्वक अवलोकन कर लें, आगे भी इनका प्रयोग होगा।

२. तस्य लोपः संज्ञा प्रकरण सूत्र संख्या१।

इस प्रत्यय का प्रयोग केवल उन धातुओं के साथ किया जाता है जिनके अन्त में स्वर का प्रयोग हुआ हो[1] अथवा जिन धातुओं की उपधा में अकार का प्रयोग हुआ हो और अन्त में पवर्ग (प्, फ्, ब्, भ्, म्) का कोई भी वर्ण आया हुआ हो।[2]

जैसे— √दा + यत् = देय, √धा + यत् = धेय। √जप् + यत् = जप्य, √लभ् + यत् = लभ्य।

उपर्युक्त उदाहरणों में स्पष्ट है कि 'दा' एवं 'धा' धातु के अन्त में स्वर प्रयुक्त होने से यत् प्रत्यय का प्रयोग होकर देय और धेय शब्दों का निर्माण हुआ। इसी प्रकार √जप् धातु के अन्त में पवर्ग का वर्ण प् होने तथा उससे पूर्व उपधा 'ज' में स्थित 'अ' होने के कारण 'यत्' प्रत्यय का प्रयोग करके रूप बना— जप्य।

विशेष नियम— यत् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए इन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए—

(१) यत् से पूर्व स्थित स्वर को (इ से भिन्न होने पर) ई करके गुण 'ए' बना देते हैं। जैसे— द् + आ → ई → ए = दे + य(त् - लोप) = देय।

(२) ऐसी धातुएँ जिनके अन्त में पवर्ग का वर्ण प्रयुक्त हुआ हो और उसकी उपधा में अकार आया हो तो वहाँ केवल धातु के अन्त में 'य' का प्रयोग कर देते हैं—

जैसे— √शप् + य(त्) = शप्य, √लप् + य(त्) = लप्य, उप + √लभ् + य(त्) = उपलभ्य।

(३) यदि लभ् धातु से पहले 'आ' उपसर्ग का प्रयोग हुआ हो अथवा 'प्रशंसा' अर्थ में उप उपसर्ग आया हो तो धातु के अन्तिम वर्ण से पूर्व नुम् (न् को म् हो जाता है) का आगम हो जाता है। जैसे—

आ + √ल + (नुम् → म्) + भ् + य(त्) = आलम्भ्य।

उप + √ल + (नुम् → म्) + भ् + य(त्) = उपलम्भ्य।

किन्तु उप उपसर्ग का 'प्रशंसा' अर्थ में प्रयोग न होने पर 'उपलभ्य' रूप ही बनेगा, तब इसका अर्थ होगा– 'उलाहने के योग्य'।

(४) इसके अतिरिक्त √तक् (हँसने), √शस् (हिंसा), √चत् (याचना), √यत् (यत्न करना), √जन् (उत्पन्न होना), √हन् (मारना) = वध्य, √शक् (सकना), √सह् (सहन करना), √गद् (कहना), √मद्, √चर्, √यम् (रोकना), √वह् (ढ़ोना), आदि अन्य व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ भी 'योग्य' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'यत्' प्रत्यय का प्रयोग करके रूप बनेंगे— क्रमशः–

१. अचोयत् (३/१/९७)।
२. पोरदुपधात् (३/१/९८)।

तक्य, शस्य, चत्य, यत्य, जन्य, वध्य, (यत् से पूर्व हन् को वध् आदेश हो जाता है)[1], शक्य, सह्य, गद्य, मद्य, चर्य, यम्य, वह्य।

६. **ण्यत्–** जिन धातुओं के अन्त में ऋकार अथवा हल् प्रत्याहार का वर्ण अर्थात् व्यञ्जन (उक्त धातुओं और व्यञ्जनों को छोड़कर) प्रयुक्त हुआ हो तो उक्त अर्थ (योग्य) की अभिव्यक्ति के लिए ण्यत् प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।[2]

ण्यत् के आरम्भ में प्रयुक्त ण् की 'चुटू'[3] से तथा त् की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है, 'य'।

जैसे— √कृ + ण्यत् = कार्यम्, कार्या, कार्यः।

√पठ् + ण्यत् = पाठ्यम्, पाठ्या, पाठ्यः।

उपर्युक्त उदाहरणों में स्पष्ट है कि √कृ के अन्त में ऋकार आने से तथा √पठ् के अन्त में (पवर्ग के वर्ण को छोड़कर) व्यञ्जन वर्ण प्रयुक्त होने पर ण्यत् प्रत्यय होकर 'कार्य' और 'पाठ्य' रूप बने।

इस प्रत्यय का प्रयोग करते समय कुछ बातों को ध्यान रखना चाहिए।

विशेष नियम– (१) ण्यत् प्रत्यय से पूर्व प्रयुक्त धातु के अन्तिम स्वर को वृद्धि हो जाती है। जैसे, कार्य में √कृ के 'ऋ' को वृद्धि आर् होकर बना— क् + ऋ→ आर् + ण्यत् = कार्यः।

(२) ण्यत् प्रत्यय का प्रयोग होने पर धातु की उपधा में स्थित अकार को 'आ' ऋ को 'आर्' वृद्धि आदेश हो जाता है। जैसे— √पच् + ण्यत् = पाक्यः।

यहाँ पच् धातु की उपधा प में स्थित 'अ' को 'आ' वृद्धि आदेश होकर बना– पाक्यः।

(३) ण्यत् प्रत्यय लगने पर उससे पूर्व प्रयुक्त धातु के 'च्' अथवा 'ज्' के स्थान पर क्रमशः 'क्' और 'ग्' आदेश हो जाते हैं।[4] इसी नियम के कारण उक्त उदाहरण पाक्यः में √पच् के च् को 'क' आदेश हुआ। इसी प्रकार √मृज् + ण्यत् = मार्ग्यः में भी ज् को ग् आदेश समझना चाहिए, किन्तु धातु यदि कवर्ग के वर्ण से प्रारम्भ होती है तो यह नियम लागू नहीं होगा। जैसे— √गर्ज् + ण्यत् = गर्ज्य।

(४) धातु की उपधा में अकार को छोड़कर अन्य स्वर होने पर उसे वृद्धि न होकर गुण (इ को ए, उ को ओ) होता है। जैसे— √भुज् + ण्यत् = भोग्यः (पु.)।

(५) यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, ऋच् और त्यज् धातुओं के च् और ज् को क् या ग् नहीं होगा। अतः इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

१. हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः (वार्तिक)।
२. ऋहलोर्ण्यत् (३/१/१२४)।
३. प्रत्यय के प्रारंभ में प्रयुक्त चवर्ग तथा टवर्ग की इत् संज्ञा होती है।
४. चजोः कुघिण्यतोः (७/३/५२)।

जैसे— याज्य, याच्य, रोच्य, प्रवाच्य, अर्च्य, त्याज्य।

(६) √भुज् धातु के भोज्यम् और भोग्यम् दोनों रूप बनते हैं।

(७) उकार एवं ऊकारान्त धातुओं में भी ण्यत् प्रत्यय का ही प्रयोग किया जाता है, यदि आवश्यकता का बोध कराया जा रहा हो। जैसे— √श्रू + ण्यत् = श्राव्य, √पू + ण्यत् = पाव्य, √लू + ण्यत् (लाव्य)

(७) **क्यप्**— √स्तु, √इण् (गतौ), √शास् (शासन करना), √वृ (वरण करना), √दृ, √जुष् (सेवा करना), √मृज्, √भृ, √कृ तथा √वृष् धातुओं में योग्य अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए क्यप् प्रत्यय का प्रयोग करते हैं, किन्तु अन्तिम चार धातुओं √मृज्, √भृ, √कृ, √वृष् में क्यप् विकल्प से लगेगा। पक्ष में ण्यत् का ही प्रयोग करेंगे।

क्यप् में प्रारम्भ में स्थितं क् की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से तथा अन्त में स्थित प् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। शेष बचता है – 'य'।

विशेष नियम— इस प्रत्यय का प्रयोग करते समय यह बात विशेष रूप से ध्यान रखनी चाहिए कि यदि इस प्रत्यय से पहले धातु का अन्तिम स्वर-ह्रस्व प्रयुक्त हुआ हो तो धातु एवं प्रत्यय के बीच तुक् (त्) का आगम हो जाता है। जैसे—√स्तु + क्यप् = √स्तु + त् + य = स्तुत्य।तुक् आगम होने की स्थिति में गुण आदि नहीं होंगे।

यहाँ तक हमने कृत्य प्रत्ययों का संक्षेप में उल्लेख किया। अब हम इन प्रत्ययों से निर्मित कुछ शब्दों का उल्लेख कर रहे हैं। छात्रों को चाहिए कि जो शब्द उक्त नियमों के अन्तर्गत नहीं आ रहे हैं। उन्हें लाल स्याही से रेखांकित करके स्मरण कर लें।

	तव्यत्	**अनीयर्**	**केलिमर्**	**यत्**	**ण्यत्**	**क्यप्**
√पठ् = पढ़ना	पठितव्य	पठनीय	-	-	पाठ्य	-
√भू = होना	भवितव्य	भवनीय	-	-	भाव्य	-
√भक्ष् = खाना	भक्षितव्य	भक्षणीय	-	-	भाक्ष्य	-
√पूज् = पूजना	पूजितव्य	पूजनीय	-	-	पूज्य	-
√दा = देना	दातव्य	दानीय	-	देय	-	-
√स्तु = स्तुति करना	स्तोतव्य	स्तवनीय	-	-	-	स्तुत्य
√कृ = करना	कर्तव्य	करणीय	-	-	कार्य	कृत्य
√छिद् = छेदना	छेत्तव्य	छेदनीय	छिदेलिम	-	छेद्य	-
√भिद् = भेदना	भेत्तव्य	भेदनीय	भिदेलिम	-	भेद्य	-
√पच् = पकाना	पक्तव्य	पचनीय	पचेलिम	-	पाक्य	-
√धा = धारण करना	-	-	-	धेय	-	-
√चि = चुनना	चेतव्य	चयनीय	-	चेय	-	-
√नी = ले जाना	नेतव्य	नयनीय	-	नेय	-	-

(ख) **कृत् प्रत्यय**— कृत् प्रत्ययों की संख्या कृत्यों की अपेक्षा अधिक है। हम यहाँ उनका अर्थ की दृष्टि से वर्गीकरण करके अध्ययन करेंगे।

(अ) **भूतकालिक**

(१) **क्त प्रत्यय**— किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराने के लिए 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। इसीलिए इस प्रत्यय को निष्ठा भी कहते हैं।[1] निष्ठा का यौगिक अर्थ है – 'समाप्ति'।

'क्त' के प्रारम्भ में प्रयुक्त 'क्' की 'लशक्वतद्धिते' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है – 'त'।

इसके रूप तीनों लिङ्गों, सातों विभक्तियों भ विशेष्य के अनुसार चलते हैं। जैसे— √गम् + क्त = गतः, गता, गतम्। पुल्लिंग में राम के समान, स्त्रीलिङ्ग में रमा के समान तथा नपुंसकलिङ्ग में पुस्तक के समान रूप चलेंगे।

इस प्रत्यय से निर्मित क्रिया पदों का प्रयोग कर्मवाच्य और भाववाच्य में करते हैं। कुछ धातुओं में केवल 'त' का प्रयोग ही रूप बनाने में समर्थ है।

जैसे— कृतः, क्षिप्तः, क्रीतः, चितः, जितः, नीतः, पीतः, श्रुतः, स्मितः, स्मृतः

अधि + इ + तः = अधीतः, घातः आदि, किन्तु कुछ अन्य धातुओं से इसका प्रयोग करने के लिए निम्न बातों का ध्यान आवश्यक है —

विशेष नियम (१) धातुओं का पहला वर्ण य्, र्, ल्, व् होने तथा बाद में क्त प्रत्यय का प्रयोग होने से य को इ, र को ऋ, ल को लृ तथा व को उ सम्प्रसारण हो जाता है।[2] जैसे— √वद् + क्त = उक्तः, √वस् + क्त = उषितः।

(२) र् अथवा द् से अन्त होने वाली धातुओं के बाद क्त प्रत्यय का प्रयोग करने पर, प्रत्यय के त को न् तथा द् को भी न् हो जाता है। जैसे— √शॄ + क्त = शीर्णः, √जॄ + क्त = जीर्णः, √छिद् + क्त = छिन्नः, √भिद् + क्त = भिन्नः, √कॄ + क्त = कीर्णः, √तॄ + क्त = तीर्णः, √गॄ + क्त = गीर्णः।

(३) संयुक्ताक्षर से आरम्भ होने वाली, आकार में अन्त होने वाली, तथा य् व् र् ल् वर्णों से युक्त धातुओं के बाद प्रयुक्त क्त के 'त' को 'न' हो जाता है जैसे— म्लान, ग्लान, स्त्यान, गान, ध्यान, किन्तु ख्यात और ध्यात में 'त' को 'न' नहीं होता है।

(४) कुछ धातुओं में क्त प्रत्यय का प्रयोग करने पर धातु और प्रत्यय के बीच 'इ' का आगम हो जाता है जैसे— √अर्च + क्त = अर्चितः, √ग्रह् + क्त = गृहीतः, √पूज् + क्त = पूजितः, √विद् + क्त = विदितः, √कथ् + क्त = कथितः, √निन्द् + क्त = निन्दितः, √पत् + क्त = पतितः आदि।

---

१. क्तक्तवतू निष्ठा (१/१/२६)।

२. इग्यणः सम्प्रसारणम् (१/१/४५)।

(५) धातु के अन्त में उष्म वर्ण होने पर 'त' को 'ट' हो जाता है। जैसे— शिष्टः, स्पृष्टः, सृष्टः, इष्टः, आदि।

(२) **क्तवतु**— इस प्रत्यय का प्रयोग भी क्त प्रत्यय के समान ही भूतकाल में किया जाता है। वस्तुतः क्त और क्तवतु दोनों को निष्ठा नाम से जाना जाता है। इस प्रत्यय का प्रयोग कर्तृवाच्य में होता है।

जैसे— सः गतवान् = वह गया।

'क्तवतु' के आरम्भ में प्रयुक्त, क् की 'लशक्वतद्धिते' से तथा अन्तिम 'तु' में स्थित 'उ' की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है– 'तवत्'।

क्त प्रत्यय के समान ही इसके रूप भी तीनों लिङ्गों और सभी विभक्तियों में चलते हैं। इसके रूप पुल्लिंग और नपुंसकलिङ्ग में तकारान्त श्रीमत् के समान तथा स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त नदी के समान चलते हैं।

जैसे— √पठ् + क्तवतु = √पठ् + इ + तवत् = पठितवत्। पुल्लिंग में पठितवान्, स्त्रीलिङ्ग में पठितवती, नपुंसकलिङ्ग में पठितवत्।

शेष सभी नियम क्त प्रत्यय के समान होंगे। अब हम यहाँ क्त और क्तवतु प्रत्यययुक्त शब्द दे रहे हैं। छात्रों को इन्हें समझते हुए स्मरण कर लेना चाहिए।

धातु	क्त (पु.)	क्तवतु(पु.)
√पठ् = पढना	पठितः	पठितवान्
√गम् = जाना	गतः	गतवान्
√त्यज् = त्यागना	त्यक्तः	त्यक्तवान्
√ग्रह् = पकड़ना	गृहीतः	गृहीतवान्
√कम्प् = कांपना	कम्पिता	कम्पितवती
√कुप् = क्रोध करना	कुपिता	कुपितवती
√अर्च् = पूजना	अर्चिता	अर्चितवती
√स्ना = स्नाना करना	स्नातः	स्नातवान्
√प्रच्छ् = पूछना	पृष्टः	पृष्टवान्
√भू = होना	भूतः	भूतवान्
√कथ् = कहना	कथिता	कथितवती
√ईक्ष् = देखना	ईक्षिता	ईक्षितवती
√चल् = चलना	चलिता	चलितवती
√भिद् = भेदना	भिन्नः	भिन्नवान्
√चिन्त् = सोचना	चिन्तिता	चिन्तितवती

√कृ = करना	कृतः	कृतवान्
√जन् = उत्पन्न होना	जनिता	जनितवती
√शक् = सकना	शक्तः	शक्तवान्
√तप् = तपना	तपिता	तपितवती
√सिच् = सींचना	सिक्तः	सिक्तवान्
√तुष्= संतुष्ट होना	तुषिता	तुषितवती
√शीङ् = सोना	शयितः	शयितवान्
√पाल् = पालन करना	पालिता	पालितवती
√मन् = मानना	मतः	मतवान्
√रक्ष् = रक्षा करना	रक्षिता	रक्षितवती
√हस् = हँसना	हसितः	हसितवान्
√हृ = हरण करना	हृता	हृतवती

(आ) **वर्तमानकालिक**

(३) **शतृ**— वर्तमान काल में कार्य की निरन्तरता की अभिव्यक्ति के लिये 'शतृ' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। शतृ और शानच् दोनों प्रत्ययों को संस्कृत व्याकरण की भाषा में 'सत्' भी कहते हैं। सत् का अर्थ है वर्तमान अथवा विद्यमान।

जाता हुआ, हँसता हुआ आदि अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए परस्मैपदी धातुओं में शतृ प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। शतृ के प्रारम्भ में स्थित श् की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से तथा अन्तिम त में स्थित ऋ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - अत्।

अब मानो हमें 'जाता हुआ' की संस्कृत बनानी है, तो √गम् धातु में शतृ प्रत्यय का अवशिष्ट अत् जोड़ने पर बना - √गम् + शतृ (अत्) = गच्छ् + अत् = गच्छत् (प्रातिपदिक अर्थात् मूल शब्द)।

रूप चलेंगे पुल्लिंग में भवत् के समान - गच्छन्, गच्छन्तौ, गच्छन्तः। इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग में गच्छन्ती, गच्छन्त्यौ, गच्छन्त्यः, नदी के समान।

(४) **शानच्**— इसी (कार्य की निरन्तरता) अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए आत्मनेपदी धातुओं में 'शानच्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। शानच् में आदि 'श' तथा अन्तिम 'च्' की क्रमशः 'लशक्वतद्धिते' तथा 'हलन्त्यम्' सूत्रों से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'आन'।

इस 'आन' और धातु के बीच प्रायः मुक् का आगम होकर[१] 'मान' बनता है, क्योंकि मुक् में उक् इत् संज्ञक होने से लोप हो जाता है, शेष बचता है म् जो आन के साथ जुड़कर मान बनाता है– म् + आन = मान।

१. आने मुक् (७/२/८२)।

अब हम कुछ धातुओं के शतृ और शानच् प्रत्ययान्त रूपों का उल्लेख करेंगे—

धातु	शतृ	शानच्
√दा = देना	ददत्	ददानः
√श्रू = सुनना	श्रृण्वत्	श्रूयमाणः
√पठ् = पढ़ना	पठत्	-
√इष् = चाहना	इच्छत्	ईषमाणः
√गम् = जाना	गच्छत्	-
√क्रीड् = खेलना	-	क्रीडत्
√नी = ले जाना	नयत्	नयमानः
√गर्ज् = गर्जना	गर्जत्	गर्जमानः
√चुर् = चुराना	चोरयत्	चोरयमानः
√ब्रू = बोलना	ब्रुवत्	ब्रवाणः
√कृ = करना	कुर्वत्	कुर्वाणः
√धा = धारण करना	दधत्	दधानः
√भू = होना	भवत्	
√कम्प् = काँपना		कम्पमानः

धातु में शतृ प्रत्ययान्त पुल्लिंग रूप बनाने का सरल तरीका यह है कि उस धातु के लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन में स्थित 'ति' को यदि हटा दिया जाए तो पुल्लिंग एकवचन के रूप बन जाते हैं। जैसे–

√कृ धातु के प्रथम पुरुष, बहुवचन लट् लकार में 'कुर्वन्ति' रूप बनते हैं। √कृ धातु से ही 'शतृ' प्रत्ययान्त पुल्लिंग रूप बनाने के लिए 'कुर्वन्ति' के अन्त में स्थित 'ति' को हटाने पर बचा– 'कुर्वन्'। यह रूप ही रूप ही 'कृ' धातु का 'शतृ' प्रत्ययान्त पुल्लिंग रूप होगा। इसी प्रकार अन्य धातुओं में भी अभ्यास करना चाहिए।

(५) (इ) **भविष्यतकालिक तुमुन्**— जब एक क्रिया के लिए कोई अन्य क्रिया की जाती है तो प्रथम क्रिया वाली धातु में भविष्यत्कालिक अर्थ प्रकट करने के लिए (तुमुन्) प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

तुमुन् में तुम् शेष बचता है। इसका सीधा अर्थ 'के लिए' होता है।

जैसे— √पठ् + तुमुन् = पठितुम् (पढ़ने के लिए), √गम् + तुमुन् = गन्तुम् (जाने के लिए), √हस् + तुमुन् = हसितुम् (हँसने के लिए)।

इस प्रत्यय से युक्त सभी शब्द अव्यय होते हैं। इनके रूप नहीं चलते हैं।

जैसे— वह पढ़ने के लिए विद्यालय जाता है।

यहाँ गमन क्रिया पहले की जा रही है और जाने के बाद पढ़ना क्रिया की जानी है, इसलिए 'के लिए' अर्थ की अभिव्यक्ति हेतु 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग करेंगे। इसी कारण यह प्रत्यय भविष्यतकालिक प्रत्यय कहा जायेगा। धातुओं से इस प्रत्यय को लगाकर कुछ रूप कृदन्त प्रत्ययों के अन्त में दिए गए हैं। छात्रों को वहाँ इसका विस्तृत ज्ञान करना चाहिए।

(६) **ष्यतृ**— अभी हमने शतृ और शानच्, जिन्हें सत् भी कहा जाता है तथा वर्तमान काल में प्रयोग किए जाते हैं, का उल्लेख किया था, उन्हें ही यदि लृट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन के अन्तिम 'ति' को हटाकर, लगा दिया जाए तो 'ष्यतृ' प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं।

जैसे— √भू + तिप् (लृट् लकार, प्र. पु., ए.व.) = भविष्यति = भविष्य + अत् = भविष्यत्। इसीलिए इसे 'ष्यत्' भी कहते हैं। इसके रूप भी शतृ प्रत्यय के समान ही पुल्लिंग में 'भवत्' की तरह चलते हैं। मूल प्रातिपादिक— पठिष्यत्, करिष्यत्, गमिष्यत्, नेष्यत् आदि बनेगा। यह प्रत्यय भी परस्मैपदी धातुओं के साथ प्रयोग किया जाता है।

(७) **ष्यमाण**— ष्यत् प्रत्यय के समान ही इसका प्रयोग भी होता है, किन्तु यह केवल आत्मनेपदी धातुओं के साथ किया जाता है। शेष सभी नियम 'ष्यत्' के समान ही होंगे, रूप बनेंगे—

धातु	ष्यतृ		धातु	स्यमान	ष्यतृ
√भू = होना	भविष्यत्	भविष्यन्	√कृ = करना	करिष्यमाणः	करिष्यन्
√गम् = जाना	गमिष्यत्	गमिष्यन्	√दा = देना	दास्यमानः	दास्यन्
√मृ = मरना	मरिष्यत्	मरिष्यन्	√ग्रह् = पकड़ना	ग्रहीष्यमाणः	ग्रहीष्यन्
√हन् = मारना	हनिष्यत्	हनिष्यन्	√नी = ले जाना	नेष्यमाणः	नेष्यन्
आ + √रुह् = चढ़ना	आरोक्ष्यत्	आरोक्ष्यन्	√ज्ञा = जानना	ज्ञास्यामानः	ज्ञास्यन्
प्र + √आप् = प्राप्त करना	प्राप्स्यत्	प्राप्स्यन्	√छिद् = काटना	छेत्स्यमानः	छेत्स्यन्
√लभ् = प्राप्त करना	लप्स्यमानः		√क्रीड् = खेलना	क्रीडिष्यत्	क्रीडिष्यन्

(ई) **पूर्वकालिक क्रिया**— जब एक क्रिया के होने के बाद दूसरी क्रिया आरम्भ होती है, तब पहले सम्पन्न हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। इस प्रकार के वाक्यों में उस क्रिया के बाद 'करके' अथवा 'कर' पद का प्रयोग किया जाता है। जैसे— मैं पढ़कर जाता हूँ- अहं पठित्वा गच्छामि।

प्रस्तुत उदाहरण में 'पढ़ना' क्रिया जाना क्रिया से पूर्व होने तथा उसके साथ 'कर' (पढ़कर) पद का प्रयोग होने से पूर्वकालिक प्रत्यय 'क्त्वा' का प्रयोग किया गया है।

इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए क्त्वा, ल्यप् और णमुल् तीन प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रत्ययों से निर्मित पद अव्यय होते हैं, उनके रूप नहीं चलते। अब हम क्रमशः इनका उल्लेख करेंगे।

(८) **क्त्वा**— (१) यदि धातु से पूर्व उपसर्ग का प्रयोग न हुआ हो तो 'करके' या (कर) की अभिव्यक्ति के लिए 'क्त्वा' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। इसके प्रारम्भ में प्रयुक्त (क्) की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा शेष बचता है— 'त्वा'।

(२) कुछ धातुओं में इस प्रत्यय को जोड़ने पर कोई परिवर्तन नहीं होता है— जैसे— √ स्ना + क्त्वा = स्नात्वा, √ज्ञा + क्त्वा = ज्ञात्वा, √भू + क्त्वा = भूत्वा, √नी + क्त्वा = नीत्वा, √कृ + क्त्वा = कृत्वा, √धृ + क्त्वा = धृत्वा।

(३) कुछ नकारान्त धातुओं के न् का लोप हो जाता है और उसके बाद इस प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे— √हन् + क्त्वा = हत्वा, √मन् + क्त्वा = मत्वा, किन्तु √जन् + क्त्वा = जनित्वा, √खन् + क्त्वा = खनित्वा इसके अपवाद भी हैं।

(४) यदि धातु के प्रारम्भ में य, व, र, ल में से कोई भी प्रयुक्त हुआ हो तो ऐसी धातुओं को क्त्वा प्रत्यय का प्रयोग करने पर क्रमशः य को इ, व को उ, र को ऋ तथा ल को लृ आदेश हो जाता है। जैसे— √यज् + क्त्वा = इष्ट्वा, √वंप् + क्त्वा = उप्त्वा। इस प्रकार के भिन्न रूपों को लाल स्याही से चिह्नित करके स्मरण कर लेना चाहिए।

(९) **ल्यप्**— (१) यदि धातु से पहले उपसर्ग का प्रयोग हुआ हो तो 'करके' अथवा 'कर' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

ल्यप् के प्रारम्भ में प्रयुक्त 'ल्' की 'लशक्वतद्धिते' से तथा अन्तिम 'प्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'य'। जैसे— आ + दा + ल्यप् = आदाय, वि + √नी + ल्यप् = विनीय, अनु + √भू + ल्यप् = अनुभूय।

(२) ल्यप् प्रत्यय से पहले यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो 'य' न जोड़कर 'त्य' जोड़ते हैं,[१] क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रत्यय और धातु के बीच तुक् के आगम का विधान किया गया है। तुक् में उक् की इत् संज्ञा होती है। अतः उसका लोप हो जाता है, शेष बचता है 'त्'।

जैसे— उप + √कृ + ल्यप् = उपकृत्य, निस् + √चि + ल्यप् = निश्चित्य, वि + √जि + ल्यप् = विजित्य, अव + √कृ + ल्यप् = अवकृत्य।

(३) कृत्वा प्रत्यय के समान नकारान्त धातुओं के 'न्' का लोप हो जाता है, किन्तु यहाँ तुक् का भी आगम होता है। जैसे— अव + √मन् + ल्यप् = अवमत्य, वि

१. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६/१/७१)।

+ √तन् + ल्यप् = वितत्य, किन्तु इस क्रम में अपवाद रूप में प्र + √खन् + ल्यप् = प्रखन्य को भी स्मरण रखना चाहिए।

(४) √गम्, √नम्, √यम् और √रम् धातुों के विकल्प से दो रूप बनते हैं— जैसे √गम् + ल्यप् = अवगत्य, अवगम्य।

(५) इसके अतिरिक्त णिजन्त एवं चुरादिगणीय धातुओं की उपधा में ह्रस्व स्वर प्रयुक्त होने पर ल्यप् से पहले अय् का प्रयोग करते हैं।[१] जैसे— प्र + √नम् + अय् + ल्यप् = प्रणम्य्य, किन्तु इसी क्रम में प्रचोर्य (प्र + चुर् →चोर् + ल्यप्) को अपवाद समझना चाहिए।

धातु	क्त्वा	ल्यप्	धातु	क्त्वा	ल्यप्
√कृ = करना	कृत्वा	अपकृत्य	√मन् = मानना	मत्वा	अवमत्य
√क्री = खरीदना	क्रीत्वा	विक्रीय	√सृज् = बनाना	सृष्ट्वा	विसृज्य
√क्षिप् = फेंकना	क्षिप्त्वा	निक्षिप्य	√स्था = ठहरना	स्थित्वा	उत्थाय
√भू = होना	भूत्वा	संभूय	√हस् = हँसना	हसित्वा	विहस्य
√श्रि = आश्रय लेना	श्रित्वा		√हृ = हरण करना	हृत्वा	
√भ्रम् = घूमना	भ्रमित्वा				

(१०) **णमुल्**— (१) एक ही क्रिया को बार-बार करने के भाव की अभिव्यक्ति के लिए क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द अथवा 'णमुल्' प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग करते हैं। इस प्रत्यय से युक्त शब्द का दो बार प्रयोग होता है। जैसे— वह पानी पी-पीकर खाता है- सः जलं पीत्वा पीत्वा अथवा पायं पायं खादति।

(२) यहाँ पीत्वा पीत्वा में 'क्त्वा' प्रत्यय का प्रयोग करके उसका दो बार प्रयोग किया है तथा पायं पायं में णमुल् प्रत्यय का प्रयोग करके उसका दो बार प्रयोग किया है। क्त्वा प्रत्यय के विषय में हम पहले विस्तार से उल्लेख कर चुके हैं। अब हम यहाँ णमुल् प्रत्यय के विषय में लिखेंगे।

(३) णमुल् में केवल 'अम्' बचता है। शेष का लोप हो जाता है। इसीलिए धातु में इस प्रत्यय का प्रयोग करने पर इस प्रकार रूप बनाते हैं— √पा + णमुल् = पायं पायम्, √भुज् + णमुल् = भोजं भोजम्।

(४) इस प्रत्यय से युक्त शब्द अव्यय होते हैं। अतः इनके रूप नहीं चलते हैं। अकारान्त धातु से 'णमुल्' प्रत्यय का प्रयोग होने पर प्रत्यय से पूर्व और धातु के बाद 'य्' का आगम होने से धातु के बाद 'यम्' (य् + अम्) जोड़ते है। जैसे पायं पायम्। √दा + णमुल् = दा + य् + अम् = दायम्, दायम्। इसी प्रकार स्नायं स्नायं में भी समझना चाहिए।

१. ल्यपि लघुपूर्वात् (६/४/५६)।

(५) 'णमुल्' में 'ण्' की इत् संज्ञा होने के कारण धातु के पूर्व स्वर को वृद्धि आदेश हो जाता है। जैसे— √श्रु + णमुल् = श्रावं, √स्मृ + णमुल् = स्मारं स्मारम्।

(उ) **कर्तृवाचक**— ऐसे प्रत्यय जिनका प्रयोग करने पर धातु से कर्तापन का बोध होता हो, कर्तृवाचक कहलाते हैं। इनमें ण्वुल्, तृच्, ल्यु, णिनि, अण्, अच्, क, ट, खच्, क्विप् आदि प्रत्यय आते हैं।

११. **ण्वुल्**— 'वाला' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे— पढ़ने वाला (पाठकः), खाने वाला (भक्षकः), करने वाला (कारकः), पकाने वाला (पाचकः)।

ण्वुल् में ण् तथा ल् की क्रमशः 'चुटू' तथा 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'वु' एवं इसे भी 'अक' आदेश हो जाता है।[1]

णमुल् के समान इसमें भी 'ण्' की इत्संज्ञा होने से धातु के पूर्व स्वर को वृद्धि आदेश हो जाता है। जैसे—√पच् + ण्वुल् = प् + अ → आ (वृद्धि आदेश) + च् + अक = पाचकः, √पठ् + ण्वुल् = पाठक, √हृ + ण्वुल् = हारकः आदि।

१२. **तृच्**— इस प्रत्यय का प्रयोग भी ण्वुल् के समान ही 'वाला' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए होता है। जैसे— √कृ + तृच् = कर्तृ → कर्ता (करने वाला)।

तृच् में 'तृ' शेष बचता है। च् की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। इस प्रत्यय का प्रयोग करने पर ऋकारान्त प्रातिपदिक का निर्माण होता है तथा उसके कर्ता के अनुसार पुल्लिंग, स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग तीनों लिङ्गों में रूप चलते हैं। जैसे— √हृ + तृच् = हर्तृ।

ये रूप पुल्लिंग में कर्ता, कर्तारौ कर्तारः स्त्रीलिङ्ग में दीर्घ ई का प्रयोग करके कर्त्री, नदी के समान तथा नपुंसकलिङ्ग में कर्तृ, कर्तृणी, कर्तृणि इत्यादि रूप चलेंगे।

तृच् प्रत्यय का प्रयोग होने पर धातु के स्वर को गुण आदेश होता है। जैसे कृ धातु के 'ऋ' स्वर को 'अर्' गुण आदेश होकर बना -कर्तृ, यहाँ तृ, 'तृच्' प्रत्यय का है।

इसी प्रकार √पठ् + तृच् = पठितृ, √दा + तृच् = दातृ, √पच् + तृच् = पक्तृ, √गम् + तृच् = गन्तृ, आदि को भी समझना चाहिए।

१३. **ल्यु**— (१) नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि तथा रोचि धातुओं के बाद कर्तृवाचक शब्द बनाने के लिए 'ल्यु' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। ल्यु में 'लशक्वतद्धिते' से ल् की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है 'यु'। 'यु' को भी 'अन' आदेश होता है।

---

१. युवोरनाकौ (७/१/१) यु को अन तथा वु को अक आदेश।

जैसे— √नन्द् + ल्यु (अन) = नन्दनः, √वाश् + ल्यु (अन) = वाशनः, √मद् + ल्यु (अन) = मदनः, √दूष् + ल्यु (अन) = दूषणः, √साध् + ल्यु (अन) = साधनः, √वर्ध् + ल्यु (अन) = वर्धनः, √शोभ् + ल्यु (अन) = शोभनः, √रोच् + ल्यु (अन) = रोचनः। जन + √अर्द् + ल्यु = जनार्दनः, √लू + ल्यु = लवणः।

(२) ल्यु प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन में राम के समान चलते हैं तथा इनसे 'वाला' अर्थ की अभिव्यक्ति होती है—नन्दनः आनन्दित करने वाला।

विशेष– यह भावार्थक ल्युट् प्रत्यय से भिन्न है।

१४. **णिनि**– ग्रह आदि धातुओं से 'वाला' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए, णिनि प्रत्यय का प्रयोग होता है।

णिनि के प्रारम्भ में स्थित 'ण्' की 'चुटू' से तथा अन्त में स्थित 'इ' की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - 'इन्'। जैसे— √ग्रह + इन् (णिनि) = ग्राहिन्।

ण् की इत् संज्ञा होने से धातु के पूर्व स्वर को वृद्धि आदेश होता है। इसीलिए √ग्रह् धातु के ग्र में स्थित स्वर 'अ' को वृद्धि आदेश 'आ' होकर बना - ग्राह् + इन् = ग्राहिन् (गृह्णाति, इति ग्राही)

इस प्रत्यय का प्रयोग करने पर नकारान्त प्रातिपदिक बनता है तथा पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन में ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री, अयाची, अवादी, विषयी, अपराधी इत्यादि शब्द बनते हैं।

णिनि प्रत्यय का प्रयोग करने पर, उत् + √सह् + णिनि = उत्साहिन्, √स्था + युक् + णिनि = स्थायिन्, √मन्त्र + णिनि = मन्त्रिन्, नञ् + √याच + णिनि = अयाचिन्, नञ् + √वद् + णिनि = अवादिन्, विषय + णिनि = विषयिन्, अप + √राध् + णिनि = अपराधिन्, नकारान्त प्रातिपदिक का निर्माण होता है।

१५. **अच्**— पच्, वद्, चल्, पत्, जृ, मृ, क्षम्, सेव्, व्रण्, सृ आदि धातुओं से कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'अच्' प्रत्यय का प्रयोग होता है।

अच् के अन्त में प्रयुक्त च् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है-- 'अ'। जो व्यञ्जनान्त धातु के अन्त में जुड़कर उस वर्ण को पूरा कर देता है। जैसे— √पच् + अच् (अ) = पचः।

अच् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिंग होते हैं। जैसे— √वद् + अच् = वदः, √चल् + अच् = चलः, √पत् + अच् = पतः, √जृ + अच् = जरः, √मृ + अच् = मरः, √क्षम् + अच् = क्षमः, √सेव् + अच् = सेवः, √व्रण् + अच् = व्रणः, √सृज् + अच् = सर्जः।

१६. **क प्रत्यय** (१) जिन धातुओं की उपधा (अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा) में इ, उ, ऋ, लृ, में से कोई भी स्वर प्रयुक्त हुआ हो, उन धातुओं के बाद तथा √ज्ञा

(जानना), √प्रीञ् (प्रसन्न होना) और √कॄ (बिखेरना) धातुओं के बाद कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'क' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।[1]

'क' में क् की 'लशक्वतद्धिते' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'अ'। जैसे— √क्षिप् + क = क्षिपः (फेंकने वाला)।

उपर्युक्त उदाहरण में √क्षिप् धातु के अन्तिम 'अल्' अर्थात् 'प' से पूर्व 'इ' ह्रस्व स्वर प्रयुक्त हुआ है। अतः कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'क' प्रत्यय का प्रयोग करके बना– 'क्षिप', पुनः प्रथमा विभक्ति, एकवचन, पुल्लिंग में रूप हुआ– क्षिपः। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए— √लिख् + क = लिखः, √बुध् + क = बुधः, √कृश् + क = कृशः, √ज्ञा + क = ज्ञः, √प्री + क = प्रियः। √कॄ + क = किरः।

(२) इसके अतिरिक्त आकारान्त धातु तथा ए, ऐ, ओ, औ स्वर वर्णों में समाप्त होने वाली वह धातु जो आकारान्त हो जाती है, यदि उनसे पहले कोई उपसर्ग आया हो तो कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'क' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।[2] जैसे– प्र + √ज्ञा + क = प्रज्ञः (प्रकृष्टेन जानाति, इति) अभि + √ज्ञा + क = अभिज्ञः, वि + √ज्ञा + क = विज्ञः, सु + √ज्ञा + क = सुज्ञः।

(३) धातु आकारान्त प्रयुक्त हो तथा उससे पूर्व कोई उपसर्ग भी न आया हो, किन्तु यदि उससे पूर्व कोई कर्म पद प्रयुक्त हुआ हो[3] तो कर्तृवाचक अर्थ में 'क' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे— गो + छदा + क = गोदः (गां ददाति, इति) सुख + छदा + क = सुखदः, दुःख + छदा + क = दुःखदः।

(४) कोई शब्द धातु से पहले रहने पर आकारान्त धातु से कर्तृवाचक अर्थ में क प्रत्यय का प्रयोग होता है।[4] जैसे— द्वि + √पा + क = द्विपः, सम + √स्था + क = समस्थः, विषम् + √स्था + क = विषमस्थः।

(५) ग्रह धातु में 'गृह्' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'क' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे— √ग्रह् + क = गृहम् (गृह्णाति धान्यादिकमिति)

(१७) **अण्**— यदि धातु से पूर्व कर्मवाची पद प्रयुक्त हुआ हो तो आकारान्त धातुओं से भिन्न धातुओं में कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।[5]

'अण्' में स्थित 'ण्' की 'हलन्त्यम्' से 'इत्' संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा शेष बचता है (अ)। ण् की इत् संज्ञा होने से धातु के आदिस्वर को वृद्धि

---

१. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः (३/१/१३५)।
२. आतश्चोपसर्गे (३/१/१३६)।
३. आतोऽनुपसर्गे कः (३/१/३)।
४. सुपि स्थः (३/२/४)।
५. कर्मण्यण् (३/२/१) अण् कर्मणि च (३/३/१२)।

होती है। आकारान्त धातु को 'क' प्रत्यय होता है, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। जैसे— कुम्भ + √कृ + अण् = कुम्भकारः (कुम्भं करोतीति) भार + √हृ + अण् = भारहारः (भारं हरति इति)।

१८. **ट**— (१) √चर् धातु से पहले यदि अधिकरणवाची पद का प्रयोग हुआ हो तो कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'ट' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।[1]

'ट' में स्थित 'ट्' की 'चुटू' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है– 'अ'। जैसे— कुरुषु चरतीति = कुरुचरः = कुरु + √चर् + ट (अ)।

(२) इसके अतिरिक्त यदि 'चर्' धातु से पहले भिक्षा, सेना और आदाय शब्दों में से किसी भी शब्द का प्रयोग हुआ हो तो भी उक्त अर्थ में 'ट' प्रत्यय का प्रयोग होगा।[2] जैसे— भिक्षा + √चर् + ट (अ) = भिक्षाचरः, सेना + √चर् + ट (अ) = सेनाचरः, आदाय + √चर् + ट (अ) = आदायचरः।

(३) यदि √सृ धातु के पहले पुरः, अग्र, अग्रतः अथवा अग्रे पदों का प्रयोग हुआ हो तो उक्त अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'ट' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं— जैसे— पुरः + √सृ + ट = पुरस्सरः, अग्र + √सृ + ट = अग्रसरः, अग्रतः + √सृ + ट = अग्रतस्सरः, अग्रे + √सृ + ट = अग्रेसरः।

(४) यदि √कृ धातु से पहले दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्कर, किं, बहु, लिपि, चित्र, क्षेत्र, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तृ, संख्यावाचक शब्द, जङ्घा, बाहु, अहः, यत्, तत्, धनुष्, अरुष् आदि शब्द कर्म रूप में प्रयुक्त हों तो कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये 'ट' प्रत्यय का प्रयोग होता है, अण नहीं। यह नियम वस्तुतः 'अण्' का अपवाद है।

जैसे— दिवा + √कृ + ट = दिवाकरः, विभा + √कृ + ट = विभाकरः, निशा + √कृ + ट = निशाकरः, बहु + √कृ + ट = बहुकरः, एक + √कृ + ट = एककरः, धनुष् + √कृ + ट = धनुष्करः, अरुष् + √कृ + ट = अरुष्करः। यत् + √कृ + ट = यत्करः, तत् + √कृ + ट = तत्करः।

(५) इसी प्रकार √कृ धातु से पहले कर्म का योग होने तथा 'हेतु', आदत, अथवा अनुकूलता अर्थ की अभिव्यक्ति कराने के लिए अण् का प्रयोग न करके 'ट' प्रत्यय का ही प्रयोग करते हैं। यह नियम भी अण् का अपवाद है।

जैसे— यशस् + √कृ + ट + ङीप् = यशस्करी (विद्या) यशस्करोतीति। श्राद्धं करोतीति (श्राद्ध करने की आदत वाला) श्राद्ध + √कृ + ट = श्राद्धकरः। वचनं करोतीति (वचनों के अनुकूल कार्य करने वाला) वचन + √कृ + ट = वचनकरः।

१९. **खच्**— (१) यदि प्रिय अथवा वश शब्दों का √वद् धातु से पहले कर्म के रूप में प्रयोग हुआ हो तो कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'खच्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

---

१. चरेष्टः (३/२/१६)।
२. भिक्षासेनादायेषु च (३/२/१७)।

खच् के प्रारम्भ में स्थित 'ख्' की 'लशक्वतद्धिते' से तथा अन्तिम च् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - 'अ'।

जैसे— प्रिय + मुक् (म्) आगम + √वद् + खच् (अ) = प्रियंवदः (प्रियं वदतीति)। वश + मुक् (म्) आगम + √वद् + खच् (अ) = वशंवदः।

(२) यदि भृ, तॄ, वृ, जि, धृ, सह्, तप्, दम् और गम् धातुओं से पहले कोई संज्ञा शब्द कर्म के रूप में प्रयुक्त हुआ हो तो कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए खच् (अ) प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे—

विश्वं बिभर्ति, इति	-विश्व + म् + √भृ + खच् (अ) + टाप्	= विश्वम्भरा
पतिं वरतीति,	-पति + म् + √वृ + खच् (अ) + टाप्	= पतिंवरा
रथं तरतीति, इति	-रथ+ म् + √तृ + खच् (अ)	=रथन्तरम् (साम का नाम)
शत्रुं जयति, इति	- शत्रु + म् + √जि + खच् (अ)	= शत्रुंजयः
युगं धरति, इति	- युग + म् + √धृ + खच् (अ)	= युगन्धरः
अरिं दमयति, इति	- अरि + म् + √दम् + खच् (अ)	= अरिन्दमः
शत्रुं सहते, इति	- शत्रु + म् + √सह् + खच् (अ)	= शत्रुंसहः
सुतं गमयति, इति	- सुत + म् + √गम् + खच् (अ)	= सुतंगमः

(३) यदि √कृ धातु से पहले क्षेम, प्रिय और मद्र शब्दों का प्रयोग कर्म के रूप में हुआ हो तो कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए खच् और अण् दोनों प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

जैसे— क्षेम + म् + √कृ + खच् (अ) = क्षेमङ्करः

प्रिय + म् + √कृ + खच् (अ) = प्रियङ्करः

मद्र + म् + √कृ + खच् (अ) = मद्रङ्करः

अण् प्रत्यय होने पर क्रमशः क्षेमकारः, प्रियकारः और मद्रकारः रूप बनेंगे।

विशेष— किन्तु जब 'क्षेम' पद में कर्म की विवक्षा नहीं होगी तब 'अच्' प्रत्यय होकर क्षेमस्य करः, इति, क्षेम + √कृ + अच् = क्षेमकरः बनेगा।

२०. **क्विप्** (१)—यदि √सद् (बैठना), √सू (उत्पन्न करना), √द्विष् (शत्रुता करना), √द्रुह् (द्रोह करना), √दुह् (दुहना), √युज् (जोड़ना), √विद् (जानना), √भिद् (भेदना), √छिद् (काटना), √जि (जीतना), √नी (ले जाना) और √राज् (सुशोभित होना) धातुओं से पहले उपसर्ग आए अथवा न आए, दोनों ही स्थितियों में कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'क्विप्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। इस प्रत्यय का कुछ भी शेष नहीं बचता है, सब कुछ लोप हो जाता है।

द्यु + √सद् + क्विप् = द्युसत्, प्र + √सू + क्विप् = प्रसूः, √द्विष् + क्विप् = द्विट्, मित्र + √द्रुह् + क्विप् = मित्रध्रुक्, गो + √दुह् + क्विप् = गोधुक्, अश्व + √युज् + क्विप् = अश्वयुक्, वेद + √विद् + क्विप् = वेदवित्, गोत्र + √भिद् + क्विप् = गोत्रभित्, पक्ष + √छिद् + क्विप् = पक्षच्छित्, इन्द्र + √जि + क्विप् = इन्द्रजित्, सम् + √राज् + क्विप् = सम्राट्।

(२) √कृ धातु से पहले सु, कर्म, पाप, मन्त्र तथा पुण्य शब्दों का प्रयोग कर्म के रूप में होने पर भी क्विप् प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे—

सु + √कृ + क्विप् = सुकृत्, कर्म + √कृ + क्विप् = कर्मकृत्, पाप + √कृ + क्विप् = पापकृत्, मन्त्र + √कृ + क्विप् = मन्त्रकृत्, पुण्य + √कृ + क्विप् = पुण्यकृत्।

(३) √हन् धातु से पहले ब्रह्म, भ्रूण तथा वृत्र शब्दों के कर्म रूप में प्रयुक्त होने पर कर्तृवाचक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए क्विप् प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे— ब्रह्म + √हन् + क्विप् = ब्रह्महा, भ्रूण + √हन् + क्विप् = भ्रूणहा, वृत्र + √हन् + क्विप् = वृत्रहा।

(ऊ) **भावार्थक—** धातु के अर्थ की सिद्धि होने पर भाव कहा जाता है तथा भाव की अभिव्यक्ति के लिए जिन प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। उन्हें भावार्थक प्रत्यय कहते हैं। इनमें प्रमुख हैं– घञ्, ल्युट्, क्तिन्, अच्, अप्, नङ् और युच्। अब हम इनका क्रमशः विवेचन करेंगे।

२१. **घञ्—** धातु के अर्थ को बताने के लिए तथा कर्ता को छोड़कर अन्य कारक के अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'घञ्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

(१) घञ् में 'घ' और 'ञ्' की क्रमशः 'लशक्वतद्धिते' तथा 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - 'अ' 'ञ्' इत् होने के कारण धातु की उपधा के अ को आ, इ को ए, उ को ओ तथा ऋ को अर् गुण आदेश हो जाता है तथा धातु के अन्तिम इ ई, उ ऊ और ऋ ॠ को वृद्धि आदेश (ऐ, औ और आर्) हो जाते हैं। घञ् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिंग होते हैं।

घ् इत् होने के कारण धातु के च् को क् तथा ज् को ग् आदेश हो जाता है।

जैसे— √चि + घञ् = कायः, √नि + घञ् = नायः, प्र + √स्तु + घञ् = प्रस्तावः, √भू + घञ् = भावः, √पठ् + घञ् = पाठः, √लिख् + घञ् = लेखः, √रुध् + घञ् = रोधः, वि + √रुध् + घञ् = विरोधः, अव + √तृ + घञ् = अवतारः, उप + √कृ + घञ् = उपकारः, वि + √कृ + घञ् = विकारः, प्र + √कृ + घञ् = प्रकारः, √पच् + घञ् = पाकः, √त्यज् + घञ् = त्यागः, √शुच् + घञ् = शोकः, √भुज् + घञ् = भोगः, √युज् + घञ् = योगः, √रुज् + घञ् = रोगः, √भज् + घञ् = भागः, √सिच् + घञ् = सेकः।

२२. **ल्युट्—** धातुओं में नपुंसकलिङ्ग की भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए 'क्त' और 'ल्युट्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

ल्युट् के प्रारम्भ में स्थित 'ल्' की 'लशक्वतद्धिते' से तथा अन्तिम 'ट' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा अवशिष्ट 'यु' को 'युवोरनाकौ' सूत्र से 'अन' आदेश होता है। यहाँ ध्यान रहे 'न' हलन्त नहीं होता।

जैसे— √पठ् + ल्युट् (अन) = पठनम्, √हस् + ल्युट् (अन) = हसनम्, √गम् + ल्युट् (अन) = गमनम्, √क्रीड् + ल्युट् (अन) = क्रीडनम्, √चल् + ल्युट्(अन) = चलनम्, √धाव् + ल्युट् (अन) = धावनम्, √वद् + ल्युट् (अन) = वदनम्, √लिख् + ल्युट् (अन) = लेखनम्, √कृ + ल्युट् (अन) = करणम्, √दृश् + ल्युट् (अन) = दर्शनम्।

२३. **क्तिन्**— स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातुओं में 'क्तिन्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

'क्तिन्' में 'क्' और 'न्' की क्रमशः 'लशक्वतद्धिते' तथा 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'ति'। क्तिन् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप 'मति' के समान चलते हैं।

जैसे— √कृ + क्तिन् = कृतिः, √धृ + क्तिन् = धृतिः, √चि + क्तिन् = चितिः, √स्तु + क्तिन् = स्तुतिः, √गा + क्तिन् = गीतिः, √वच् + क्तिन् = उक्तिः, √ हृ + क्तिन् = हृतिः, √प्री + क्तिन् = प्रीतिः, √ख्या + क्तिन् = ख्यातिः, √सुप् + क्तिन् = सुप्तिः।

२४. **अच्**— ह्रस्व इ तथा दीर्घ ईकारान्त धातुओं से भाववाचक शब्द बनाने के लिए 'अच्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। 'अच्' में 'च्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है 'अ'।

भाववाचक 'अच्' प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिंग और नपुंकलिङ्ग दोनों होते हैं, जैसे— √जि + अच् = जयः (पुल्लिंग), √नी + अच् = नयः (पुल्लिंग), √भी + अच् = भयम् (नपुंसकलिङ्ग)

२५. **अप्**— (१)ऋकारान्त और उकारान्त धातुओं में भाववाचक शब्द बनान के लिए 'अप्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। अप् के अन्तिम् 'प्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष 'अ' बचता है। अप् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिंग होते हैं। जैसे—

√कॄ + अप् = करः (बिखेरना), √गॄ+ अप् = गरः (विष)
√यु + अप् = यवः (जोड़ना), √लू + अप् = लवः (काटना)
√स्तु + अप् = स्तवः (स्तुति), √पू + अप् = पवः (पवित्र करना)
√भू + अप् = भवः (होना)

(२) √ग्रह, √वृ, √दृ, निस् +√चि, √गम्, √वश् और √रण् धातुओं में भी भावार्थक शब्द बनाने के लिए 'अप्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं— जैसे— √ग्रह् + अप् = ग्रहः, √वृ + अप् = वरः, √दृ + अप् = दरः निस् + √चि + अप् = निश्चयः, √गम् + अप् = गमः, √वश् + अप् = वशः, √रण् + अप् = रणः।

२६. **नङ्**— यज्, याच्, यत्, विच्छ् (चमकना), प्रच्छ् और रक्ष् धातुओं में भाववाचक शब्द बनाने के लिए 'नङ्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। 'नङ्' के 'ङ' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष 'न' बचता है। जैसे— √यज् + नङ् = यज्ञः, √याच् + नङ् = याच्ञा, √यत् + नङ् = यत्नः, √विच्छ् + नङ् = विश्नः, √प्रच्छ् + नङ् = प्रश्नः, √रक्ष् + नङ् = रक्ष्णः।

२७. **युच्**— प्रेरणार्थक धातुओं में एवं आस्, श्रन्थ्, घट्ट, वन्द्, विद् धातुओं से भावार्थक शब्द बनाने के लिए 'युच्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। इस प्रत्यय से युक्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। 'युच्' के अन्तिम च् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा 'युवोरनाकौ' से शेष 'यु' को 'अन' आदेश हो जाता है। जैसे— √कृ + णिच् + युच् + टाप् = कारणा, √हृ + णिच् + युच् + टाप् = हारणा, √आस् +युच् + टाप् = आसना, √वन्द् + युच् + टाप् = वन्दना, √विद् + युच् + टाप् = वेदना।

(ए) **शील-धर्म-साधुकारिता वाचक**— किसी भी धातु के बाद शील, धर्म तथा भलीप्रकार सम्पादन करना इन तीनों में से किसी भी एक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए षाकन्, इष्णुच् तथा आलुच् प्रत्ययों का प्रयोग करते हैं।

२८. **षाकन्**— √जल्प्, √भिक्ष्, √कुट्ट (अलग करना, काटना) √लुण्ट् (लूटना) तथा √वृ (वरण करना) धातुओं में शील, धर्म तथा साधुकारिता अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'षाकन्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

'षाकन्' के प्रारम्भ में स्थित 'ष्' की 'षःप्रत्ययस्य' सूत्र से तथा अन्तिम 'न्' की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - 'आक'। जैसे—

√जल्प् + षाकन् (आक) = जल्पाकः, (बहुत बोलने वाला), √भिक्ष् + षाकन् (आक) = भिक्षाकः (भिक्षा मांगने वाला), √कुट्ट + षाकन् (आक) = कुट्टाकः, √लुण्ट् + षाकन् (आक) = लुण्टाकः, √वृ + षाकन् (आक) = वराकः (बेचारा)।

२९. **इष्णुच्**— अलं + √कृ, निर् + आ + √कृ, प्र + √जन्, उत् + √पच्, उत् + √पत्, उत् + √मद्, रुच्, अप + √त्रप्, √वृत्, √वृध्, √सह् और √चर् धातुओं के पश्चात् 'शील', 'धर्म' और 'भलीप्रकार' सम्पादन अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'इष्णुच्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

इष्णुच् के अन्तिम 'च्' की 'हलन्त्यम्' से 'इत्' संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'इष्णु'। जैसे—

अलम् + √कृ + इष्णुच् = अलङ्करिष्णुः, निर् + आ + √कृ + इष्णुच् = निराकरिष्णुः (अपमान करने वाला), प्र + √जन् + इष्णुच् = प्रजनिष्णुः, उत् + √पच् + इष्णुच् = उत्पचिष्णुः, उत् + √पत् + इष्णुच् = उत्पतिष्णुः, उत् + √मद् + इष्णुच् = उन्मदिष्णुः, √रुच् + इष्णुच् = रोचिष्णुः, अप + √त्रप् + इष्णुच् = अपत्रपिष्णुः, √वृत् + इष्णुच् = वर्तिष्णुः, √वृध् + इष्णुच् = वर्धिष्णुः, √सह् + इष्णुच् = सहिष्णुः, √चर् + इष्णुच् = चरिष्णुः (भ्रमणशील)।

३०. **आलुच्**— √स्पृह, √गृह्, √पत्, √दय्, √शी (सोना) धातुओं के बाद एवं निद्रा, तन्द्रा, श्रद्धा शब्दों के बाद उक्त अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए 'आलुच्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

'आलुच्' के अन्तिम 'च्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'आलु'। जैसे— स्पृहयालुः, दयालुः, गृहयालुः, पतयालुः, शयालुः, निद्रालुः, तन्द्रालुः, श्रद्धालुः आदि।

अब हम छात्रों की सुविधा के लिए सर्वाधिक उपयोगी धातुओं के कृदन्त प्रत्ययों से युक्त रूप दे रहे हैं—

धातु	क्त	क्तवतु	शतृ	क्त्वा	ल्यप्	तुमुन्	तव्यत्	ल्युट्	घञ्	तृच्
अस्–होना	भूतः	भूतवान्	सन्	भूत्वा	संभूय	भवितुम्	भवितव्यम्	भवनम्	भावः	भोक्ता
आप्–प्राप्त करना	आप्तः	आप्तवान्	आप्नुवन्	आप्त्वा	प्राप्य	आप्तुम्	आप्तव्यम्	आपनम्	आपः	आप्ता
ईक्ष्–देखना	ईक्षितः	ईक्षितवान्		ईक्षित्वा	समीक्ष्य	ईक्षितुम्	ईक्षितव्यम्	ईक्षणम्	-	ईक्षिता
कथ्–कहना	कथितः	कथितवान्	कथयन्	कथयित्वा	संकथ्य	कथयितुम्	कथयितव्यम्	कथनम्	-	कथयिता
कुप्–क्रुद्ध होना	कुपितः	कुपितवान्	कुप्यन्	कोपित्वा	प्रकुप्य	कोपितुम्	कोपितव्यम्	कोपनम्	कोपः	कोपिता
कृ–करना	कृतः	कृतवान्	कुर्वन्	कृत्वा	उपकृत्य	कर्तुम्	कर्तव्यम्	करणम्	कारः	कर्ता
क्री–खरीदना	क्रीतः	क्रीतवान्	क्रीणन्	क्रीत्वा	विक्रीय	क्रेतुम्	क्रेतव्यम्	क्रयणम्	-	क्रेता
क्षिप्–फेंकना	क्षिप्तः	क्षिप्तवान्	क्षिपन्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य	क्षेप्तुम्	क्षेप्तव्यम्	क्षेपणम्	क्षेपः	क्षेप्ता
गम्–जाना	गतः	गतवान्	गच्छन्	गत्वा	आगत्य	गन्तुम्	गन्तव्यम्	गमनम्	गतः	गन्ता
ग्रह्–पकड़ना	गृहीतः	गृहीतवान्	गृह्णन्	गृहीत्वा	संगृह्य	ग्रहीतुम्	ग्रहीतव्यम्	ग्रहणम्	ग्राहः	ग्रहीता
घ्रा–सूंघना	घ्रातः	घ्रातवान्	जिघ्रन्	घ्रात्वा	आघ्राय	घ्रातुम्	घ्रातव्यम्	घ्राणम्	-	घ्राता
चि–चुनना	चितः	चितवान्	चिन्वन्	चित्वा	संचित्य	चेतुम्	चेतव्यम्	चयनम्	कायः	चेता
चिन्त्–सोचना	चिन्तितः	चिन्तितवान्	चिन्तयन्	चिन्तयित्वा	संचिन्त्य	चिन्तयितुम्	चिन्तयितव्यम्	चिन्तनम्	-	चिन्तयिता

Continue...

चुर्–चुराना	चोरितः	चोरितवान्	चोरयन्	चोरयित्वा	संचोर्य	चोरयितुम्	चोरयितव्यम्	चोरणम्	चोरः	चोरयिता
छिद्–काटना	छिन्नः	छिन्नवान्	छिन्दन्	छित्वा	संछिद्य	छेत्तुम्	छेत्तव्यम्	छेदनम्	-	छेत्ता
जन्–पैदा होना	जातः	जातवान्		जनित्वा		जनितुम्	जनितव्यम्	जननम्	-	जनिता
जि-जीतना	जितः	जितवान्	जयन्	जित्वा	विजित्य	जेतुम्	जेतव्यम्	जयनम्	-	जेता
ज्ञा–जानना	ज्ञातः	ज्ञातवान्	जानन्	ज्ञात्वा	विज्ञाय	ज्ञातुम्	ज्ञातव्यम्	ज्ञानम्	-	ज्ञाता
त्यज्–छोड़ना	त्यक्तः	त्यक्तवान्	त्यजन्	त्यक्त्वा	परित्यज्य	त्यक्तुम्	त्यक्तव्यम्	त्यजनम्	त्यागः	त्यक्ता
दा–देना	दत्तः	दत्तवान्	ददन्	दत्त्वा	आदाय	दातुम्	दातव्यम्	दानम्	दायः	दाता
दुह्–दुहना	दुग्धः	दुग्धवान्	दुहन्	दुग्ध्वा	संदुह्य	दोग्धुम्	दोग्धव्यम्	दोहनम्	दोहः	दोग्धा
नम्–झुकना	नतः	नतवान्	नमन्	नत्वा	प्रणम्य	नन्तुम्	नन्तव्यम्	नमनम्	-	नन्ता
नृत्–नाचना	नृत्तः	नृत्तवान्	नृत्यन्	नर्तित्वा	प्रनृत्य	नर्तितुम्	नर्तितव्यम्	नर्तनम्	-	नर्तिता
पच्–पकाना	पक्वः	पक्ववान्	पचन्	पक्त्वा	संपच्य	पक्तुम्	पक्तव्यम्	पचनम्	पाकः	पक्ता
पठ्–पढ़ना	पठितः	पठितवान्	पठन्	पठित्वा	संपठ्य	पठितुम्	पठितव्यम्	पठन्	पाठः	पठिता
पा–पीना	पीतः	पीतवान्	पिबन्	पीत्वा	निपीय	पातुम्	पातव्यम्	पानम्	-	पाता
प्रच्छ्–पूछना	पृष्टः	पृष्टवान्	पृच्छन्	पृष्ट्वा	संपृच्छ्य	प्रष्टुम्	प्रष्टव्यम्	प्रच्छनम्	-	प्रष्टा

Continue...

ब्रू–बोलना	उक्तः	उक्तवान्	ब्रुवन्	उक्त्वा	प्रोच्य	वक्तुम्	वक्तव्यम्	वचनम्	-	वक्ता
भक्ष्–खाना	भक्षितः	भक्षितवान्	भक्षयन्	भक्षयित्वा	संभक्ष्य	भक्षयितुम्	भक्षयित्व्यम्	भक्षणम्	-	भक्षयिता
भू - होना	भूतः	भूतवान्	-	भूत्वा	संभूय	भवितुम्	भवितव्यम्	भवनम्	भावः	भविता
भ्रम् - घूमना	भ्रान्तः	भ्रान्तवान्	भ्राम्यन्	भ्रान्त्वा	संभ्रम्य	भ्रमितुम्	भ्रमितव्यम्	भ्रमणम्	-	भ्रमिता
मुच् - छोड़ना	मुक्तः	मुक्तवान्	मुञ्चन्	मुक्त्वा	विमुच्य	मोक्तुम्	मोक्तव्यम्	मोचनम्	-	मोक्ता
याच्–मांगना	याचितः	याचितवान्	-	याचित्वा	प्रयाच्य	याचितुम्	याचितव्यम्	याचनम्	-	याचिता
युज्–मिलाना	युक्तः	युक्तवान्	युञ्जन्	युक्त्वा	प्रयुज्य	योक्तुम्	योक्तव्यम्	योजनम्	योगः	योक्ता
रक्ष्–रक्षा करना	रक्षितः	रक्षितवान्	रक्षन्	रक्षित्वा	संरक्ष्य	रक्षितुम्	रक्षितव्यम्	रक्षणम्	-	रक्षिता
रुद्–रोना	रुदितः	रुदितवान्	रुदन्	रुदित्वा	प्ररुद्य	रोदितुम्	रोदितव्यम्	रोदनम्	-	रोदिता
लभ्–पाना	लब्धः	लब्धवान्	-	लब्ध्वा	उपलभ्य	लब्धुम्	लब्धव्यम्	लभनम्	लाभः	लब्धा
लिख्–लिखना	लिखितः	लिखितवान्	लिखन्	लिखित्वा	आलिख्य	लेखितुम्	लेखितव्यम्	लेखनम्	लेखः	लेखिता
वद्–बोलना	उदितः	उदितवान्	वदन्	उदित्वा	अनूद्य	वदितुम्	वदितव्यम्	वदनम्	वादः	वदिता
वस्–रहना	उषितः	उषितवान्	वसन्	उषित्वा	प्रोष्य	वस्तुम्	वस्तव्यम्	वसनम्	वासः	वस्ता
शी–सोना	शयितः	शयितवान्	-	शयित्वा	संशय्य	शयितुम्	शयितव्यम्	शयनम्	-	शयिता

Continue...

श्रु–सुनना	श्रुतः	श्रुतवान्	शृण्वन्	श्रुत्वा	संश्रुत्य	श्रोतुम्	श्रोतव्यम्	श्रवणम्	श्रावः	श्रोता
सेव्–सेवा करना	सेवितः	सेवितवान्		सेवित्वा	संसेव्य	सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेवनम्		सेविता
स्तु–स्तुति करना	स्तुतः	स्तुतवान्	स्तुवन्	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य	स्तोतुम्	स्तोतव्यम्	स्तवनम्	-	स्तोता
स्था–ठहरना	स्थितः	स्थितवान्	तिष्ठन्	स्थित्वा	प्रस्थाय	स्थातुम्	स्थातव्यम्	स्थानम्	-	स्थाता
स्मृ–स्मरण करना	स्मृतः	स्मृतवान्	स्मरन्	स्मृत्वा	विस्मृत्य	स्मर्तुम्	स्मर्तव्यम्	स्मरणम्	-	स्मर्ता
स्वप्–सोना	सुप्तः	सुप्तवान्	स्वपन्	सुप्त्वा	संसुप्य	स्वप्तुम्	स्वप्तव्यम्	स्वपनम्	स्वापः	स्वप्ता
हन्–मारना	हत	हतवान्	हनन्	हत्वा	निहत्य	हन्तुम्	हन्तव्यम्	हननम्	-	हन्ता
हस्–हँसना	हसितः	हसितवान्	हसन्	हसित्वा	विहस्य	हसितुम्	हसितव्यम्	हसनम्	हासः	हसिता
हु–हवन करना	हुतः	हुतवान्	जुह्वन्	हुत्वा	आहुत्य	होतुम्	होतव्यम्	हवनम्	-	होता
हृ–हरण करना	हृतः	हृतवान्	हरन्	हृत्वा	प्रहृत्य	हर्तुम्	हर्तव्यम्	हरणम्	हारः	हर्ता

११. तद्धित प्रत्यय

यहाँ तक हमने कृदन्त प्रत्ययों का संक्षेप में उल्लेख किया। अब हम तद्धित प्रत्ययों का विवेचन करेंगे। आपने देखा कि कृदन्त् प्रत्यय धातुओं के साथ जुड़कर ही शब्दों का निर्माण करते हैं, किन्तु तद्धित प्रत्यय, संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण आदि में जोड़कर नये शब्दों को बनाते हैं।

जैसे— दितेः अपत्यम् = दैत्यः (दिति + ण्य)।

यहाँ 'दिति' संज्ञावाचक शब्द से अपत्यार्थ (सन्तान के अर्थ) में 'ण्य' तद्धित प्रत्यय का प्रयोग करके बना - दैत्यः, जिसका अर्थ होगा— दिति की सन्तान।

तद्धित शब्द का अर्थ है— तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः, इति तद्धिताः अर्थात् ऐसे प्रत्यय जिनका भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग होता है।

पाणिनीय व्याकरण में इनकी संख्या बहुत है, किन्तु हम यहाँ अत्यन्त प्रमुख तद्धित प्रत्ययों का आर्थिक वर्गीकरण के आधार पर वर्णन करेंगे—

(क) **अपत्यार्थक** - अण्, इञ्, ढक्, यत्।

(ख) **मत्वर्थीय** - मतुप्, इनि, ठन्, इतच्।

(ग) **भावार्थक एवं कर्मार्थक** - त्व, तल्, इमनिच्, ष्यञ्, अञ्, वति, कन्।

(घ) **समूहार्थक** - अण्, तल्।

(ङ) **सम्बन्धार्थक एवं विकारार्थक** - अण्, ठक्, अञ्, मयट्।

(च) **परिमाणार्थक एवं संख्यार्थक** - वतुप्, मात्रच्, डति, तयप्, अयच्, अण्।

(छ) **हितार्थक** - छ, यत्।

(ज) **क्रिया विशेषणार्थक** - तसिल्, त्रल्, दा, दानीम्, थाल्, कृत्वसुच्, धा।

(झ) **शैषिक** -अण्, खञ्, छ, कन्, च्वि।

किन्तु इससे पूर्व तद्धित प्रत्ययों का प्रयोग करने पर होने वाली व्याकरण सम्बन्धी प्रक्रिया का उल्लेख करना उचित होगा, जिसे समझना छात्रों के लिए उपयोगी ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है—

नियम १— यदि किसी प्रत्यय में 'क्', 'ञ्' अथवा 'ण्' की इत् संज्ञा हुई हो तो जिस शब्द से यह प्रत्यय लगाया गया है, उसके आदि स्वर को वृद्धि आदेश हो जाता है।[1]

जैसे— गणपति + अण् = ग् + अ → आ (वृद्धि आदेश) = गाणपतम्।

वर्षा + ठक् (इक) = व् + अ → आ (वृद्धि आदेश) = वार्षिकः।

दशरथ + इञ् = द् + अ→ आ (वृद्धि आदेश) = दाशरथिः।

१. तद्धितेष्वचामादेः (७/२/११७) किति च (७/२/११८)।

नियम २ — स्वर अथवा 'य' से आरम्भ होने वाले प्रत्यय यदि प्रयुक्त हुए हों तो उन प्रत्ययों से पहले, शब्दों के अन्त में स्थित, अ, आ, इ, ई का लोप हो जाता है तथा उ या ऊ को गुण 'ओ' आदेश हो जाता है।

जैसे— दक्ष + इञ् = द (अ को आ वृद्धि आदेश) = दाक्ष् + अ(लोप) + इ = दाक्षिः।

शिशु + अण् = श् + इ → ऐ (वृद्धि) = शैश् + उ को ओ गुण, पुनः अव् + अ = शैशवम्।

नियम ३— यदि शब्द व्यञ्जन से प्रारम्भ हुआ हो तथा अन्त में 'न्' प्रयुक्त हुआ हो तो प्रायः 'न्' का लोप हो जाता है। जैसे—

राजन् + वुञ् = राज् (अलोप, न् लोप) + वु को अक[1] = राजकम्

नियम ४— प्रत्यय में प्रयुक्त ठ को इक, यु को अन, वु को अक, ढ को एय्, छ को ईय्, घ को इय्, फ को आय, ख को ईन आदेश हो जाता है।

नियम ५— प्रत्यय के अन्त में प्रयुक्त व्यञ्जन वर्ण (हल्) 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है।

(क) अपत्यार्थक

(१) **अण् प्रत्यय**— अपत्य से अभिप्राय सन्तान (पुत्र अथवा पुत्री) से है। यदि संज्ञा शब्दों में पुरुष या स्त्री की सन्तान अर्थ का बोध कराना हो तो ऐसे अश्वपति गण में पठित (अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति) शब्दों में 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

'अण्' में ण् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'अ'। शब्द के आदि स्वर को वृद्धि तथा अन्तिम स्वर का लोप होकर इस प्रकार शब्द-निर्माण होता है। जैसे—

अश्वपति + अण् = आश्वपत् + अ (ण् का लोप) = आश्वपतम्।

इसी प्रकार गाणपतम्, शातपतम्, धानपतम्, पाशुपतम् आदि भी बनते हैं।

(२) **इञ् प्रत्यय**— अकारान्त शब्द के बाद 'अपत्यार्थ' की अभिव्यक्ति के लिए 'इञ्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। 'इञ्' के 'ञ्' की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - 'इ'। 'ञ्' इत् होने से गुण, वृद्धि आदि के नियम अण् के समान ही होते हैं। जैसे—

दशरथ + इञ् = दाशरथिः (दशरथ की संतान) दशरथस्य अपत्यं पुमान्।

दक्ष + इञ् = दाक्षिः (दक्ष की संतान) दक्षस्य अपत्यं पुमान्।

१. युवोरनाकौ सूत्र से।

(३) **ढक् प्रत्यय**— दो या दो से अधिक स्वरों से युक्त प्रातिपदिकों से, जिनके अन्त में स्त्री प्रत्यय प्रयुक्त हुआ हो[1] अथवा इकारान्त हो, अपत्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'ढक्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। 'ढक्' में क् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा 'ढ' को 'एय्' आदेश होता है। प्रत्यय के कित् होने (क् इत्) से अण् के समान ही गुण और वृद्धि आदेश होते हैं। जैसे—

(i) विनता + ढक् = वैनतेयः (विनता का पुत्र) (इ को वृद्धि ऐ, आ लोप)

(ii) दत्ता + ढक् = दात्तेयः (दत्ता का पुत्र) (द के अ को वृद्धि आ, त्ता के आ का लोप)

(iii) अत्रि + ढक् = आत्रेय (अत्रि का पुत्र) (अ को आ वृद्धि, त्रि के इ का लोप)

(4) **यत् प्रत्यय**— यह कृदन्त 'यत्' से भिन्न है। राजन् और श्वसुर शब्दों के बाद अपत्यार्थ में इस प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। 'यत्' के त् की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है 'य'। जैसे—

(i) राजन् + यत् = राजन्यः (राजवंश वाले, क्षत्रिय)

(ii) श्वसुर + यत् = श्वशुर्यः (साला)

(ख) मत्वर्थीय

(५) **मतुप् प्रत्यय**— इसके पास है अथवा इसमें स्थित है, इन अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए 'मतुप्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः इस प्रत्यय से हिन्दी अर्थ 'वान्' या 'वाला' की अभिव्यञ्जना होती है।

मतुप् में 'मत्' शेष बचता है, शेष का लोप हो जाता है। जैसे—

(क) गो + मतुप् = गोमत् = गोमान् (पु., प्र.वि., ए.व.) बहुत गायों वाला।

(ख) रूप + मतुप् = रूपवत् = रूपवान् (पु., प्र.वि., ए.व.) सुन्दर रूप वाला।

(ग) भूमि + मतुप् = भूमिमत् = भूमिमान् (पु., प्र.वि., ए.व.) पर्याप्त भूमि वाला।

विशेष— यदि मतुप् प्रत्यय से पूर्व झय् (वर्गों के १, २, ३, ४ वर्ण) प्रत्याहार के वर्ण वाला म्, अ या आकारान्त शब्द प्रयुक्त हुआ हो अथवा ऐसा शब्द आया हो जिसकी उपधा (अन्तिम वर्ण से पहला वर्ण) में म्, आ अथवा अ प्रयुक्त हुआ हो तो 'मतुप्' के 'म' के स्थान पर 'व' हो जाता है। जैसे— रूपवत्, यशस्वत्, भास्वत्, तडितवत् आदि। मतुप् प्रायः गुणवाची शब्दों के बाद लगता है। जैसे— रसवान्, रूपवान्।

(६) **इनि प्रत्यय**— अकारान्त शब्दों के बाद इसी अर्थ की अभिव्यक्ति हेतु 'इनि' प्रत्यय का भी प्रयोग किया जाता है।[2] 'इनि' में 'इन्' शेष बचता है। प्रातिपदिक के अन्तिम अकार का लोप होकर नकारान्त प्रातिपदिक बनता है तथा पुल्लिंग में करिन् के समान, स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान रूप चलते हैं। जैसे—

१. स्त्रीभ्यो ढक् (४/१/१२०)।

२. अत इनि ठनौ (५/२/११५)।

(क) क्षीर + इनि = क्षीरिन् = क्षीरी (पु., प्र.वि., ए.व.) (जिसमें नित्य दूध रहता हो)

(ख) दण्ड + इनि = दण्डिन् = दण्डी (पु. प्र.वि., ए.व.) (दण्ड के साथ रहने वाला)

(ग) धन + इनि = धनिन् = धनी (पु., प्र.वि., ए.व.) (पर्याप्त धन वाला)

(७) **ठन् प्रत्यय**— अकारान्त पदों से ही 'मतुप्' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये 'ठन्' प्रत्यय का भी प्रयोग किया जाता है। 'ठन्' के अन्तिम 'न्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा शेष 'ठ' को 'इक' आदेश (ठस्येकः सूत्र से) होता है।

जैसे— (i) दण्ड + ठन् (इक) = दण्ड् (अ लोप) + इक = दण्डिकः (पु.)।

(क) धन + ठन् (इक) = धन् (अ लोप) + इक = धनिकः (पु.)।

(ख) क्षीर + ठन् (इक) = क्षीर् (अ लोप) + इक = क्षीरिकः (पु.)।

(८) **इतच् प्रत्यय**— तारकादि गण में पठित शब्दों (तारका, पुष्प, मंजरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, द्रोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, रोग, पण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, कञ्चुल, शृङ्गार, अंकुर, बकुल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, प्रतिबिम्ब, प्रत्यय, दीक्षा, गर्ज) के बाद 'युक्त' अर्थ में (प्रकट हो गया है, जिसमें) 'इतच्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। इसके तीनों लिंगो में रूप चलते हैं।

'इतच्' में 'च्' की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। शेष बचता है इत। शब्द के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है। जैसे—

(क) तारका + इतच् = तारक् (आ लोप) + इत = तारकितं (नभः)।

(ख) पुष्प + इतच् = पुष्प् (अलोप) + इत = पुष्पितं।

(ग) पिपासा + इतच् = पिपास् (आ लोप) + इत = पिपासितः।

(घ) पण्डा + इतच् = पण्ड् (आ लोप) + इत = पण्डितः।

छात्रों को इसी प्रकार उपर्युक्त शब्दों में भी 'इतच्' प्रत्यय का प्रयोग करके अभ्यास करना चाहिए।

(ग) भावार्थक एवं कर्मार्थक

(९) **त्व** (१०) **तल् प्रत्यय**— किसी शब्द की भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए 'त्व' अथार 'तल्' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। इनमें 'त्व' प्रत्यय से युक्त शब्द सदैव नपुंसकलिङ्ग होते हैं। जबकि 'तल्' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं।

इनमें 'त्व' ज्यों का त्यों रहता है अर्थात् 'त्व' ही बचता है, किन्तु तल् का 'त' शेष बचता है। 'ल्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है।

स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में तल् प्रत्ययान्त शब्दों में 'टाप्' प्रत्यय होकर बनेगा– 'ता' अर्थात् सामान्यतया शब्द के बाद 'ता' जोड़ने पर तल् प्रत्यययुक्त शब्द बन जाता है। जैसे—

(क) गो + त्व	= गोत्वम्, गो + तल्	= गोत + टाप्	= गोता।
(ख) शिशु + त्व	= शिशुत्वम्, शिशु + तल्	= शिशुत + टाप्	= शिशुता।
(ग) गुरु + त्व	= गुरुत्वम्, गुरु + तल्	= गुरुत + टाप्	= गुरुता।
(घ) लघु + त्व	= लघुत्वम्, लघु + तल्	= लघुत + टाप्	= लघुता।
(ङ) महत् + त्व	= महत्त्वम्, महत् + तल्	= महत्त + टाप्	= महत्ता।

(११) **इमनिच् प्रत्यय** - पृथुगण में पठित शब्दों (पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, उरु, गुरु, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र) के बाद भावार्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'इमनिच्' प्रत्यय का प्रयोग विकल्प से करते हैं[1], पक्ष में अण् आदि भी होंगे।

इमनिच् में 'इमन्' शेष बचता है। जिस शब्द में इस प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। उसकी 'टि' का लोप हो जाता है।[2] आरम्भ में प्रयुक्त 'ऋ' को र् आदेश हो जाता है।[3]

जैसे— पटु + इमनिच्	= पट् + उ (टि लोप) + इमन्	= पटिमन्	= पटिमा।
पृथु + इमनिच्	= प् + ऋ → र् + थ् + उ (लोप) + इमन्	= प्रथिमन्	= प्रथिमा
मृदु + इमनिच्	= म् + ऋ + र् + द् + उ (लोप) + इमन्	= म्रदिमन्	= म्रदिमा।
महत् + इमनिच्	= मह् + अत् (टि लोप) + इमन्	= महिमन्	= महिमा।
लघु + इमनिच्	= लघु + उ (टि लोप) + इमन्	= लघिमन्	= लघिमा।

'इमनिच्' प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिंग होते है तथा इनके रूप 'आत्मन्' के समान महिमा, महिमानौ, महिमानः इत्यादि चलते हैं। शेष शब्दों का छात्रों को प्रत्यय जोड़कर स्वयं अभ्यास करना चाहिए।

(१२) **ष्यञ् प्रत्यय**— नील, शुक्ल आदि वर्णवाची शब्दों तथा दृढ़, वृढ़, परिवृढ़, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कृष्ट, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड, बधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक और स्थिर शब्दों के बाद भावार्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'इमनिच्' अथवा 'ष्यञ्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

ष्यञ् में 'ष्' की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से तथा 'ञ्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है— 'य'। ञित् होने से शब्द के प्रारम्भिक स्वर को वृद्धि आदेश होता है। ष्यञ् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं। जैसे—

१. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा (५/१/१२२)।

२. टेः (६/४/१५५)।

३. र ऋतो हलादेर्लघोः (६/४/१६१)।

(क) शुक्लस्य भावः · शुक्ल + ष्यञ् = श् + उ → औ (वृद्धि आदेश) + क्ल् + अ लोप + य = शौक्ल्यम् (नपुंसकलिङ्ग)

(ख) दृढ़ + ष्यञ् = द् + ऋ → आर् (वृद्धि आदेश) + ढ् + अ (लोप) + य = दार्ढ्यम्

(ग) लवण + ष्यञ् = ल् + अ → आ (वृद्धि आदेश) + वण् + अ (लोप) + य = लावण्यम्

(घ) शीत + ष्यञ् = श् + ई → ऐ (वृद्धि आदेश) + त् + अ (लोप) + य = शैत्यम्

इसी प्रकार अन्य शब्दों को भी समझना चाहिए।

इसके अतिरिक्त गुणवाची शब्दों, ब्राह्मण, चोर, धूर्त, आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्यभाव, संवादिन्, संवेशिन्, संभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, बालिश, अलस, दुष्पुरुष, कापुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, दायाद, विषम, विपात, निपात शब्दों के बाद कर्म अथवा भाव अर्थ को सूचित करने के लिए 'ष्यञ्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे—ब्राह्मण्यम्, चौर्यम्, धौर्त्यम्, आपराध्यम्, ऐकभाव्यम्, सामस्थ्यम्, कौशल्यम्, चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतूहल्यम्, बालिश्यम्, आलस्यम्, राज्यम्, आधिपत्यम्, दायाद्यम्, जाड्यम्, मालिन्यम्, मौढ्यम् आदि।

(१३) **अञ् प्रत्यय**— ऐसे शब्दों, जिनके अन्त में इ, उ, ऋ अथवा ऌ प्रयुक्त हुआ हो तथा आरम्भ में कोई लघु स्वर आया हो, जैसे शुचि, मुनि आदि, से भाव अथवा कर्म की अभिव्यक्ति के लिए 'अञ्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है, अञ् में 'ञ्' की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा शेष बचता है, 'अ'। ञित् होने के कारण शेष नियम 'ष्यञ्' के समान ही होंगे। जैसे—

शुचेर्भावः कर्म वा = शुचि + अञ् = श् + उ → औ (वृद्धि) + च् + इ (लोप) + अ = शौचम्।

मुनेर्भावः कर्म वा = मुनि + अञ् = म् + उ → औ (वृद्धि आदेश) + न् + इ (लोप) + अ = मौनम्।

(१४) **वति प्रत्यय**— यदि 'किसी के समान क्रिया करना' अर्थ की अभिव्यक्ति करनी हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है, उसके बाद 'वति' प्रत्यय लगाते हैं।

इसी प्रकार 'किसी में' अथवा 'किसी के समान' अर्थों के अभिव्यक्ति के लिए भी 'वति' प्रत्यय का ही प्रयोग करते हैं।

'वति' में स्थित 'इ' की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा 'वत्' शेष बचता है। 'वति' प्रत्यययुक्त शब्द अव्यय होते हैं। अतः इनके रूप नहीं चलते, ये ज्यों के त्यों प्रयोग किए जाते हैं। जैसे—

ब्राह्मण + वति = ब्राह्मणवत्।

इन्द्रप्रस्थ + वति = इन्द्रप्रस्थवत्।

(१५) **कन् प्रत्यय**— 'किसी के समान', 'किसी की मूर्ति' अथवा 'चित्र' अथवा 'किसी के स्थान पर किसी अन्य को रख लेना' इन अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए उस शब्द के बाद 'कन्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं।

'कन्' के अन्तिम 'न्' की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - 'क'।

जैसे— अश्व के समान मूर्ति अथवा चित्र = अश्व + कन् = अश्वकः (पुल्लिंग)

पुत्र से स्थान पर वृक्ष या पक्षी को पुत्र मानना = पुत्र + कन् = पुत्रकः (पुल्लिंग)

(घ) समूहार्थक

(१६) **अण्**— 'समूह' अर्थ को बताने के लिए जिस वस्तु का समूह बताना हो, उस शब्द के बाद 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। शेष सभी नियम पूर्व में बताए गए नियमों के ही समान होंगे। जैसे—

(बक) बगुलों का समूह = बक + अण् = बाकम् (ब के अ को वृद्धि, क के अ का लोप)

(काक) कोओं का समूह = काक + अण् = काकम् (अन्तिम क के अ का लोप)

(वृक) भेड़ियों का समहू = वृक + अण् = वाकम्, इसी प्रकार मायूरम्, कापोतम्, भैक्षम्, गार्भिणम् आदि को भी समझना चाहिए।

(१७) **तल्** (ता)— इससे पूर्व हमने भावार्थ में 'तल्' प्रत्यय का उल्लेख किया था, किन्तु ग्राम, जन, बन्धु, गज, सहाय शब्दों के पश्चात् 'समूह' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए भी 'तल्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। शेष नियम पूर्ववत्। जैसे—

ग्राम + तल्	= ग्रामता (गांवों का समूह)
जन + तल्	= जनता (लोगों का समूह)
बन्धु + तल्	= बन्धुता (बन्धओं का समूह)
गज + तल	= गजता, सहाय + तल् = सहायता आदि।

(ङ) सम्बन्धार्थक एवं विकारार्थक

(१८) अण् - (क) 'यह इसका है'[१] इस अर्थ की अभिव्यक्ति में, जिसके सम्बन्ध का कथन किया जाता है, उस शब्द के बाद 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। (वस्तुतः 'अण्' का अत्यधिक प्रयोग-वैविध्य प्राप्त होता है, जिसे केवल प्रयोग किए गए स्थल से ही समझा जा सकता है) शेष सभी नियम पूर्ववत् रहेंगे। जैसे—

१. तस्येदम् (४/३/१२०)।

उपगोरिदम्	= उपगु + अण्	= औपगवम्।
देवस्य अयम्	= देव + अण्	= दैवः।
ग्रीष्मस्य इदम्	= ग्रीष्म + अण्	= ग्रैष्मम्।
निशायाः इदम्	= निशा + अण्	= नैशम्

इस अर्थ में प्रयोग करने पर निर्मित शब्द का लिङ्ग सम्बन्धित वस्तु के लिङ्ग के अनुसार होता है।

(ख) इसी प्रकार 'विकार स्वरूप एक वस्तु से दूसरी वस्तु का बनना',१ अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए भी 'अण्' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—

भस्म से बना हुआ = भस्मन् + अण् = भास्मनः

मिट्टी से बना हुआ = मृत्तिका + अण् = मार्तिकः

(ग) इसके अतिरिक्त प्राणीवाचक, ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दों के बाद 'अवयव' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए भी इसी 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे—

मयूर का विकार अथवा अवयव	= मायूरः	= मयूर + अण्।
मकड़े का विकार अथवा अवयव	= मार्कटः	= मर्कट + अण्।
पिप्पल का विकार अथवा अवयव	= पैप्पलः	= पिप्पल + अण्।

(१९) 'सम्बन्ध' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'हल' और 'सीर' शब्दों के बाद 'ठक्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। इसके अन्तिम क् की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा 'ठस्येकः' से ठ को 'इक' आदेश होता है। जैसे—

हल + ठक् = (इक) = हालिकम्। सीर + ठक् (इक) = सैरिकम्।

'क्' इत् होने से शब्द के आरम्भ में स्थित स्वर को वृद्धि आदेश होता है।

(२०) **अञ्**— ह्रस्व उकारान्त अथवा दीर्घ अकारान्त शब्दों के बाद अवयव अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'अञ्' प्रत्यय का भी प्रयोग किया जाता है। अञ् का 'अ' बचता है। शेष नियम पूर्ववत्। जैसे—

दैवदारवम् = देवदारु + अञ् (अ)। भाद्रदारवम् = भ्द्रदारु + अञ् (अ)।

(२१) **मयट्**— 'विकार' अथवा 'अवयव' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए विकल्प से 'मयट्' प्रत्यय का भी प्रयोग करते हैं। किन्तु जो वस्तुएँ खाने अथवा पहनने के काम आती है, उनसे उक्त अर्थ में 'मयट्' का प्रयोग नहीं किया जाता है।

'मयट्' के अन्तिम 'ट्' की 'इत्' संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है, 'मय'। जैसे—

तस्य विकारः (४/३/१३४)।

पत्थर का विकार अथवा अवयव	= अश्ममयम्	= अश्म + मयट्।
भस्म का विकार अथवा अवयव	= भस्ममयम्	= भस्म + मयट्।
स्वर्ण का विकार अथवा अवयव	= स्वर्णमयम्	= स्वर्ण + मयट्।

(च) **परिमाणार्थक एवं संख्यार्थक—** जिन प्रत्ययों के द्वारा वस्तु के आकार, परिमाण आदि की अभिव्यक्ति होती है। उनका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

(२२) **वतुप्—** यद्, तद्, एतद्, किम् और इदम् शब्दों में परिमाण अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'वतुप्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

'वतुप्' में 'वत्' शेष बचता है, किम् और इदम् शब्दों में 'वतुप्' के 'व' को 'घ' होकर पुनः उसे 'इय्' आदेश हो जाता है।

जैसे— यत् + वतुप् = यावत्, तत् + वतुप् = तावत्, इदम् + वतुप् = इयत्, एतद् + वतुप् = एतावत्, किम् + वतुप् = कियत्।

इनके रूप पुल्लिंग में श्रीमत् के समान, नपुं. में जगत् के समान तथा स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान चलते हैं।

(२३) **मात्रच्—** संशय को दूर करके 'निश्चित' अर्थ के साथ प्रमाण, परिमाण, तथा संख्या अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'मात्रच्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। इसके अन्तिम 'च्' की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है 'मात्र'। इसका नपुं. एकवचन में ही रूप रहता है। जैसे—

(अ) शम + मात्रच् = शममात्रम् (निश्चय ही शम प्रमाण है)

(ब) सेर + मात्रच् = सेरमात्रम् (निश्चय ही सेर प्रमाण है)

(स) पञ्च + मात्रच् = पञ्चमात्रम् (केवल पाँच ही)।

(२४) **अण्—** प्रमाण अर्थ प्रकट करने के लिए 'पुरुष' और 'हस्तिन्' के बाद 'अण्' प्रत्यय का भी प्रयोग करते हैं। जैसे—

इस नदी में पुरुष के डूबने भर पानी है = पुरुष + अण् = पौरुषं (जलं अस्यां सरिति)

इस नदी में हाथी डूबने भर पानी है = हस्तिन् + अण् = हास्तिनम् (जलमस्यां सरिति)

(२५) **डति—** किम् शब्द के बाद 'संख्या' और 'परिणाम' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'डति' प्रत्यय को लगाते हैं। 'डति' के प्रारम्भ में स्थित 'ड' की 'चुटू' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है, 'ति'। जैसे—किम् + डति (ति) = कति (कितने)

(२६) **तयप्—** संख्या, समूह का बोध कराने के लिए संख्या[illegible] 'तयप्' प्रत्यय को जोड़ते हैं। 'तयप्' में 'तय' शेष बचता है, [illegible] की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। जैसे—

द्वितयम् = द्वि + तयप्। त्रितयम् = त्रि + तयप्।

(२७) **अयच्—** द्वि, त्रि शब्दों के बाद इसी अर्थ में 'अयच्' प्रत्यय का प्रयोग भी करते है। 'अयच्' में अय् शेष बचता है। द्वि, त्रि के स्वर 'इ' का लोप होकर शब्द इस प्रकार बनते है। जैसे—

द्वि + अयच् = द्व् + इ (लोप) + अय = द्वयम् (नपुं.)।

त्रि + अयच् = त्र् + इ (लोप) + अय = त्रयम् (नपुं.)।

(झ) **हितार्थक—**

(२८) **छ—** किसी के 'हित के लिए' इस अर्थ को प्रकट करने हेतु[1] जिसके हित की वस्तु होती है, उस शब्द में 'छ' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।, 'छ' को ईय आदेश हो जाता है। जिस शब्द से प्रत्यय जोड़ा जाता है उसके अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है। जैसे—वत्स + छ (ईय) = वत्स् + अ (लोप) + ईय = वत्सीयम् (दुग्धम्)।

(२९) **यत्—** 'हित' अर्थ की अभिव्यक्ति के ही लिए शरीर के अवयववाची शब्दों के बाद, उकारान्त शब्दों में तथा गो, हविष्, अक्षर, विष, बर्हिस्, अष्टका, युग, मेधा, नाभि, श्वन् (शून या शुन् आदेश) कूप, दर, खर, असुर, वेद, बीज इन शब्दों में यत् प्रत्यय लगाते हैं। मूल शब्द के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है। 'यत्' में 'य' शेष बचता है। 'त्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है। जैसे—

दन्त + यत्	= दन्त्या।	श्वन् + यत्	= शून्यम्।
गो + यत्	= गव्यम्।	वेद + यत्	= वेद्यम्।
शरु + यत्	= शरव्यम्।	बीज + यत्	= बीज्यम्।

(ज) **क्रिया विशेषणार्थक—**

(३०) **तसिल्—** संज्ञा, सर्वनाम् और विशेषण तथा परि और अभि उपसर्गों के बाद पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में 'तसिल्' प्रत्यय का प्रयोग होता है।[2] तसिल् में 'तस्' शेष बचता है तथा इसके भी अन्तिम 'स्' को व्याकरण नियमों से विसर्ग हो जाता है। जैसे—

त्वत् + तसिल् = त्वत्तः, मत् + तसिल् = मत्तः, युष्मत् + तसिल् = युष्मत्तः, अस्मत्तः, अतः, यतः, मध्यतः, परतः, कुतः, सर्वतः, इतः, अमुतः, उभयतः, परितः, अभितः आदि।

---

१. तस्मै हितम् (५/१/५)।

२. पञ्चम्यास्तसिल् (५/३/७)।

(३१) **त्रल्**— सर्वनाम तथा विशेषण पदों में सप्तमी विभक्ति के अर्थ में 'त्रल्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। 'त्रल्' के ल् की इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, शेष बचता है - 'त्र'। जैसे—

तत् + त्रल् = तत्र, यत् + त्रल् = यत्र, बहु + त्रल् = बहुत्र।

सर्व + त्रल् = सर्वत्र, एक + त्रल् = एकत्र, किम् + त्रल् = कुत्र।

(३२) **दा**— कब, जब आदि अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् और तद् शब्दों के बाद 'दा' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—

यत् + दा = यदा, सर्व + दा = सर्वदा, अन्य + दा = अन्यदा, किम् + दा = कदा, तद् + दा = तदा आदि।

(३३) **दानीम्**— उक्त अर्थ में ही 'दानीम्' प्रत्यय का भी प्रयोग किया जाता है। जैसे— किम् + दानीम् = कदानीम्, यद् + दानीम् = यदानीम्, तद् + दानीम् = तदानीम्, इदम् + दानीम् = इदानीम्।

(३४) **थाल्**— 'प्रकार' अर्थ को बताने के लिए यत्, तत् आदि से 'थाल्' प्रत्यय लगाते हैं। थाल् में 'था' शेष बचता है। जैसे— तत् + थाल् = तथा, यत् + थाल् = यथा, सर्व + थाल् = सर्वथा, अन्य + थाल् = अन्यथा।

(३५) **कृत्वसुच्**— दो बार, तीन बार आदि के समान 'बार' अर्थ को प्रकट करने के लिए, संख्यावाची शब्दों के बाद 'कृत्वसुच्' प्रत्यय जोड़ते हैं। इस प्रत्यय के टि का लोप होकर 'कृत्वस्' शेष बचता है तथा इसमें भी अन्त में प्रयुक्त 'स्' को विसर्ग होकर 'कृत्वः' बन जाता है। जैसे—

पञ्च + कृत्वसुच् = पंचकृत्वः, षट् + कृत्वसुच् = षट्कृत्वः।

सप्त + कृत्वसुच् = सप्तकृत्वः, बहु + कृत्वसुच् = बहुकृत्वः।

(झ) **शैषिक**— ऊपर बताए गए आर्थिक वर्गीकरण के अन्तर्गत कुछ अर्थों का समावेश नहीं हुआ हैं, उन शेष अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए भी कुछ प्रत्ययों का प्रयोग करते हैं। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार, 'जिन अर्थों का बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक रक्ताद्यर्थक प्रत्ययों से नहीं होता, उन्हें शैषिक कहा जाता है।'[1]

शेष तद्धित अर्थों के लिए प्रमुखतया अण्, छ, ठञ्, कन् तथा च्वि प्रत्ययों का ही हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं।

(३६) **अण्**— (अ) पूर्व में बताए गए अर्थों के अतिरिक्त भी 'अण्' प्रत्यय का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है, जिनमें से कुछ उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) चक्षुष् + अण् = चाक्षुषम् (चक्षुषा गृह्यते, (रूपं)।

(ख) श्रवण + अण् = श्रावणः (श्रवणेन श्रूयते - शब्दः)।

१. शेषे (४/२/९२)।

(ग) अश्व + अण् = आश्वः (अश्वैरुह्यते - रथः)।

(घ) कषाय + अण् = काषायम् (कषाय रंग में रंगा वस्त्र)।

(आ) 'एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता' अर्थ में 'अण्' प्रत्यय लगाते हैं। **जैसे**— स्रुघ्न + अण् = स्रौघ्नः (स्रुघ्न में वर्तमान है)।

(इ) 'किसी में किसी व्यक्ति का निवास' अर्थ में स्थानवाचक शब्द से 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे— मथुरा + अण् = माथुरः (मथुरा में निवास)

(ई) किसी देश के सम्बन्ध को बताने के लिए 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जैसे— शिव + अण् = शैवः (शिवि लोगों के रहने का देश)।

(उ) 'रंग में रंगी हुई वस्तु' के अर्थ में रंगवाची शब्द के बाद 'अण्' प्रत्यय जोड़ते हैं। जैसे— मञ्जिष्ठा + अण् = माञ्जिष्टम् (मञ्जिष्ठ रंग में रंगा हुआ)।

(ऊ) नक्षत्र से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द में 'अण्' जोड़ते है। जैसे— चित्रा + अण् = चैत्रः (चित्रा नक्षत्र से युक्त मास)।

(ऋ) 'इसमें वह वस्तु है', 'उससे यह बनी है', 'इसमें उसका निवास है', 'यह उससे दूर नहीं ' इन अर्थों को प्रकट करने के लिए 'अण्' प्रयोग करते हैं। जैसे—

उदुम्बर + अण् = औदुम्बरः (उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् (देशे))।

कुशाम्ब + अण् + ङीप् = कौशाम्बी (कुशाम्बेन निवृत्ता (नगरी))।

शिव + अण् = शैवः (शिवियों का निवास, देश)

विदिशा + अण् = वैदिशम् (विदिशा के निकट नगर)

(३७) **छ**— जिन शब्दों का पहला स्वर आ, ऐ, अथवा औ हो, उन शब्दों में तथा त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, भवत्, किम् आदि शब्दों से (जिन्हें आचार्य पाणिनि ने 'वृ' नाम दिया है) शैषिक अर्थों में 'अण्' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—

शाला + छ	= शालीय (छ → ईय),	भवद् + छ	= भवदीय।
माला + छ (ईय)	= मालीय,	एतद् + छ (ईय)	= एतदीय।
तद् + छ (ईय)	= तदीय,	यद् + छ (ईय)	= यदीय।
अस्मद् + छ (ईय)	= अस्मदीय,	युष्मद् + छ (ईय)	= युष्मदीय।

(३८) **ठञ्**— कालवाची शब्दों के बाद शैषिक अर्थों में 'ठञ्' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे— मास + ठञ् (इक) = मासिक, संवत्सर + ठञ् (इक) = सांवत्सरिक।

विशेष— किन्तु संधिवेला, सन्ध्या, अमावस्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची (ग्रीष्म आदि) और नक्षत्रवाची शब्दों में उक्त अर्थ में 'अण्' लगाते हैं। जैसे—सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम्, शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वांसन्तम्, पौषम् आदि।

(३९) **कन्**— 'अनुकम्पा' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'कन्' प्रत्यय जोड़ते हैं। जैसे— पुत्र + कन् = पुत्रकः, भिक्षु + कन् = भिक्षुकः।

कन् में 'न्' की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होकर लोप हो जाता है, 'क' शेष बचता है।

(४०) **च्वि**— 'जब कोई वस्तु पहले नहीं थी वैसी हो जाए' तो 'च्वि' प्रत्यय का प्रयोग करके इस अर्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। जैसे—

अकृष्णः कृष्णः क्रियते = कृष्ण + च्वि + क्रियते = कृष्णीक्रियते।

यह प्रत्यय केवल √कृ, √भू और √अस् धातु के योग में प्रयुक्त करते हैं। च्वि का लोप हो जाता है, किन्तु क्रियापद से पूर्व पद के अन्तिम अकार अथवा आकार को ईकार आदेश हो जाता है। जैसे—

गङ्गा + च्वि + स्यात् = गङ्गीस्यात्, (अगङ्गा गङ्गा स्यात्)

ब्रह्म + च्वि + भवति = ब्रह्मीभवति (अब्रह्म ब्रह्म भवति)

शुचि + च्वि + भवति = शुचीभवति (अशुचि शुचिः भवति)

पटु + च्वि + भवति = पटूभवति (अपटुः पटुः भवति)

प्रथम शब्द के अन्तिम 'इ' 'उ' को दीर्घ हो जाता है जैसे— शुचीभवति, पटूकरोति आदि।

१२. प्रकृति-प्रत्यय निर्देश

छात्रों से परीक्षा में प्रकृति-प्रत्यय निर्देश कराया जाता है। प्रायः छात्र इस प्रश्न को या तो छोड़ देते हैं अथवा गलत कर देते हैं। हम यहाँ इसका उल्लेख कर रहे हैं। छात्रों को इस आधार पर इसका अभ्यास करना चाहिए।

प्रकृति से अभिप्राय मूलधातु अथवा मूलशब्द या प्रातिपदिक से होता है। पहले उसका उल्लेख करना चाहिए। उसके बाद प्रत्यय (सुप्, तिङ्, कृदन्त, तद्धित आदि) का उल्लेख करके उसके लिंग, वचन, विभक्ति और यदि तिङ् प्रत्यय से युक्त है तो उसके लकार, पुरुष और वचन का उल्लेख करना उचित है।

(क) **'सुप्' प्रत्यय के कुछ उदाहरण**— संज्ञा, सर्वनाम आदि प्रातिपदिकों से सात विभक्ति और तीन वचनों में कुल २१ सुप् प्रत्ययों का प्रयोग होता है। सुप् यहाँ प्रत्याहार है, जो प्रथमा विभक्ति एकवचन के सु से लेकर सप्तमी विभक्ति, बहुवचन के सुप् तक के समस्त २१ प्रत्ययों का कथन करता है। आइये पहले इन्हें स्मरण करें—

	बहुवचन	**एकवचन**	**द्विवचन**
प्रथमा विभक्ति	सु	औ	जस्
द्वितीया विभक्ति	अम्	औट्	शस्
तृतीया विभक्ति	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी विभक्ति	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी विभक्ति	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी विभक्ति	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी विभक्ति	ङि	ओस्	सुप्

अब आपको शब्द रूप तो याद ही होंगे। जैसे रामः, रामौ, रामाः। माना परीक्षण आपसे 'रामः' पद देकर इसका प्रकृति-प्रत्यय निर्देश कराता है। तो आपको देखना चाहिए कि 'रामः' पद किस विभक्ति और वचन का है तथा वहाँ किस प्रत्यय का प्रयोग हुआ है और इसका मूल प्रातिपदिक अथवा प्रकृति क्या है? प्रत्येक शब्द की मूल प्रकृति को जानना, प्रत्येक संस्कृत अध्येता के लिए आवश्यक है।

'रामः' पद में 'राम' मूल प्रातिपदिक है तथा एकवचन, प्रथमा विभक्ति में सु प्रत्यय का प्रयोग होता है तथा 'रामः' कहने से पुरुष जाति का बोध हो रहा है। अतः इस पद का प्रकृति-प्रत्यय निर्देश हम इस प्रकार करेंगे—

राम + सु = रामः (पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

इसी प्रकार कुछ अन्य उदाहरणों पर भी विचार करें—

१. त्वया = युष्मद् + टा (तृतीया विभक्ति, एकवचन, सर्वनाम)

२. मम = अस्मद् + ङस् (षष्ठी विभक्ति, एकवचन, सर्वनाम)

३. भवते = भवत् + ङसि (पुल्लिंग, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन)

४. रमाः = रमा + जस् (स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन)

विशेष— कुछ शब्दों के एक से अधिक विभक्तियों में एक जैसे रूप होते हैं। उनके प्रत्ययों के किसी एक प्रत्यय का अथवा सभी का भी उल्लेख कर सकते हैं।

५. रमाः = रमा + शस् (स्त्रीलिङ्ग, द्वितीया विभक्ति, बहुवचन)

६. कविभिः = कवि + भिस् (पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन)

७. भूपतीनाम् = भूपति + आम् (पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन)

८. पितरि = पितृ + ङि (पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन)

९. विद्यासु = विद्या + सुप् (स्त्रीलिङ्ग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन)

१०. पुस्तकानि = पुस्तक + जस् (शस्) (नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति, बहुवचन)

मूल प्रातिपदिकों को समझने के लिए शब्द रूपों को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए।

(ख) **तिङ् प्रत्यय के कुछ प्रयोग**— तिङ् प्रत्ययों की संख्या कुल मिलाकर १८ है, ९ परस्मैपदी के तथा ९ आत्मनेपदी के। ये केवल धातुओं में प्रयोग किए जाते

हैं। तिङ् भी यहाँ प्रत्याहार है, जिसमें सभी २१ प्रत्ययों का समावेश हो जाता है। जैसे— परस्मैपदी[1] धातुओं में—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरुष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरुष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपदी[2] धातुओं में—

प्रथम पुरुष	त	अताम्	झ
मध्यम पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरुष	इड्	वहि	महिङ्

यदि परीक्षक आपसे 'पठन्ति' का प्रकृति-प्रत्यय-निर्देश कराता है, तो आपको सर्वप्रथम यह जानना है कि यह किस लकार के, किस पुरुष और किस वचन का रूप है। इसकी मूल धातु क्या है? तथा उस पुरुष और वचन में किस तिङ् प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

इन सब बातों का उत्तर है— 'पठन्ति' क्रिया पद लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन का रूप है तथा इसकी मूल धातु है—√पठ् एवं इस पुरुष तथा वचन में प्रत्यय युक्त होगा - 'झि'। बस इस सबको इस प्रकार लिख दें—

पठन्ति = √पठ् + झि (लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन)

विशेष— ध्यान रहे धातु पर धातु के चिह्न (√) का प्रयोग करें धातु शब्द लिखने की आवश्यकता नहीं है, झि लिखना ही पर्याप्त है, 'झि' प्रत्यय लिखने की आवश्यकता नहीं है।[3]

इसी प्रकार कुछ अन्य उदाहरण भी देख लें—

१. पिबसि = √पा + सिप् (लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन)

२. शृणोतु = √श्रु + तिप् (लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन)

३. तिष्ठेत् = √स्था + तिप् (विधिलिङ्ग लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन)

४. चलिष्यन्ति = √चल् + झि (लृट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन)

५. ददाह = √दह् + तिप् (लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन)

---

१. वह पद जो दूसरे के लिए हो।

२. वह पद जो अपने लिए हो।

३. धातुओं के प्रकृति-प्रत्यय निर्देश को समझने के लिए मुख्य धातुओं के परस्मैपदी एवं आत्मनेपदी रूपों को भी ध्यानपूर्वक याद करना चाहिए।

६. अपताम = √पत् + मस् (लङ् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन)

७. आस्ते = √आस् + त (लट् लकार, आत्मनेपदी, प्रथम पुरुष, एकवचन)

८. शेताम् = √शी + त (लोट् लकार, आत्मनेपदी, प्रथम पुरुष, एकवचन)

९. दधीमहि = √धा + महिङ् (विधिलिङ्ग, आत्मनेपदी, उत्तम पुरुष, बहुवचन)

१०. खेत्स्यते= √खिद् + त (लृट् लकार, आत्मनेपदी, प्रथम पुरुष, एकवचन)

(ग) **कृदन्त प्रत्यय के कुछ उदाहरण**— धातुओं से प्रयुक्त होने वाले तिङ् प्रत्ययों के अतिरिक्त कृदन्त प्रत्यय भी होते हैं। जिनका हम विस्तार से उल्लेख कर चुके हैं। यहाँ हम केवल उनके लिखने के तरीके का उल्लेख कर रहे हैं।

ईक्षितव्यः = √ईक्ष् + तव्यत् (पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

गमनीया = √गम् + अनीयर् (स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

देयम् = √दा + यत् (नपुं., प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

कार्यम् = √कृ + ण्यत् (नपुं., प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

छिन्नः = √छिद् + क्त (पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

अधीतः = अधि + √इ + क्त (पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

पठन्ती = √पठ् + शतृ + ङीष् (स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

स्तुवन् = √स्तु + शतृ (पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन)

प्रयुज्य = प्र + √युज् + ल्यप्, शयितुम् = √शी + तुमुन्

लेखः = √लिख् + घञ्, भावः = √भू + घञ्, लाभः = √लभ् + घञ्।

विशेष— प्रकृति-प्रत्यय-निर्देश करते समय एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि यदि धातु से पूर्व उपसर्ग प्रयुक्त हुआ हो (एक या एक से अधिक) तो उन्हें भी अलग अलग प्रदर्शित करना चाहिए तथा हलन्त आदि का ध्यान रखते हुए धातु एवं प्रत्यय का सही रूप लिखना चाहिए। जैसे— 'ल्यप' लिखना गलत होगा पठ लिखना भी ठीक नहीं होगा, धातुओं आदि की मात्राओं का भी सही प्रयोग करना चाहिए।

(घ) **तद्धित प्रत्यय कुछ उदाहरण**—

गाणपतम् = गणपति + अण्, दाशरथीः = दशरथ + इञ्

दण्डी = दण्ड + इनि (पु., प्र.वि., ए.व.), धनिकः = धन + ठन्

तारकितम् = तारका + इतच्, बन्धुता = बन्धु + तल्

महत्त्वम् = महत् + त्व, महिमा = महत् + इमनिच् (प्र.वि., ए.व.)

दार्ढ्यम् = दृढ + ष्यञ्, ब्राह्मणवत् = ब्राह्मण + वतुप्

दैवः = देव + अण्, अश्वकः = अश्व + कन्, हालिकः = हल + ठक्

स्वर्णमयम् = स्वर्ण + मयट्, शममात्रम् = शम + मात्रच्, द्वितयम् = द्वि + तयप्
त्वत्तः = त्वत् + तसिल्, वत्सीयम् = वत्स + छ, यथा = यत् + थाल्

(ङ) स्त्री इत्यादि प्रत्ययों के उदाहरण—

मूषिका = मूषक + टाप्, अजा = अज + टाप्। राज्ञी = राजन् + ङीप्, दात्री = दातृ + ङीप्, कत्री = कर्ता + ङीप्। नदी = नद + ङीप्, कुमारी = कुमार + ङीप्, किशोरी = किशोर + ङीप्, ब्राह्मणी = ब्राह्मण + ङीष्, भल्लूकी = भल्लूक + ङीष्, इन्द्राणी = इन्द्र + ङीष्, नारी = नृ + ङीन्, युवतिः = युवन् + ति।

१३. शब्द रूप

१. **पति** - (इकारान्त पुल्लिंग) २. **सखि** - (इकारान्त, स्त्रीलिङ्ग)

पतिः	पती	पतयः	सखा	सखायौ	सखायः
पतिम्	पती	पतीन्	सखायम्	सखायौ	सखीन्
पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पत्युः	पत्योः	पतीनाम्	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
पत्यौ	पत्योः	पतिषु	सख्यौ	सख्योः	सखिषु

३. **अक्षि-आँख—** (इकारान्त, नपुंस०) ४. **सुधी— विद्वान्**, (इकारान्त, पुल्लिग)

अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
अक्ष्णि	अक्ष्णोः	अक्षिषु	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु

५. **स्त्री—** (ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग) ६. **धेनु—** गाय, (उकारान्त, स्त्रीलिङ्ग)

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	धेनुः	धेनू	धेनवः
स्त्रियम्	स्त्रियौ	स्त्रियः	धेनुम्	धेनू	धेनूः
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः

स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्	धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु	धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु

७. **वधू - बहू**, (ऊकारान्त, स्त्रीलिङ्ग) ८. **पितृ - पिता**, (ऋकारान्त, पुल्लिग)

वधूः	वध्वौ	वध्वः	पिता	पितरौ	पितरः
वधूम्	वध्वौ	वधूः	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु	पितरि	पित्रोः	पितृषु

९. **नृ— मनुष्य**, (ऋका०, पुल्लिग) १०. **मातृ— माता**, (ऋका०, स्त्रीलिङ्ग)

ना	नरौ	नरः	माता	मातरौ	मातरः
नरम्	नरौ	नॄन्	मातरम्	मातरौ	मातॄः
न्रा	नृभ्याम्	नृभिः	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
नु	नृभ्याम्	नृभ्यः	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
नुः	न्रोः	नॄणाम्	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
नरि	न्रोः	नृषु	मातरि	मात्रोः	मातृषु

११. **वाच्-वाणी**, (चका०, स्त्री.) १२. **तिर्यञ्च्, तिरछाजानेवाला**, (चका० पु.)

वाक्	वाचौ	वाचः	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
वाचम्	वाचौ	वाचः	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः
वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
वाचः	वाचोः	वाचाम्	तिरश्चः	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
वाचि	वाचोः	वाक्षु	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु

१३. **वणिज्- बनिया**, (जकारा०, पु.) १४. **सम्राज्-सम्राट्**, (जकारा०, पु.)

वणिक्	वणिजौ	वणिजः	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राजः
वणिजम्	वणिजौ	वणिजः	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राजः
वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
वणिजे	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः	सम्राजे	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
वणिजः	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः	सम्राजः	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
वणिजः	वणिजोः	वणिजाम्	सम्राजः	सम्राजोः	सम्राजाम्
वणिजि	वणिजोः	वणिक्षु	सम्राजि	सम्राजोः	सम्राट्सु

१५. **भगवत् - भगवान्**, (तकारान्त पु.) १६. **भूभृत् - राजा**, (तकारान्त, पु.)

भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः
भगवन्तम्	भगवन्तौ	भगवतः	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
भगवते	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
भगवतः	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
भगवतः	भगवतोः	भगवताम्	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
भगवति	भगवतोः	भगवत्सु	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु

१७. **सरित् - नदी**, (तकारान्त, स्त्री.) १८. **भवत् - आप**, (तकारान्त पु.)

सरित्	सरितौ	सरितः	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
सरितम्	सरितौ	सरितः	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
सरितः	सरितोः	सरिताम्	भवतः	भवतोः	भवताम्
सरिति	सरितोः	सरित्सु	भवति	भवतोः	भवत्सु

१९. **आत्मन्– आत्मा**, (नकारा०, पु.) २०. **पथिन् - रास्ता**, (नकारा०, पु.)

आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
आत्मना	आत्मभ्यांम्	आत्मभिः	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः

आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्	पथः	पथोः	पथाम्
आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु	पथि	पथोः	पथिषु

२१. **मघवन् - इन्द्र**, (नकारान्त, पु.) २२. **युवन् - युवक**, (नकारान्त, पु.)

मघवा	मघवानौ	मघवानः	युवा	युवानौ	युवानः
मघवानम्	मघवानौ	मघोनः	युवानम्	युवानौ	यूनः
मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्	यूनः	यूनोः	यूनाम्
मघोनि	मघोनोः	मघवत्सु	यूनि	यूनोः	युवसु

२३. **राजन्– राजा**, (नकारान्त, पु.) २४. **विद्वस्– विद्वान्**, (सकारान्त, पु.)

राजा	राजानौ	राजानः	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
राजानम्	राजानौ	राज्ञः	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
राज्ञि	राज्ञोः	राजसु	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु

२५. **अहन् - दिन**, (नकारान्त, नपुं.) २६. **नामन् - नाम**, (नकारान्त, नपुं.)

अहः	अहनी	अहानि	नाम	नामनी	नामानि
अहः	अहनी	अहानि	नाम	नामनी	नामानि
अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्यः
अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः	नाम्नः	नामभ्याम्	नामभ्यः
अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्	नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
अहनि	अह्नोः	अहःसु	नाम्नि	नाम्नोः	नामसु

२७. **अप् - पानी**, (पकारान्त, स्त्री)

आपः
अपः अप् शब्द के रूप बहुवचन
अद्भिः में ही चलते हैं।
अद्भ्यः
अद्भ्यः
अपाम्
अप्सु

२८. **चक्षुष् - नेत्र**, (षकारान्त, नपुं)

चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
चक्षुषा	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भिः
चक्षुषे	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
चक्षुषः	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
चक्षुषः	चक्षुषोः	चक्षुषाम्
चक्षुषि	चक्षुषोः	चक्षुःषु

२९. **धनुष् - धनुष**, (षकारा० नपुं.)

धनुः	धनुषी	धनूंषि
धनुः	धनुषी	धनूंषि
धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
धनुषि	धनुषोः	धनुःषु

३०. **दिश् - दिशा**, शकारा०, स्त्रीलिङ्ग)

दिक्	दिशौ	दिशः
दिशम्	दिशौ	दिशः
दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
दिशः	दिशोः	दिशाम्
दिशि	दिशोः	दिक्षु

३१. **आशिस्-आशीर्वाद**, (सका०, स्त्री.)

आशीः	आशिषौ	आशिषः
आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
आशिषि	आशिषोः	आशीःषु

३२. **पयस्-पानी दूध** (सका०, नपुं.)

पयः	पयसी	पयांसि
पयः	पयसी	पयांसि
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पयसः	पयसोः	पयसाम्
पयसि	पयसोः	पयस्सु

३३. **पुंस् - पुरुष**, (सका०, पुल्लिग)

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
पुंसि	पुंसोः	पुंसु

३४. **वेधस् - ब्रह्मा**, (सका०, पुल्लिग)

वेधसाः	वेधसौ	वेधसः
वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
वेधसि	वेधसोः	वेधस्सु

उपर्युक्त शब्द रूप आगे संस्कृत अनुवाद में भी उपयोगी रहेंगे। इन्हें याद करने के लिए शब्दों के साम्य-वैषम्य को लाल स्याही से अंकित करके समझना चाहिए, न कि रटना। इससे कम समय में स्थायी रूप से अधिक शब्दों को याद किया जा सकता है।

सर्वनाम—

इदम्[1] = **यह** = पुरुष

अयम्	इमौ	इमे
इमम्	इमौ	इमान्
अनेन	आभ्याम्	एभिः
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
अस्य	अनयोः	एषाम्
अस्मिन्	अनयोः	एषु

इदम् = **यह** = स्त्री

इयम्	इमे	इमाः
इमाम्	इमे	इमाः
अनया	आभ्याम्	आभिः
अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
अस्याः	अनयोः	आसाम्
अस्याम्	अनयोः	आसु

इदम् = **यह** = (घर आदि)

इदम्	इमे	इमानि
इदम्	इमे	इमानि

शेष इदम् पुल्लिंग के समान

यत् = **जो** = पुरुष

यः	यौ	ये
यम्	यौ	यान्
येन	याभ्याम्	यैः
यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
यस्य	ययोः	येषाम्
यस्मिन्	ययोः	येषु

यत् = **जो** (स्त्री)

या	ये	याः
याम्	ये	याः
यया	याभ्याम्	याभिः
यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
यस्याः	ययोः	यासाम्
यस्याम्	ययोः	यासु

---

[1] जो वस्तु या व्यक्ति अपने सामने होती है, उसके लिए इदम् सर्वनाम का प्रयोग किया है।

यत् = जो (पुष्प-नपुंसकलिंग)[1]

यत्	ये	यानि
यत्	ये	यानि
येन	याभ्याम्	यैः
यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
यस्य	ययोः	येषाम्
यस्मिन्	ययोः	येषु

किम् = कौन = पुरुष (पुल्लिंग)

कः	कौ	के
कम्	कौ	कान्
केन	काभ्याम्	कैः
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
कस्य	कयोः	केषाम्
कस्मिन्	कयोः	केषु

किम् = कौन (स्त्री)

का	के	काः
काम्	के	काः
कया	काभ्याम्	काभिः
कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
कस्याः	कयोः	कासाम्
कस्याम्	कयोः	कासु

किम् = कौन, क्या, (नपुंसकलिंग)

किम्	के	कानि
किम्	के	कानि

शेष किम् पुल्लिंग के समान।

शब्द रूप याद करने का सरल तरीका—

उपर्युक्त सर्वनाम पदों के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि सभी सर्वनाम पदों के रूप एक समान चलते हैं। जो थोड़ा अन्तर उनमें है, यदि उसे समझ लिया जाए तो इन्हें रटने का आवश्यकता नहीं है।

सर्व = सब, (पुल्लिंग)

सर्वः	सर्वौ	सर्वे
सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

सर्व = सब - (स्त्रीलिंग)

सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

१. नपुंसकलिंग रूप तृतीया से सप्तमी विभक्ति तक पुल्लिंग के समान ही चलते हैं।

सर्व = सब = (नपुंसकलिंग)

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

शेष सर्व पुल्लिंग के समान।

छात्रों को रूप याद करते समय शब्द रूपों के साम्य और वैषम्य को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए और उसे समझ लेना चाहिए। शब्द रूप हमेशा लिख-लिख कर ही याद करने चाहिएँ, जिससे गलतियों की सम्भावना नहीं रहती।

एतत् = **यह** = (पुल्लिंग)

एषः	एतौ	एते
एतम्	एतौ	एतान्
एतेन	एताभ्याम्	एतैः
एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

एतत् = यह = (स्त्रीलिंग)

एषा	एते	एताः
एताम्	एते	एताः
एतया	एताभ्याम्	एताभिः
एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
एतस्याम्	एतयोः	एतासु

एतत् = यह = (नपुंसकलिंग)

एतत्	एते	एतानि
एतत्	एते	एतानि

(शेष पुल्लिंग, 'एतत्' के समान)

छात्रों को शब्द रूप याद करते समय अपनी अंगुलि पर १, २, ३ इत्यादि गिनना चाहिए, न कि रूप बोलकर प्रथमा आदि। जैसे जब हम प्रथमा विभक्ति के रूप बोलें तो हमारा अंगूठा अंगुलि के प्रथम पोरवे का स्पर्श करे। इस प्रकार सुविधा रहेगी।

अदस् = वह = (पुल्लिंग)

असौ	अमू	अमी
अमुम्	अमू	अमून्
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

अदस् = वह = (स्त्रीलिंग)

असौ	अमू	अमूः
अमुम्	अमू	अमूः
अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

अदस् = वह = (नपुंसकलिंग)

अदः	अमू	अमूनि
अदः	अमू	अमूनि

(शेष पुल्लिंग 'अदस्' के समान)

अनुवाद का अभ्यास छात्रों को प्रारम्भ में 'यह' के लिए 'इदम्' शब्द का प्रयोग करके तथा 'वह' के लिए 'तत्' के प्रयोग करके करना चाहिए, क्योंकि 'अदस्' तथा 'एतत्' के रूप अपेक्षाकृत कठिन है।

अन्यत् = दूसरा = (पुल्लिंग)

अन्यः	अन्यौ	अन्ये
अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः
अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
अन्यस्मिन्	अन्ययोः	अन्येषु

अन्यत् = दूसरा = (स्त्रीलिंग)

अन्या	अन्ये	अन्याः
अन्याम्	अन्ये	अन्याः
अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभिः
अन्यस्यै	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
अन्यस्याः	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
अन्यस्याः	अन्ययोः	अन्यासाम्
अन्यस्याम्	अन्ययोः	अन्यासु

अन्यत् = दूसरा = (नपुंसकलिंग)

अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
अन्यत्	अन्ये	अन्यानि

(शेष पुल्लिंग 'अन्यत्' के समान)

अन्यतर, इतर, कतर, कतम, यतर, यतम, ततर तथा ततम इन सर्वनाम पदों के रूप भी 'अन्यत्' के समान चलते हैं।

अवर, दक्षिण, उत्तर, पर अपर, अधर आदि सर्वनाम पदों के रूप 'पूर्व' के समान चलते हैं।

पूर्व = पहला = (पुल्लिंग)

पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे
पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्य
पूर्वस्मात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
पूर्वस्मिन्	पूर्वयोः	पूर्वेषु

पूर्व = पहला = (स्त्रीलिंग)

पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
पूर्वाम्	पूर्वे	पूर्वाः
पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
पूर्वस्यै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्यः
पूर्वस्याः	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्यः
पूर्वस्याः	पूर्वयोः	पूर्वासाम्
पूर्वस्याम्	पूर्वयोः	पूर्वासु

पूर्व = पहला = (नपुंसकलिंग)

पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि

(शेष पुल्लिंग 'पूर्व' के समान)

आचार्य पाणिनि ने लिखा है– **सर्वादीनि सर्वनामानि** (१.१.२७) अर्थात् सर्व आदि की सर्वनाम संज्ञा होती है।

सर्वादि के अन्तर्गत निम्न ३५ शब्द गिनाए गए हैं–

सर्व, विश्व, उभय, उभ, इतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, त्यद् तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्।

उक्त सर्वनाम पदों में उभ और उभय के रूप केवल द्विवचन में चलते है—

उभ = = दोनों, पुल्लिंग, **उभ=दोनों**=स्त्रीलिंग, एवं नपुंसकलिंग

उभौ	उभे
उभौ	उभे
उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
उभयोः	उभयोः
उभयोः	उभयोः

'उभ' शब्द के नपुंसकलिंग के रूप भी स्त्रीलिंग पदों के अनुसार ही चलते हैं, कोई भिन्नता नहीं होती। यद्यपि उपर्युक्त रूपों को यदि ध्यानपूर्वक देखें तो केवल उभौ और उभे पदों की ही भिन्नता है। शेष सभी समान है।

इसी प्रकार 'उभय' सर्वनाम के रूप भी केवल एकवचन और बहुवचन में ही चलते है—

उभय = दोनों = पुल्लिंग

एकवचन	**बहुवचन**	**नपुंसकलिंग**	
उभयः	उभये	उभयम्	उभयानि
उभयम्	उभयान्	उभयम्	उभयानि
उभयेन	उभयैः		
उभयाय	उभयेभ्यः		
उभयस्मात्	उभयेभ्यः		

उभयस्य	उभयेषाम्	
उभयस्मिन्	उभयेषु	(शेष पुल्लिंग 'उभय' के समान)–

यति (जितने), कति (कितने), तति (उतने) शब्दों के रूप हमेशा बहुवचन में ही चलते हैं—

कति = कितने	**यति** = जितने
कति	यति
कति	यति
कतिभिः	यतिभिः
कतिभ्यः	यतिभ्यः
कतिभ्यः	यतिभ्यः
कतिभ्यः	यतिभ्यः
कतीनाम्	यतीनाम्
कतिषु	यतिषु

तति (उतने)

तति	ततिभ्यः
तति	ततीनाम्
ततिभिः	ततिषु
ततिभ्यः	

संख्यावाची शब्द

एक शब्द के केवल एकवचन, किन्तु पुल्लिग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग तीनों लिंगों में रूप चलते हैं—

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**	**नपुंसकलिंग**
एकः	एका	एकम्
एकम्	एकाम्	एकम्
एकेन	एकया	
एकस्मै	एकस्यै	(शेष पुल्लिंग
एकस्मात्	एकस्याः	के समान)
एकस्य	एकस्याः	
एकस्मिन्	एकस्याम्	

उपर्युक्त संख्यावाची शब्द-रूपों से स्पष्ट है कि ये रूप 'सर्व' सर्वनाम रूपों से पर्याप्त समानता रखते हैं। अतः इन्हें तुलनात्मक दृष्टि से स्मरण करना चाहिए।

'द्वि = दो' शब्द के रूप केवल द्विवचन में, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग में चलते हैं, इसके स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग रूप एक समान होते हैं—

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग**
द्वौ	द्वे
द्वौ	द्वे
द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
द्वयोः	द्वयोः
द्वयोः	द्वयोः

त्रि = तीन, शब्द के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं तथा पुल्लिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसकलिंग तीनों लिंगों में अलग-अलग होते हैं। इनका प्रयोग अनुवाद करते समय पर्याप्त होता है, अतः इस दृष्टि से भी इन्हें स्मरण कर लेना चाहिए।

त्रि = तीन

पुल्लिग	**स्त्रीलिंग**	**नपुंसकलिंग**
त्रयः	तिस्रः	त्रीणि
त्रीन्	तिस्रः	त्रीणि
त्रिभिः	तिसृभ्यः	शेष
त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	पुल्लिग
त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	के समान
त्रयाणाम्	तिसृणाम्	
त्रिषु	तिसृषु	

चतुः = चार

इसके भी केवल बहुवचन तथा तीनों लिंगों में रूप चलते हैं—

चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
चतुरः	चतस्रः	चत्वारि
चतुर्भिः	चतसृभिः	शेष
चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	पुल्लिग

चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	के समान
चतुर्णाम्	चतसृणाम्	
चतुर्षु	चतसृषु	

पञ्चन् = **पाँच**, **षष्** = **छः** तथा **सप्तन्** = **सात** के रूप केवल बहुवचन में पुल्लिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसकलिंग में एक समान चलते हैं।

पञ्च	षट्	सप्त
पञ्च	षट्	सप्त
पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्
पञ्चसु	षटसु	सप्तसु
अष्ट	नव	दश
अष्ट	नव	दश
अष्टभिः	नवभिः	दशभिः
अष्टभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः
अष्टभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः
अष्टाणाम्	नवानाम्	दशानाम्
अष्टसु	नवसु	दशसु

अष्टन् = **आठ**, **नवन्** = **नौ**, **दशन्** = **दस**, इन शब्दों के रूप भी केवल बहुवचन में तथा सभी लिंगों में एक समान चलते हैं—

११. एकादश	१२. द्वादश	१३. त्रयोदश
१४. चतुर्दश	१५. पञ्चदश	१६. षोडश
१७. सप्तदश	१८. अष्टादश	१९. एकोनविंश
२०. विंशतिः	२१. एकविंशतिः	२२. द्वाविंश
२३. त्रयोविंशतिः	२४. चतुर्विंशतिः	२५. पंचविंशतिः
२६. षड्विंशतिः	२७. सप्तविंशतिः	२८. अष्टाविंशतिः
२९. एकोनत्रिंशत्	३०. त्रिंशत्	३१. एकत्रिंशत्
३२. द्वात्रिंशत्	३३. त्रयस्त्रिंशत्	३४. चतुस्त्रिंशत
३५. पंचत्रिंशत्	३६. षट्त्रिंशत्	३७. सप्तत्रिंशत

३८. अष्टात्रिंशत्	३९. ऊनचत्वारिंशत्	४०. चत्वारिंशत
४१. एकचत्वारिंशत्	४२. द्विचत्वारिंशत्	४३. त्रयश्चत्वारिंशत्
४४. चतुश्चत्वारिंशत्	४५. पञ्चचत्वारिंशत्	४६. षट्चत्वारिंशत्
४७. सप्तचत्वारिंशत्	४८. अष्टचत्वारिंशत्	४९. एकोनपञ्चाशत्
५०. पञ्चाशत्	६०. षष्टि	७०. सप्ततिः
८०. अशीतिः	९०. नवतिः	१००. शतम्

* * *

पचास से आगे स्वयं गिनती बनाने का अभ्यास करें।

१४. धातु रूप

लट् लकार

१. √याच् = मांगना			**२. √श्रु = सुनना**		
याचति	याचतः	याचन्ति	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
याचसि	याचथः	याचथ	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
याचामि	याचावः	याचामः	शृणोमि	शृणुवः	शृणुमः
३. √स्था = ठहरना			**४. √ब्रू = बोलना**		
तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति	ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति
तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ	ब्रवीषि	ब्रूथः	ब्रूथ
तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः
५. √रुद् = रोना			**६. √शास् = शासन करना**		
रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	शास्ति	शिष्टः	शासति
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ
रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः
७. √स्तु = स्तुति करना			**८. √भी = भयभीत होना**		
स्तौति	स्तुतः	स्तुवन्ति	बिभेति	बिभीतः	बिभ्यति
स्तौषि	स्तुथः	स्तुथ	बिभेषि	बिभीथः	बिभीथ
स्तौमि	स्तुवः	स्तुमः	बिभेमि	बिभीवः	बिभीमः
९. √हु = हवन करना			**१०. √यत् = यत्न करना**		
जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	यतते	यतेते	यतन्ते
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	यतसे	यतेथे	यतध्वे
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	यते	यतावहे	यतामहे

११. √वृत् = होना

वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

१२. √जन् = उत्पन्न होना

जायते	जायेते	जायन्ते
जायसे	जायेथे	जायध्वे
जाये	जायावहे	जायामहे

१३. √चि = चुनना

चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
चिनोमि	चिनुवः	चिनुमः

१४. √विद् = जानना

वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
वेत्सि	वित्थः	वित्थ
वेद्मि	विद्वः	विद्मः

१५. √रुध् = रोकना

रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति
रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध
रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

१६. √छिद् = काटना

छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
छिनत्सि	छिन्थः	छिन्थ
छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

१७. √तन् = फैलाना

तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
तनोषि	तनुथः	तनुथ
तनोमि	तनुवः	तनुमः

१८. √क्री = खरीदना

क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

१९. √ग्रह् = पकड़ना

गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

२०. √ज्ञा = जानना

जानाति	जानीतः	जानन्ति
जानासि	जानीथः	जानीथ
जानामि	जानीवः	जानीमः

२१. √बन्ध् = बाँधना

बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति
बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ
बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः

२२. √दुह् = दुहना

दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति
धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध
दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः

लोट् लकार

१.	याचतु	याचताम्	याचन्तु
	याच	याचतम्	याचत
	याचानि	याचाव	याचाम
२.	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

३.	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम
४.	ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत
	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम
५.	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
	रोदानि	रोदाव	रोदाम
६.	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
	शासानि	शासाव	शासाम
७.	स्तौतु	स्तुताम्	स्तुवन्तु
	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम
८.	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
	बिभेहि	बिभीतम्	बिभीत
	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम
९.	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम
१०.	यतताम्	यतेताम्	यतन्ताम्
	यतस्व	यतेथाम्	यतध्वम्
	यतै	यतावहै	यतामहै
११.	वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्
	वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्
	वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै
१२.	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
	जायै	जायावहै	जायामहै
१३.	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु
	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम
१४.	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
	विद्धि	वित्तम्	वित्त
	वेदानि	वेदाव	वेदाम
१५.	रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु
	रुन्द्धि	रुन्द्धम्	रुन्द्ध
	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम
१६.	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
	छिन्द्धि	छिन्तम्	छिन्त
	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम
१७.	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु
	तनु	तनुतम्	तनुत
	तनवानि	तनवाव	तनवाम
१८.	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम
१९.	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम
	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत
२०.	जानातु	जानीताम	जानन्तु
	जानानि	जानाव	जानाम
	जानीहि	जानीतम्	जानीत
२१.	बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु
	बधान	बध्नीतम्	बध्नीत
	बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम
२२.	दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु
	दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध
	दोहानि	दोहाव	दोहाम

लङ् लकार

१. अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त	२. अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि	अशृणवम्	अशृणुव	अशृणुम
३. अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्	४. अब्रवीत्,	अब्रूताम्	अब्रुवन्
अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम
५. अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्	६. अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
अरोदः	अरुदितम्	अरुदित	अशाः	अशिष्टम्	अशिष्ट
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म
७. अस्तौत्	अस्तुताम्	अस्तुवन्	८. अबिभेत्	अबिभिताम्	अबिभयुः
अस्तौः	अस्तुतम्	अस्तुत	अबिभेः	अबिभितम्	अबिभित
अस्तवम्	अस्तुव	अस्तुम	अबिभयम्	अबिभिव	अबिभिम
९. अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	१०. अयतत	अयतेताम्	अयतन्त
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	अयतथाः	अयतेथाम्	अयतध्वम्
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	अयते	अयतावहि	अयतामहि
११. अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त	१२. अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि	अजाये	अजायावहि	अजायामहि
१३. अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्	१४. अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत	अवेः	अवित्तम्	अवित्त
अचिनवम्	अचिनुव	अचिनुम	अवेदम्	अविद्व	अविद्म
१५ [illegible]	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्	१६. अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
अरुणः	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध	अच्छिनः	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म
१७. अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	१८. अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
अतनवम्	अतनुव	अतनुम	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम
१९. अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्	२०. अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

२१. अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्	२२. अधोक्	अदुग्धाम्	अधुक्षन्
अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत	अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत
अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम	अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम

विधिलिङ्ग लकार

१. याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्	२. शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
याचेय	याचेवहि	याचेमहि	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम
३. तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः	४. ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम
५. रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः	६. शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम
७. स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयुः	८. बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
स्तुयाः	स्तुयातम्	स्तुयात	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम
९. जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः	१०. यतेत	यतेयाताम्	यतेरन्
जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात	यतेथाः	यतेयाथाम्	यतेध्वम्
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	यतेय	यतेवहि	यतेमहि
११. वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्	१२. जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि	जायेय	जायेवहि	जायेमहि
१३. चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	१४. विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	विद्याम्	विद्याव	विद्याम
१५. रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	१६. छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः
रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात
रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम
१७. तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	१८. क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

१९.	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः	२०. जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम
२१.	बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः	२२. दुह्यात्	दुह्याताम्	दुह्युः
	बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात	दुह्याः	दुहुयातम्	दुह्यात
	बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम	दुह्याम्	दुह्याव	दुह्याम

लुङ् लकार

१.	अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयाचिषत	२. अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
	अयाचिष्टाः	अयाचिषाथाम्	अयाचिद्वम्	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
	अयाचिषि	अयाचिष्वहि	अयाचिष्महि	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म
३.	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः	४. अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्
	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात	अवोचः	अवोचतम्	अवोचत
	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम	अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम
५.	अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः	६. अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
	अरोदीः	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट	अशिषः	अशिषतम्	अशिषत
	अरोदिषम्	अरोदिष्व	अरोदिष्मः	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम
७.	अस्तावीत्	अस्ताविष्टाम्	अस्ताविषुः	८. अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः
	अस्तावीः	अस्ताविष्टम्	अस्ताविष्ट	अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट
	अस्ताविषम्	अस्ताविष्व	अस्ताविष्म	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म
९.	अहौषीत्	अहौष्टाम्	अहौषुः	१०. अयतिष्ट	अयतिषाताम्	अयतिषत
	अहौषीः	अहौष्टम्	अहौष्ट	अयतिष्ठाः	अयतिषाथाम्	अयतिध्वम्
	अहौषम्	अहौष्व	अहौष्म	अयतिषि	अयतिष्वहि	अयतिष्महि
११.	अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत	१२. अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
	अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिद्वम्	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिध्वम्
	अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि
१३.	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः	१४. अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः
	अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट	अवेदीः	अवेदिष्टम्	अवेदिष्ट
	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म	अवेदिषम्	अवेदिष्व	अवेदिष्म
१५.	अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सुः	१६. अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः
	अरौत्सीः	अरौद्धम्	अरौद्ध	अच्छैत्सीः	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त
	अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म	अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म

१७.	अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषुः	१८. अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः
	अतानीः	अतानिष्टम्	अतानिष्ट	अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट
	अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म	अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म
१९.	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः	२०. अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
	अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म
२१.	अभान्त्सीत्	अबान्द्धाम्	अभान्त्सुः	२२. अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्
	अभान्त्सीः	अबान्द्धम्	अबान्द्ध	अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत
	अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म	अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम

उपर्युक्त धातुरूपों को हमने लकार के अनुसार उद्धृत किया है। छात्रों को इनमें साम्य वैषम्य देखकर लाल स्याही से अंकित करते हुए स्मरण करना चाहिए। इस प्रकार याद करने से उनके समय और शक्ति दोनों बचेंगे।

केवल लट् लकार में धातुओं का अर्थसहित उल्लेख किया गया है, उसके बाद क्रमशः लोट् लकार, लङ्, विधिलिङ्ग तथा लुङ् लकारों में धातुओं का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु क्रम लट् लकार का ही अपनाया गया है। इन धातु रूपों का आगे अनुवाद करते समय भी उपयोग होगा। अतः इन्हें ध्यानपूर्वक स्मरण कर लें।

धातुरूपों को स्मरण करने के लिए छात्रों को देखना चाहिए कि कहाँ विसर्गों का प्रयोग होगा, कहाँ हलन्त का और कहाँ हलन्त और विसर्गों में से किसी का भी प्रयोग नहीं होगा।

१५. संस्कृत अनुवाद की सरलतम विधि

पाठ १

संस्कृत अनुवाद एक कला है। यदि आप इस कला से परिचित होना चाहते हैं तो (भले ही आप संस्कृत के विषय में कुछ नहीं जानते, किन्तु सीखने की इच्छा रखते हैं) आइये हमारे साथ केवल पन्द्रह दिन, प्रतिदिन एक घण्टा। निश्चय ही आपकी यह धारणा बदल जाएगी कि संस्कृत कठिन है। शर्त केवल ये है कि आज के पाठ को कल पर न छोड़ें, रोज का रोज याद कर लें।

किसी भी वाक्य में कर्ता और क्रिया प्रमुख होते हैं। जैसे— वह पढ़ता है। यहाँ 'वह' कर्ता है तथा 'पढ़ता है' क्रिया पद है। संस्कृत में सभी कर्ता 'पुरुष' कहलाते हैं और उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जाता है— प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष।

(१) **कर्ता-ज्ञान**— उत्तम पुरुष में केवल मैं, मध्यम पुरुष में तू या तुम तथा प्रथम पुरुष में शेष सभी कर्ता प्रयुक्त होते हैं। जैसे—

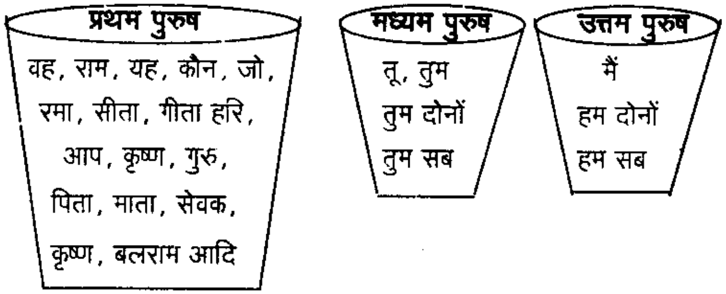

यहाँ तक कि 'आप' भी 'प्रथम पुरुष' में ही प्रयुक्त होता है।

(२) **वचन-ज्ञान**— यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि उक्त तीनों पुरुषों के एकवचन, द्विवचन तता बहुवचन तीन भेद हो जाते हैं। यदि काम करने वाला एक है तो एकवचन। यदि काम करने वालों की संख्या दो है तो द्विवचन तथा यदि कर्ता तीन या तीन से अधिक हैं तो बहुवचन का प्रयोग करेंगे। जिसे इस प्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं—

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष-	वह = सः	वे दोनों = तौ	वे सब = ते
	वह (स्त्री) = सा	वे दोनों (स्त्री) = ते	वे सब (स्त्री) = ताः
	कौन = कः	कौन दोनों = कौ	कौन सब = के
	यह = अयम्	ये दोनों = इमौ	ये सब = इमे
	वह (पुस्तक) = तत्	वे दोनों (पुस्तकें) = ते	वे सब (पुस्तकें) = तानि
	राम = रामः	दो राम = रामौ	बहुत से राम = रामाः
	रमा = रमा	दो रमा = रमे	बहुत सी रमा = रमाः
	आप = भवान्	आप दोनों = भवन्तौ	आप सब = भवन्तः
	आप (स्त्री) = भवती	आप दोनों (स्त्री) = भवत्यौ	आप सब (स्त्री) = भवत्यः
मध्यम पुरुष-	तू या तुम = त्वम्	तुम दोनों = युवाम्	तुम सब = यूयम्
उत्तम पुरुष-	मैं = अहम्	हम दोनों = आवाम्	हम सब = वयम्

विशेष— उपर्युक्त कर्ताओं को पुरुष एवं वचन के साथ पूर्ण शुद्ध रूप से स्मरण कर लेना चाहिए, क्योंकि छात्र प्रायः इनका प्रयोग करते समय विसर्ग हलन्त अथवा मात्रा की गलती करते हैं। जैसे— वे युवाम् पर दीर्घ ऊ 'यूवाम्' तथा यूयम् पर ह्रस्व उ का प्रयोग करके 'युयम्' लिखते है, जो गलत है। साथ ही वे हलन्त आदि का भी विशेष ध्यान नहीं रखते हैं। अतः संस्कृत अनुवाद सीखने से पहले इनका ठीक प्रकार से प्रयोग पुरुष आदि का ठीक-ठीक ज्ञान अत्यावश्यक है।

(३) **हलन्त और विसर्ग**— इसी प्रसङ्ग में हलन्त ओर विसर्ग के बारे में बताना भी उचित होगा। किसी वर्ण के अन्त में दो बिन्दु (:) प्रयोग किए जाने को विसर्ग कहते हैं। इसके उच्चारण में 'ह' की ध्वनि का आभास होता है। इसका उच्चारण मुख में कण्ठ से किया जाता है। जैसे— सः = वह।

अन्त में प्रयुक्त व्यञ्जन के नीचे टेढ़ी लाइन (म्) को हलन्त कहा जाता है। इसका प्रयोजन जिसके नीचे प्रयोग किया जाता है, में स्वर के अभाव को प्रदर्शित करना होता है, क्योंकि म का विच्छेद म् + अ किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार हम किसी भी व्यञ्जन से उसमें स्थित स्वर को निकाल कर प्रदर्शित कर सकते हैं।

अतः जिस व्यञ्जन पर भी हलन्त का प्रयोग किया जाए तो उसका अर्थ है— उस व्यञ्जन में स्वर नहीं है। जैसे— वयम् = हम सब, यहाँ म् हलन्त युक्त कहा जाएगा। इसे हम उससे पूर्व वर्ण पर अनुस्वार लगाकर भी प्रदर्शित कर सकते हैं। जैसे— वयं, किन्तु यदि 'वयम' लिखेंगे तो गलत होगा।

(४) **स्मरण करने की सरल विधि**— संस्कृत शब्दों को स्मरण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि इन्हें 'सः' का अर्थ है 'वह', इस रूप में याद न करके 'वह' के लिए शब्द प्रयुक्त होगा 'सः' इस प्रकार याद करने का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा करने से अनुवाद करते समय प्रयोग में सुविधा रहेगी। जैसे— 'आज' की संस्कृत है— 'अद्य'। इस रूप में यदि हमें याद है तो जब अनुवाद में आज शब्द आएगा तो हमें, अद्य तुरन्त स्मरण आ जाएगा, जिसके प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं होगी। धातुओं को याद करते समय भी इसी बात को ध्यान में रखें।

(५) **क्रियाओं का ज्ञान**— अभी हमनें ऊपर बताया कि वाक्य में कर्ता और क्रिया दो प्रमुख तत्त्व हैं। क्रिया के लिए संस्कृत में धातुओं का प्रयोग किया जाता है। जैसे— 'चलना' क्रिया के लिए √चल् धातु, 'खेलना' के लिए √खेल् अथवा √क्रीड् तथा 'हँसना' के लिए √हस्।

संस्कृत में लगभग २००० धातुएँ प्रयुक्त हुई हैं, किन्तु प्रयोग की दृष्टि से केवल १०० धातुओं से कार्य चल जाता है।[१] अतः उन धातुओं को भलीप्रकार याद कर लेना चाहिए। धातु शब्द के प्रयोग की अपेक्षा शब्द से पूर्व (√) इस प्रकार के चिह्न का प्रयोग करना चाहिए। जैसे— पठ् धातु लिखने की अपेक्षा √पठ् लिखना अधिक उचित है।

विशेष— धातुओं के विषय में एक बात और ध्यान देने योग्य है— 'सभी धातुओं के अन्त में यदि व्यञ्जन हो तो उसे हलन्त करते हैं।' जैसे— √गम् - जाना।

---

१. अनुवाद के अन्त में उन धातुओं की अर्थ सहित सूची दी गई है।

(६) **लिङ्ग-ज्ञान**— संस्कृत में तीन लिङ्ग होते हैं— पुल्लिंग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग। जिन शब्दों से पुरुष जाति का बोध होता है, वे पुल्लिंग कहलाते हैं। जैसे— राम कहने से पुरुष का बोध हो रहा है। अतः राम पुल्लिंग हुआ। इसी प्रकार जिनके कहने पर स्त्री जाति का बोध हो, वे स्त्रीलिङ्ग कहलाते हैं। जैसे— कमला कहने पर स्त्री का बोध हो रहा है। अतः यह स्त्रीलिङ्ग कहलाएगा।

ठीक इसी प्रकार कुछ शब्द निर्जीव पदार्थों के द्योतक हैं जो न पुल्लिंग में आते हैं और न ही स्त्रीलिङ्ग में, वे नपुंसकलिङ्ग कहलाते हैं। जैसे— पत्रम्, पुस्तकम्, जगत् आदि।[1]

(७) **क्रियाओं के पुरुष और वचन**— जिस प्रकार कर्ताओं के तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं। ठीक उसी प्रकार क्रियाएँ भी तीन पुरुष और तीन वचन वाली होती हैं। इन्हें भलीभाँति याद कर लेना चाहिए—

(लट् लकार = वर्तमानकाल) पढ़ना = √पठ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठति	पठतः	पठन्ति
मध्यम पुरुष	पठसि	पठथः	पठथ
उत्तम पुरुष	पठामि	पठावः	पठामः

(८) **काल-ज्ञान**— वर्तमान, भूत और भविष्यत तीन कालों से तो आप परिचित होंगे। जो चल रहा है, उसे वर्तमानकाल कहते हैं। संस्कृत में इस काल के वाक्यों को बनाने के लिए लट् लकार का प्रयोग करते हैं। उपर्युक्त, पठ् धातु के रूप लट् लकार में ही दिए हुए हैं। जैसे वह पढ़ता है। वह पढ़ रहा है। वर्तमान काल के वाक्य हैं।

जो व्यतीत हो चुका उसे भूतकाल कहते हैं। जैसे— उसने पढ़ा। वह गया। वह खेलता था। इस प्रकार के वाक्यों का अनुवाद बनाने के लिए लङ् लकार का प्रयोग किया जाता है। जैसे— सः अपठत्। सः अगच्छत्। सः अक्रीडत्।

जो कार्य भविष्य में होना है। जैसे— वह जायेगा। यह भविष्यकाल का वाक्य कहा जाएगा तथा इसे बनाने के लिये लृट् लकार का प्रयोग करेंगे। सः गमिष्यति। सा पठिष्यति (वह पढ़ेगी)।

इसके अतिरिक्त संस्कृत अनुवाद में आज्ञाकाल (लोट् लकार), चाहिए अर्थ में (विधिलिङ्ग लकार) का भी प्रयोग किया जाता है। उनका उल्लेख हम बाद में करेंगे।

सर्वप्रथम हम अनुवाद का प्रारम्भ वर्तमान-काल के वाक्यों से करते हैं—

वर्तमान-काल की पहचान— यदि वाक्य के अन्त में **ता है**, **ती हैं**, **ते हैं** अथवा **रहा है**, **रही है**, **रहे हैं** या केवल **है** या **हैं** आए तो हमें जानना चाहिए कि

१. संस्कृत में लिङ्गज्ञान के लिए अधिकाधिक अध्ययन अपेक्षित है।

वाक्य वर्तमान-काल का है। ऐसे वाक्यों का अनुवाद करने के लिए हम लट् लकार का प्रयोग करेंगे।

अब मान लीजिए हमें अनुवाद करना है– वह पढ़ता है। तो इसके लिए हमें इस क्रम से निम्न बातों पर विचार करना होगा—

१. वाक्य किस काल का है?

२. उस काल में किस लकार का प्रयोग करेंगे?

३. वाक्य में क्रिया क्या प्रयुक्त हुई है?

४. उस क्रिया के लिए किस धातु का प्रयोग होगा?

५. उस धातु के उस लकार में किस प्रकार रूप चलेंगे?

६. वाक्य का कर्ता कौन है? उसका पुरुष और वचन?

अब हम उक्त वाक्य के परिप्रेक्ष्य में उपर्युक्त बिन्दुओं पर विचार करते हैं।

१. क्योंकि वाक्य के अन्त में 'ता है' का प्रयोग हुआ है, इसलिए ऊपर बताई गई पहचान के आधार पर यह वाक्य वर्तमान काल का हुआ।

२. वर्तमान काल में लट् लकार का प्रयोग होगा।

३. वाक्य में 'पढ़ना' क्रिया का प्रयोग हुआ है।

४. 'पढ़ना' क्रिया के लिए 'पठ्' धातु का प्रयोग होता है।

५. √पठ् धातु के वर्तमानकाल अर्थात् लट् लकार में रूप चलते हैं— पठति, पठतः, पठन्ति इत्यादि।

६. वाक्य का कर्ता है, 'वह'। जो प्रथम पुरुष का है एवं एक होने से हुआ 'एकवचन' अर्थात् 'वह', 'प्रथम पुरुष, एकवचन का कर्ता हुआ। इसके बाद इस नियम को याद करें—'

महत्त्वपूर्ण नियम— जिस पुरुष और वचन का कर्ता होता है, उसी पुरुष और वचन की क्रिया का प्रयोग करेंगे।

उपर्युक्त वाक्य में कर्ता प्रथम पुरुष, एकवचन का होने से क्रिया भी प्रथम पुरुष, एकवचन 'पठति' का ही प्रयोग करेंगे। इसलिए 'वह पढ़ता है', वाक्य का संस्कृत अनुवाद हुआ, 'सः पठति', क्योंकि वह की संस्कृत है— सः।

उक्त बिन्दुओं के आधार पर निम्न वाक्यों का भी अभ्यास करें—

अभ्यास १— वह पढ़ता है, २. तुम पढ़ते हो, ३. मैं पढ़ता हूँ, ४. तुम दोनों प[illegible], ५. तुम सब पढ़ते हो, ६. वे दोनों पढ़ते हैं, ७. हम दोनों पढ़ते हैं, ८. वे सब पढ़ते हैं, ९. हम सब पढ़ते हैं, १०. हरि पढ़ता है, ११. राम पढ़ता है, १२. रमा पढ़ती है, १३. कौन पढ़ता है, १४. कमला पढ़ती है, १५. आप पढ़ते हैं, १६. आप दोनों पढ़ते हैं, १७. आप सब पढ़ती हैं, १८. आप सब

पढ़ते हैं, १९. वह पढ़ती है, २०. वे दोनों पढ़ती हैं, २१. वे सब पढ़ती हैं, २२. यह पढ़ता है, २३. ये दोनों पढ़ते हैं, २४. ये सब पढ़ते हैं, २५. कौन पढ़ते हैं।

अब देखें क्या आपने अनुवाद ठीक किया है—

१. सः पठति २. त्वम् पठसि ३ अहम् पठामि ४. युवाम् पठथः ५. यूयम् पठथ ६. तौ पठतः ७. आवाम् पठावः ८. ते पठन्ति ९. वयम् पठामः १०. हरिः पठति ११. रामः पठति १२. रमा पठति १३. कः पठति १४. कमला पठति १५. भवान् पठति १६. भवन्तौ पठतः १७. भवत्यः पठन्ति १८. भवन्तः पठन्ति १९. सा पठति २०. ते पठतः २१ ताः पठन्ति २२. अयम् पठति २३. इमौ पठतः २४. इमे पठन्ति २५. के पठन्ति।

ध्यान रखें— १. हरिः, रामः आदि पदों पर यदि आपने विसर्गों का प्रयोग नहीं किया तो वाक्य गलत होगा, क्योंकि यहाँ विसर्ग सुप् प्रत्यय का रूप है। इस प्रत्यय के प्रयोग के बिना 'हरि' पद संज्ञा वाला न होने से प्रयोग के योग्य ही नहीं होगा (**नापदं प्रयुञ्जीत–** जो पद नहीं उसका प्रयोग नहीं करते हैं)।

२. रमा, कमला, सा आदि स्त्रीलिङ्ग पदों पर विसर्गों का प्रयोग नहीं करेंगे, क्योंकि प्रथमा विभक्ति, एकवचन में इनके ये ही रूप बनेंगे।

३. वाक्य संख्या २० में 'ते' के साथ 'पठतः' क्रिया पद का प्रयोग होने पर शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यहाँ 'ते' स्त्रीलिङ्ग (तत्) का द्विवचन का रूप है, रूप चलेंगे– सा, ते, ताः।

'राम' शब्द के रूप[१] (अकार, राम् + अ, अकार है अन्त में जिसके, पुल्लिंग)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा विभक्ति	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया विभक्ति	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया विभक्ति	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी विभक्ति	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी विभक्ति	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी विभक्ति	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी विभक्ति	रामे	रामयोः	रामेषु

सभी अकारान्त पुल्लिंग शब्दों के रूप राम के समान ही चलेंगे। जैसे– बालक, नर, वानर, (बन्दर), मनुष्य, अश्व, सूर्य, चन्द्र, सुर, असुर, गज, मेघ, छात्र, अध्यापक, नृप, पर्वत, आश्रम, समुद्र, मृग, भ्रमर, सिंह, वक, अनल,

१. इन शब्दरूपों का अनुवाद में अत्यधिक प्रयोग होगा अतः ध्यानपूर्वक स्मरण कर लें।

ग्राम, कर (हाथ) मोदक (लड्डू), चतुर, पवन, विद्यालय, जनक, पुत्र, कपोत, काक आदि।

इन शब्दों का बोल कर अभ्यास करें। जैसे— समुद्रः, समुद्रौ, समुद्राः, इत्यादि।

पाठ २

आपने √पठ् = पढ़ना धातु के लट् लकार के रूप भलीभाँति याद कर लिए हैं। उसी आधार पर निम्न धातुओं को भी लिखकर याद करें—

(१) हँसना = √हस्, (२) चलना = √चल् , (३-४) खेलना = √क्रीड्, √खेल्, (५) बोलना = √वद्, (६) घूमना = √अट्, (७) गिरना = √पत्, (८) रक्षा करना = √रक्ष्, (९) पढ़ना = √पठ्, (१०) घूमना = √भ्रम्

१. हसति	हसतः	हसन्ति	२. चलति	चलतः	चलन्ति
हससि	हसथः	हसथ	चलसि	चलथः	चलथ
हसामि	हसावः	हसामः	चलामि	चलावः	चलामः
३. क्रीडति	क्रीडतः	क्रीडन्ति	४ खेलति	खेलतः	खेलन्ति
क्रीडसि	क्रीडथः	क्रीडथ	खेलसि	खेलथः	खेलथ
क्रीडामि	क्रीडावः	क्रीडामः	खेलामि	खेलावः	खेलामः
५. वदति	वदतः	वदन्ति	६. अटति	अटतः	अटन्ति
वदसि	वदथः	वदथ	अटसि	अटथः	अटथ
वदामि	वदावः	वदामः	अटामि	अटावः	अटामः
७. पतति	पततः	पतन्ति	८. रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति
पतसि	पतथः	पतथ	रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ
पतामि	पतावः	पतामः	रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः

एक विशेष— धातु रूपों को याद करने मे छात्र प्रायः विसर्गों के प्रयोग में भूल करते हैं, वे भूल जाते हैं कि कहाँ विसर्गों का प्रयोग होगा और कहाँ नहीं। यहाँ हम उनके लिए एल विधि (L) का प्रयोग बता रहे हैं। जिसे समझने के बाद वे लट् लकार तथा लृट् लकार (भविष्यत काल) में विसर्गों की गलती से बच सकेंगे।

एल विधि (L)— 'लट्' और 'लृट्' दोनों लकारों में यदि हम द्विवचन के धातु रूपों के ऊपर एक एल (L) की आकृति का चिह्न बना दें, तो वह चिह्न जिन-जिन शब्दों का स्पर्श करेगा, केवल उन-उन शब्दों में विसर्गों का प्रयोग करेंगे।'

आइये अब हम उपर्युक्त क्रियाओं के आधारपर कुछ वाक्यों का अभ्यास करें।

अभ्यास २— (१) वह हँसता है। (२) तुम दोनों चलते हो। (३) वे खेलते हैं। (४) मैं बोलता हूँ। (५) तुम सब घूमते हो। (६) वह रक्षा करता है। (७) मैं गिरता हूँ। (८) हम सब खेलते हैं। (९) हम सब हँसते हैं। (१०) वह हँसती है। (११) वे

पढ़ती हैं। (१२) वे चलते हैं। (१३) तुम बोलते हो। (१४) मैं रक्षा करता हूँ। (१५) वे गिरते हैं।

परीक्षण करें, क्या आपने अनुवाद ठीक बनाया है—

१. सः हसति। २. युवाम् चलथः। ३. ते क्रीडन्ति (खेलन्ति)। ४. अहम् वदामि। ५. यूयम् अटथ। ६. सः रक्षति। ७. अहम् पतामि। ८. वयं खेलामः। ९. वयं हसामः। १०. सा हसति। ११. ताः पठन्ति। १२. ते चलन्ति। १३. त्वम् वदसि। १४. अहम् रक्षामि। १५. ते पतन्ति।

ध्यान देवें— १. संस्कृत में 'हसति' क्रिया पद का अर्थ ही है - 'हँसता है,' इसलिए वाक्यों में 'है' की संस्कृत अलग से नहीं बनेगी।

२. इसी प्रकार 'रक्षामि' का अर्थ ही 'रक्षा करता हूँ' होगा। उसका अनुवाद 'रक्षां करोमि' ठीक नहीं होगा, वैसे किया जा सकता है।

३. संस्कृत में लिङ्ग का क्रिया पर प्रभाव नहीं पड़ता **जैसे—** वह पढ़ती है– सा पठति और वह पढ़ता है– सः पठति। दोनों मे 'पठति' क्रियापद प्रयुक्त हुआ है।

४. छात्रों की एक जिज्ञासा रहती है। अनुवाद करते समय म् को अनुस्वार लगाकर 'वयं' इस प्रकार लिखें या 'वयम्' इस प्रकार। इसका उत्तर है– 'यदि बाद में व्यञ्जन वर्ण प्रयुक्त हुआ है तो म् को 'मोऽनुस्वारः' सूत्र से अनुस्वार होगा, किन्तु अब सरलता की अभिव्यक्ति के कारण म् बनाकर लिखने का भी प्रचलन हो गया है।

'हरि' शब्द के रूप, इकारान्त (हर् + इ, इकार है अन्त में जिसके) पुल्लिंग

प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु

शब्द रूप याद करने की सरल विधि— (१) प्रायः छात्र शब्द रूप याद करते समय हरिः हरी हरयः प्रथमा, इस प्रकार बोलते हैं। जो ठीक नहीं है, क्योंकि इससे समय और क्षमता दोनों का अधिक प्रयोग होता है। इसके स्थान पर यदि हम अपनी अंगुली पर गिनते हुए याद करें तो अपेक्षाकृत कम समय में याद होगा, क्योंकि प्रथमा, द्वितीया के स्थान पर हम केवल प्रथमा में अंगुली के पहले पोरखे

पर दूसरी अंगुली को लाएँगे, बोलेंगे नहीं और इस विधि से अधिक समय तक स्मरण भी रहेगा, क्योंकि हमें याद करते समय यह ध्यान रहेगा कि तृतीया, एकवचन में 'हरि' का 'हरिणा' रूप बनेगा। इसी प्रकार सभी शब्द रूपों को याद करें।

(२) शब्द रूपों को याद करते समय एक बात और ध्यान रखनी चाहिए। सभी शब्द रूपों को ध्यान से देखें। यहाँ कुछ स्थानों पर एक से अधिक विभक्तियों में एक जैसे रूप चलते हैं। जैसे—द्विवचन-प्रथमा, द्वितीया विभक्ति; तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी विभक्ति; षष्ठी और सप्तमी विभक्तियों मे एक जैसे रूप प्रयुक्त हुए हैं। ठीक इसी प्रकार एकवचन — पञ्चमी और षष्ठी में एक समान तथा बहुवचन-चतुर्थी और पञ्चमी में एक जैसे रूप बनते हैं। अन्य रूपों में भी अत्यधिक साम्य है। इस साम्य, वैषम्य को समझकर याद करने से शब्द रूपों को रटने से बचा जा सकेगा।

सभी इकारान्त, पुल्लिंग शब्दों के रूप हरि शब्द के अनुसार ही चलेंगे। अतः इनका भी बोलकर तथा लिखकर अभ्यास करें— जैसे - कपि, मुनि, भूपति, कवि, ऋषि, निधि, गिरि, अरि, अग्नि, रवि, पाणि (हाथ), अतिथि, मणि, यति (सन्यासी), विधि (ब्रह्मा), जलधि, मरीचि, व्याधि आदि।

विशेष— आपको शब्द रूप केवल स्मरण करने हैं। इनके प्रयोगों को हम आगे बताएँगे।

यहाँ तक आप कर्ता और क्रिया के प्रयोग को भलीप्रकार समझ गए होंगे। अलग-अलग क्रियाओं का प्रयोग करते हुए स्वयं वाक्य बनाएँ और अनुवाद करें। जैसे— वह जाता है, वह पीता है, वह देता है। एक ही क्रिया का प्रयोग अलग-अलग कर्ताओं के साथ करने से अनेक वाक्य बन सकते हैं।

अब हम अगले पाठ में अव्यय शब्दों के प्रयोग को बताएँगे।

पाठ ३

इसके बाद हमें अनुवाद करना है— 'वह अब क्यों खेलता है', इस वाक्य का। 'वह खेलता है', इसका अनुवाद हम 'सः खेलति या क्रीडति' बना चुके हैं। प्रश्न उठता है, यहाँ प्रयुक्त 'अब' और 'क्यों' पदों का अनुवाद कैसे बनाया जाए? बड़ा असान है, कुछ शब्दों को याद कीजिए—

१. अब = अधुना, २. क्यों = कथम्, ३. कब = कदा, ४. जब = यदा, ५. नहीं = न, ६. यहाँ = अत्र, ७. वहाँ = तत्र, ८. कहाँ = कुत्र, ९. जहाँ = यत्र, १०. आज = अद्य, ११. क्या = किम्।

हम देखते हैं कि 'अब' की संस्कृत है - 'अधुना' और 'क्यों' की संस्कृत है– 'कथम्'। ये अव्यय शब्द होने के कारण ज्यों के त्यों प्रयुक्त होंगे अर्थात् इनके रूप

नहीं चलते हैं और तब अनुवाद होगा - सः अधुना कथं क्रीडति। इसी प्रकर अन्य अव्यय शब्दों के प्रयोगों को भी समझना चाहिए।

इस प्रसङ्ग में एक बात और विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यदि वाक्य 'वह अब क्यों खेल रहा है,' होता तो भी 'सः अधुना कथं क्रीडति' ही अनुवाद होता। 'रहा है' की अलग संस्कृत बनाने की आवश्यकता नहीं है।

इसके अतिरिक्त यदि उक्त वाक्य में हम शब्दों के क्रम को बदल भी दें तो भी वाक्य गलत नहीं होगा। जैसे— सः क्रीडति अधुना कथम्, क्रीडति सः कथमधुना, कथं सः अधुना क्रीडति इत्यादि किसी भी प्रकार अनुवाद बनाया जा सकता है। इसके विपरीत अंग्रेजी अथवा हिन्दी में ऐसा प्रयोग सम्भव नहीं है।आइये कुछ अव्यय शब्दों का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाएँ—

अभ्यास ४— १. वह अब यहाँ क्यों पढ़ता है, २. तुम दोनों वहाँ क्यों हँसते हो, ३. क्या वह खेलता है, ४. तुम सब अब क्यों नहीं पढ़ते हो, ५. हम दोनों वहाँ नहीं घूमते हैं, ६. आज वे दोनों क्यों पढ़ रहे हैं, ७. राम जहाँ पढ़ता है, वहाँ बोलता नहीं है, ८. रमा क्यों नहीं चल रही है, ९. आज यहाँ पत्ते (पत्राणि) नहीं गिर रहे हैं, १०. वह आज वहाँ रक्षा क्यों नहीं कर रहा है।

परीक्षण करें— क्या आपने अनुवाद ठीक किया है?

१. सः अधुना अत्र कथं पठति, २. युवाम् तत्र कथं हसथः, ३. किं सः क्रीडति, ४. यूयम् अधुना कथं न पठथ, ५. आवाम् तत्र न अटावः, ६. अद्य तौ कथं पठतः, ७. रामः यत्र पठति, तत्र न वदति, ८. रमा कथं न चलति, ९. अद्य अत्र पत्राणि न पतन्ति, १०. सः अद्य तत्र कथं न रक्षति।

* * **गुरु** शब्द के रूप (उकारान्त, पुल्लिंग) (गुर् + उ उकार है अन्त में जिसके)[१]

प्रथमा	गुरुः	गुरू	गुरवः
द्वितीया	गुरुम्	गुरू	गुरून्
तृतीया	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः
चतुर्थी	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
पञ्चमी	गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
षष्ठी	गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्
सप्तमी	गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु

१. * चिह्न का अभिप्राय है– इसे स्मरण अवश्य कर लें।

इन शब्द रूपों में एक बात का विशेष ध्यान रखें कि यहाँ कुछ स्थलों पर दीर्घ 'ऊ' प्रयुक्त हुआ है जिसे इस चिह्न द्वारा (रू) प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार प्रयोग न करने पर (रु) वह ह्रस्व उ होगा।

इसी प्रकार अन्य उकारान्त पुल्लिंग शब्दों के रूपों का भी अभ्यास करें, बोलकर तथा लिखकर। जैसे— शिशु, भानु, वायु, मृदु (कोमल), तरु (वृक्ष), पशु, मृत्यु, साधु, बाहु, इन्दु, रिपु, विष्णु, सिन्धु, शम्भु, ऋतु, बन्धु, जन्तु, वेणु आदि।

पाठ ४

आइये, कुछ अन्य अव्यय शब्द और धातुएँ स्मरण करें—

अव्यय शब्द— १२. रोज = प्रतिदिनम्, १३. भी = अपि, १४. बहुत = अति, अतीव, १५. बस = अलम्, १६. व्यर्थ ही = व्यर्थमेव, १७. ही = एव १८. शीघ्र = सद्यः, १९. हमेशा = सदैव, २०. और = च, २१. अपना = स्व, २२. अथवा = वा।

धातुएँ— ११. होना = √भू, १२. जाना = √गम्, (गच्छ्), १३. देना = √दा, १४. करना = √कृ, १५. पकाना = √पच्, १६. ठहरना = √स्था (तिष्ठ), १७. होना = √अस् (भू), १८. जीतना = √जि, १९. पीना = √पा (पिब्), २०. झुकना = √नम्, २१. चाहना = √इष् (इच्छ्)।

'√पठ्' धातु के आधार पर ही इन धातुओं के रूप भी लिखकर याद करें और देखें क्या आपने रूप ठीक बनाएँ हैं—

१०.भ्रमति	भ्रमतः	भ्रमन्ति	११.भवति	भवतः	भवन्ति
भ्रमसि	भ्रमथः	भ्रमथ	भवसि	भवथः	भवथ
भ्रमामि	भ्रमावः	भ्रमामः	भवामि	भवावः	भवामः
१२.गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	१३.ददाति	दत्तः	ददति
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	ददासि	दत्थः	दत्थ
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	ददामि	दद्वः	दद्मः
१४.करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	१५.पचति	पचतः	पचन्ति
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	पचसि	पचथः	पचथ
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	पचामि	पचावः	पचामः
१६.तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति	१७.अस्ति	स्तः	सन्ति
तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ	असि	स्थः	स्थ
तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः	अस्मि	स्वः	स्मः

१८.जयति	जयतः	जयन्ति	१९.पिबति	पिबतः	पिबन्ति
जयसि	जयथः	जयथ	पिबसि	पिबथः	पिबथ
जयामि	जयावः	जयामः	पिबामि	पिबावः	पिबामः
२०.नमति	नमतः	नमन्ति	२१.इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
नमसि	नमथः	नमथ	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
नमामि	नमावः	नमामः	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

ध्यान दें— उपर्युक्त धातु रूपों में हमने कुछ धातुओं पर **स्टार चिह्नों** का प्रयोग किया है। इसका अभिप्राय है कि ये धातु रूप भिन्न रूप से चलते हैं। अतः इन्हें याद कर लें।

कुछ धातुओं के मूल रूप को आदेश हो जाता है। उसी आदेश के ही रूप चलते हैं। उनका भी विशेष ध्यान रखें जैसे √स्था को √तिष्ठ् आदेश, √पा, को √पिब् √अस्, को √भू, √इष् को √इच्छ् आदि - आदि।

आइये अब हम उपर्युक्त अव्यय शब्दों और क्रियाओं का प्रयोग करते हुए अनुवाद बनाते हैं—

अभ्यास १— १. वह यहाँ क्या करता है? २. तुम दोनों सदैव बहुत बोलते हो, ३. तुम प्रतिदिन यहाँ क्या करते हो, ४. मैं यहाँ व्यर्थ ही नहीं खेलता हूँ, ५. क्या आप भी यहाँ प्रतिदिन घूमते हैं? ६. आप क्यों हँस रही हैं? ७. मैं नहीं बोल रही हूँ, ८. आप आज क्या वहाँ नहीं जा रहे हैं? ९. वह क्या पका रहा है? १०. तुम सब क्या चाहते हो? ११. वे वहाँ क्यों जीतते हैं? १२. यह क्या है?

परीक्षण करें, क्या आपका अनुवाद ठीक है—

१. सः तत्र किं करोति? २. युवाम् सदैव अति वदथः, ३. त्वं प्रतिदिनं अत्र किं करोषि? ४. अहं अत्र व्यर्थमेव न क्रीडामि, ५. किम् भवान् अपि अत्र प्रतिदिनं भ्रमति (अटति)? ६. भवती कथं हसति? ७. अहं न वदामि, ८. भवान् अद्य किम् तत्र न गच्छति? ९. सः किं पचति? १०. यूयम् किं इच्छथ? ११. ते तत्र कथं जयन्ति? १२. इदं किं अस्ति?

* पुस्तक शब्द के रूप (अकारान्त, नपुंसकलिङ्ग) (क् + अ, अकार है अन्त में जिसके)

प्रथमा	पुस्तकम्	पुस्तके	पुस्तकानि
द्वितीया	पुस्तकम्	पुस्तके	पुस्तकानि

शेष अकारान्त पुल्लिंग (राम) के समान

इसी प्रकार अन्य अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के भी रूप चलेंगे। जैसे— पत्ता (पत्रम्), फल, मित्र, दन, कुसुम, मुख, अरण्य (वन), कमल, पुष्प, पर्ण, शस्त्र, अस्त्र, शास्त्र, बल, मूल (जड़), धन, सुख, दुःख, पाप, पुण्य, रक्त, चन्दन, सुवर्ण, नेत्र, उद्यान, वस्त्र, भोजन, कार्य, चित्र आदि।

पाठ ५

स्मरण करें कुछ अव्यय शब्द और धातुएँ—

अव्यय— २३. आजकल = अद्यत्वे, २४. इस समय = इदानीम्, सम्प्रति, २५. इधर-उधर = इतस्ततः, २६. तो = तर्हि, तु, २७. एक बार = एकदा, २८. कभी = कदाचित्, २९. इसलिए = अतः, ३०. कभी = कदापि, ३१. ठीक = सुष्ठु समीचीनम्, ३२. उसके बाद = तत्पश्चात्, ३३. क्योंकि = कुतः।

धातुएँ— २२. कहना = √कथ्, २३. खाना = √खाद्, २४. खोदना = √खन्, २५. चुराना = √चुर्, २६. छूना = √स्पृश्, २७. देखना = √दृश् (पश्य्), २८. नाचना = √नृत्, २९. त्यागना = √त्यज्, ३०. रहना = √वस्, ३१. चिल्लाना = √क्रन्द्।

इन धातुओं के रूप बिना देखे, लिखें और मिलाएँ, कोई गलती तो नहीं हुई है।

२२.कथयति	कथयतः	कथयन्ति	२३.खादति	खादतः	खादन्ति
कथयसि	कथयथः	कथयथ	खादसि	खादथः	खादथ
कथयामि	कथयावः	कथयामः	खादामि	खादावः	खादामः
२४.खनति	खनतः	खनन्ति	*२५. चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
खनसि	खनथः	खनथ	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
खनामि	खनावः	खनामः	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः
२६.स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति	२७.पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः
२८.नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति	२९.त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति
नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ	त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ
नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः	त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः
३०.वसति	वसतः	वसन्ति	३१.क्रन्दति	क्रन्दतः	क्रन्दन्ति
वससि	वसथः	वसथ	क्रन्दसि	क्रन्दथः	क्रन्दथ
वसामि	वसावः	वसामः	क्रन्दामि	क्रन्दावः	क्रन्दामः

आइये अब हम कुछ वाक्यों का अभ्यास करें—

अभ्यास ५— १. वह आजकल वहाँ इधर उधर क्यों घूमता है? २. क्या वे दोनों इस समय भी यहाँ नहीं खेल रहे हैं? ३. नहीं, वे सब तो कभी वहाँ नहीं जाते हैं। ४. एक बार तुम क्या इस समय वहाँ बैठते हो? ५. नहीं, तुम दोनों ठीक नहीं कह रहे हो मैं तो कभी भी वहाँ नहीं जाता हूँ। ६. मैं तो जहाँ भी जाता हूँ, वहीं जल पीता हूँ। ७. इस समय भी वहाँ पत्ते गिर रहे हैं। ८. हम सब तो वहाँ एक बार भी इधर-उधर नहीं घूमते हैं। ९. आप इस समय वहाँ क्या कर रहे हैं। १०. अरे, मैं तो वहाँ कुछ नहीं कर रहा हूँ।

मिलाइये अपने वाक्यों को, आपने क्या गलती की है—

१. सः अद्यत्वे तत्र इतस्ततः कथं भ्रमति (अटति)। २. किम् तौ सम्प्रति अपि अत्र न क्रीडतः (खेलतः)। ३. न, ते तु कदापि तत्र न गच्छन्ति। ४. एकदा त्वं किं इदानीं तत्र तिष्ठसि। ५. न, युवाम् सुष्ठु न कथयथः, अहं तु कदापि तत्र न गच्छामि। ६. अहं तु यत्रापि गच्छामि, तत्रैव जलं पिबामि। ७. इदानीं अपि तत्र पत्राणि पतन्ति। ८. वयं तु तत्र एकदा अपि इतस्ततः न भ्रमामः। ९. भवान् इदानीं तत्र किं करोति। १०. अरे! अहं तु तत्र किमपि न करोमि।

यहाँ तक आपने सामान्य वाक्यों का प्रयोग करते हुए कर्ता के पुरुष और वचन के अनुसार क्रिया के पुरुष तथा वचन के प्रयोग को समझा और साथ ही अव्यय शब्दों का भी प्रयोग किया। अब कुछ विशिष्ट नियमों को भी समझें—

नियम १— यदि एक ही वाक्य में एक से अधिक कर्ता एक ही पुरुष के प्रयुक्त हुए हों तो क्रिया का वचन उनकी संख्या के अनुसार होगा। जैसे— राम और हरि आजकल वहाँ कुछ नहीं बोलते हैं।

यहाँ राम और हरि, दोनों इस वाक्य के कर्ता हैं, जो प्रथम पुरुष के अन्तर्गत आते हैं। अतः इस वाक्य की क्रिया का वचन, कर्ताओं की संख्या के अनुसार द्विवचन का प्रयोग करके अनुवाद इस प्रकार करेंगे— राम : हरिः च अद्यत्वे तत्र किमपि न वदतः।

नियम २— इस वाक्य में एक बात और ध्यान देवें— 'समुच्चयबोधक 'च' शब्द का उस स्थान पर प्रयोग नहीं करते, जहाँ उसका हिन्दी वाक्य में प्रयोग होता है, अपितु उससे एक शब्द के बाद या अन्यत्र कहीं भी प्रयोग कर सकते हैं। जैसे— रामः हरिः च।

इसी प्रकार 'वह और वे दोनों वहाँ आज क्यों नहीं जा रहे हैं'? सः तौ च तत्र अद्य कथं न गच्छन्ति। इस वाक्य में कर्ताओं की संख्या कुल मिला कर तीन हो गई है तथा दोनों प्रथम पुरुष के कर्ता हैं। अतः प्रथम पुरुष बहुवचन की क्रिया 'गच्छन्ति' का प्रयोग किया गया है।

नियम ३— * प्रथम पुरुष की अपेक्षा मध्यम पुरुष तथा मध्यम पुरुष की अपेक्षा उत्तम पुरुष बलवान् होता है।अतः यदि एक ही वाक्य में प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष के कर्ता प्रयुक्त हुए हों तो क्रिया मध्यम पुरुष की प्रयोग करेंगे और वचन उनकी संख्या के अनुसार। जैसे—क्या कमला और तुम आजकल वहाँ नहीं नाचते हो? किं कमला त्वं च अद्यत्वे तत्र न नृत्यथः।

यहाँ 'कमला' प्रथम पुरुष की कर्ता है और 'तुम' मध्यम पुरुष का। अतः उक्त नियम के अनुसार प्रथम पुरुष की अपेक्षा मध्यम पुरुष बलवान् होने से क्रिया मध्यम पुरुष, द्विवचन की प्रयोग की गई है, क्योंकि कर्ताओं की संख्या दो है। यदि यही वाक्य इस प्रकार होता कि–हरि और तुम दोनों अब वहाँ क्यों खेलते हो? तो अनुवाद इस प्रकार करेंगे—हरिः युवाम् च अधुना तत्र कथं क्रीडथ।

यहाँ 'हरि' और 'तुम दोनों' कर्ताओं को मिला कर उनकी संख्या तीन हो गई। अतः क्रिया मध्यम पुरुष, बहुवचन की प्रयोग करके अनुवाद किया। यदि कर्ताओं की संख्या तीन या तीन से अधिक हो तो बहुवचन का प्रयोग करते हैं।

इसी प्रकार 'राम, तुम और मैं अब कभी भी वहाँ नहीं चलते हैं', का अनुवाद होगा— रामः त्वं अहं च अधुना कदापि तत्र न चलामः।

इस वाक्य में 'राम' प्रथम पुरुष का कर्ता है, 'तुम' मध्यम पुरुष का और 'मैं' उत्तम पुरुष का कर्ता है। अतः इसका अनुवाद नियम संख्या ३ के अनुसार उत्तम पुरुष, बहुवचन की क्रिया 'चलामः' का प्रयोग करके बनाया गया है।

आइये उक्त नियमों का प्रयोग करते हुए कुछ वाक्यों का अभ्यास करें—

अभ्यास ६—१. क्या मैं और आप अब भी वहाँ चल रहे हैं? २. रमा और कमला भी वहाँ नहीं पढ़ती हैं। ३. वे दोनों और तुम वहाँ क्यों हँसते हो? ४. कृष्ण, सोहन और वे सब भी कहाँ जाते हैं? ५. तुम सब और मैं भी तो वहाँ कुछ नहीं करते हैं। ६. सीमा और रेखा क्या इस समय भी पढ़ रही हैं? ७. तुम दोनों और हम दोनों जहाँ जाते हैं, वहीं हँसते हैं।८. सुरेश, रमेश और गीता अपना काम रोजाना स्वयं करते हैं। ९. वह तुम और मैं वहाँ नहीं ठहरते हैं। १०. तेजस्विता और श्रुति अब कुछ नहीं खाते हैं।

अपने वाक्यों की शुद्धता का परीक्षण करें—

१. किं अहं भवान् च अधुना अपि तत्र गच्छावः। २. रमा कमला च अपि तत्र न पठतः। ३. तौ त्वं च तत्र कथं हसथ। ४. कृष्णः सोहनः ते अपि च कुत्र गच्छन्ति। ५. यूयम् अहम् चापि (च + अपि) तु तत्र किंचित् न कुर्मः। ६. सीमा रेखा च किं इदानीं अपि पठतः। ७. युवाम् आवाम् च यत्र गच्छामः तत्र एव (तत्रैव) हसामः। ८. सुरेशः रमेशः गीता च स्व कार्यं प्रतिदिनं स्वयं कुर्वन्ति। ९. सः त्वं अहं च तत्र न तिष्ठामः। १०. तेजस्विता श्रुतिः च अधुना किमपि न खादतः।

* रमा शब्द के रूप (आकारान्त, स्त्रीलिङ्ग) (रम् + आ, आकार है अन्त में जिसके)

प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	रमे	रमाः
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पञ्चमी	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	रमयोः	रमासु

इसी प्रकार बालिका, निशा, कन्या, ललना, वडवा (घोड़ी), राधा, सुमित्रा, दुर्गा, कमला, विद्या, सीमा, शोभा, कला, सुषमा, वनिता, रेखा, स्मिता, तेजस्विता, गीता, आदि के रूप भी चलते हैं। इनका अभ्यास करके इनका प्रयोग वाक्य बनाकर करें।

पाठ ६

स्मरण करें कुछ अव्यय शब्द और धातुएँ—

अव्यय– ३४. उस समय = तदानीम् ३५. किस समय = कदानीम् ३६. अगर = यदि ३७. इस प्रकार = इत्थम्, एवम् ३८. अचानक = अकस्मात् ३९. जैसे = यथा ४०. वैसे = तथा ४१. अवश्य = अवश्यम् ४२. निश्चय ही = निश्चयमेव, खलु ४३. नहीं तो = अन्यथा ४४. दूसरी जगह = अन्यत्र।

धातुएँ– ३२. ढोना = √वह् ३३. फेंकना = √क्षिप् ३४. फलना = √फल् ३५. आना = आ + √गम् (आगच्छ्) ३६. छोड़ना = √मुञ्च् ३७. उठना = उत् + √स्था (उत्तिष्ठ्) ३८. दौड़ना = √धाव् ३९. बोना = √वप् ४० भजन करना = √भज् ४१. यजन करना = √यज्।

आइये इन धातुओं के रूप भी बनाएँ, कितना आसान है—

३२.वहति	वहतः	वहन्ति	३३.	क्षिपति	क्षिपतः	क्षिपन्ति
वहसि	वहथः	वहथ		क्षिपसि	क्षिपथः	क्षिपथ
वहामि	वहावः	वहामः		क्षिपामि	क्षिपावः	क्षिपामः
३४.फलति	फलतः	फलन्ति	*३५.	आगच्छति	आगच्छतः	आगच्छन्ति
फलसि	फलथः	फलथ		आगच्छसि	आगच्छथः	आगच्छथ
फलामि	फलावः	फलामः		आगच्छामि	आगच्छावः	आगच्छामः

३६.मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति	*३७.	उत्तिष्ठति	उत्तिष्ठतः	उत्तिष्ठन्ति
मुञ्चसि	मुञ्चथः	मुञ्चथ		उत्तिष्ठसि	उत्तिष्ठथः	उत्तिष्ठथ
मुञ्चामि	मुञ्चावः	मुञ्चामः		उत्तिष्ठामि	उत्तिष्ठावः	उत्तिष्ठामः
३८.धावति	धावतः	धावन्ति	३९.	वपति	वपतः	वपन्ति
धावसि	धावथः	धावथ		वपसि	वपथः	वपथ
धावामि	धावावः	धावामः		वपामि	वपावः	वपामः
४०.भजति	भजतः	भजन्ति	४१.	यजति	यजतः	यजन्ति
भजसि	भजथः	भजथ		यजसि	यजथः	यजथ
भजामि	भजावः	भजामः		यजामि	यजावः	यजामः

ध्यान रखें कुछ नियम और—

नियम ४— संस्कृत में 'वा' अव्यय पद के प्रयोग में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। प्रथम तो इसका प्रयोग हिन्दी वाक्य में प्रयुक्त स्थान के बाद एक शब्द छोड़कर किया जाता है। जैसे— राम अथवा सीता जाती है– रामः सीता वा गच्छति। राम अथवा सोहन यहाँ पढ़ते हैं– रामः सोहनः वा अत्र पठति।

'वा' के प्रयोग में एक और सावधानी अपेक्षित है, अथवा का प्रयोग जितने कर्ताओं के बाद हुआ है। उनका प्रभाव क्रिया पद पर नहीं पड़ता है, अपितु क्रिया का पुरुष और वचन अपने सर्वाधिक निकट वाले कर्ता के अनुसार होगा। जैसे— 'तुम दोनों और मैं यह कार्य शीघ्रतापूर्वक करते हैं'– युवाम् अहम् वा इदम् कार्यम् शीघ्रतापूर्वकम् करोमि।

इस उदाहरण में कर्ता 'मैं' क्रिया 'करना' के सर्वाधिक निकट प्रयुक्त हुआ है और वाक्य में अथवा शब्द का भी प्रयोग हुआ है।अतः उपर्युक्त नियम के अनुसार क्रिया का पुरुष और वचन अपने सर्वाधिक निकट कर्ता 'मैं' के पुरुष और वचन के अनुसार 'करोमि' प्रयुक्त हुआ।

नियम ५— संस्कृत में आदर प्रकट करने के लिए अत्यन्त सुन्दर प्रकार अपनाते हैं। जैसे— सामान्यरूप से 'तुम या तू' के लिए 'त्वम्' का प्रयोग करेंगे, किन्तु यदि अपेक्षाकृत अधिक आदर प्रकट करना है तो 'आप' (भवान्) शब्द का प्रयोग करेंगे।

पुनः उससे भी अधिक आदरभाव की अभिव्यक्ति के लिए कर्ता एक वचन होने पर भी बहुवचन में प्रयोग करेंगे (**आदरार्थे बहुवचनम्**) जैसे— भवान् के स्थान पर भवन्तः।

और अधिक आदर प्रकट करने के लिए 'भवान्' पद से पूर्व, यदि व्यक्ति सामने उपस्थित है, 'अत्र' पद का प्रयोग करते हैं। जैसे— 'अत्र भवान्' किन्तु

व्यक्ति की अनुपस्थिति में उससे पूर्व 'तत्र' पद का प्रयोग करके 'तत्र भवान्' ऐसा लिखेंगे।

अपेक्षाकृत और भी अधिक आदर प्रकट करना हो तो 'अत्र' या 'तत्र' पदों के साथ-साथ बहुवचन का प्रयोग भी करेंगे। जैसे— 'अत्र भवन्तः' 'तत्र भवन्तः' इत्यादि। ये सब वस्तुतः संस्कृत भाषा की समृद्धि को ही सूचित करते हैं।

आइये, अब कुछ वाक्यों का अनुवाद बनाएँ—

अभ्यास ६— १. वह, तुम अथवा हम दोनों आज क्या कर रहे हैं। २. वे दोनों अथवा तुम दोनों वहाँ किस समय जाते हो? ३. वे सब, तुम सब अथवा आप भी आजकल बहुत हँसते हो। ४. राम, हरि अथवा सीता व्यर्थ ही इधर उधर नहीं घूमते हैं। ५. एक बार पुष्पा अथवा तुम क्या यहाँ नहीं खेलते हो? ६. क्योंकि वह अथवा तुम सब यहाँ पढ़ते हो, तभी (तदैव) मैं भी यहाँ आता हूँ। ७. उस समय आप अथवा स्मिता वहाँ अवश्य जाते हैं। ८. तुम क्या कर रहे हो? ९. आप भी क्या खेलते हैं? १०. आप एक चरित्रवान् युवक हैं (आदरभाव)।

परीक्षण करें, क्या अनुवाद ठीक बनाया है?

१. सः त्वम् आवाम् वा अद्य किम् कुर्वः? २. तौ युवाम् वा तत्र कदानीम् गच्छथः? ३. ते यूयम् भवान् अपि वा अद्यत्वे अति हसति। ४. रामः हरिः सीता वा व्यर्थमेव इतस्ततः न भ्रमति। ५. एकदा पुष्पा त्वम् वा किम् अत्र न क्रीडसि? ६. कुतः सः यूयम् वा अत्र पठथ, तदैव अहम् अपि अत्र आगच्छामि। ७. तदानीम् भवान् स्मिता वा तत्र अवश्यमेव गच्छति। ८. त्वम् किम् करोषि? ९. भवान् अपि किम् खेलति? १०. अत्र भवान् एकः चरित्रवान् युवकः अस्ति।

* नदी शब्द के रूप (नद् + ई, ईकारान्त, स्त्रीलिङ्ग)

प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पञ्चमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु

इसी प्रकार, गौरी, पार्वती, जानकी, नटी, देवी, अरुन्धती, पृथ्वी, नन्दिनी, अटवी, कौमुदी (चाँदनी), नलिनी, नारी, भगिनी (बहन) कादम्बरी, पञ्चवटी, देवकी आदि शब्दों के रूप भी चलेंगे।

पाठ ७

स्मरण करें कुछ अव्यय शब्द और धातुएँ—

अव्यय— ४५. तभी = तदैव ४६. अभी = अधुनापि ४७. यदि = चेत् ४८. आने वाला कल = श्वः ४९. बीता हुआ कल = ह्यः ५०. साथ = सह, साकम्, सार्धम्, समम् ५१. पहले = पुरा ५२. बार-बार = मुहुः ५३ चारों ओर = परितः ५४ दोनों ओर = उभयतः ५५. शीघ्र = शीघ्रम्, झटिति।

धातुएँ— ४२. लिखना = √लिख् ४३. सोचना = √चिन्त् ४४. माँगना = √याच् ४५. पूछना = √पृच्छ् ४६. जलना = √ज्वल् ४७. दुःख देना = √तुद् ४८ स्पर्श करना = √स्पृश् ४९ प्रवेश करना = प्र + √विश् ५०. सृजन करना = √सृज् ५१. फैलाना = √तन्।

आइये इन धातुओं के रूप भी बनाएँ—

४२. लिखति	लिखतः	लिखन्ति	४३. चिन्तयति	चिन्तयतः	चिन्तयन्ति
लिखसि	लिखथः	लिखथ	चिन्तयसि	चिन्तयथः	चिन्तयथ
लिखामि	लिखावः	लिखामः	चिन्तयामि	चिन्तयावः	चिन्तयामः
४४. याचति	याचतः	याचन्ति	* ४५. पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
याचसि	याचथः	याचथ	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
याचामि	याचावः	याचामः	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः
४६. ज्वलति	ज्वलतः	ज्वलन्ति	४७. तुदति	तुदतः	तुदन्ति
ज्वलसि	ज्वलथः	ज्वलथ	तुदसि	तुदथः	तुदथ
ज्वलामि	ज्वलावः	ज्वलामः	तुदामि	तुदावः	तुदामः
४८. स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति	* ४९. प्रविशति	प्रविशतः	प्रविशन्ति
स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ	प्रविशसि	प्रविशथः	प्रविशथ
स्पृशामि	स्पृशावः	सपृशामः	प्रविशामि	प्रविशावः	प्रविशामः
५०. सृजति	सृजतः	सृजन्ति	५१. तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
सृजसि	सृजथः	सृजथ	तनोषि	तनुथः	तनुथ
सृजामि	सृजावः	सृजामः	तनोमि	तनुवः	तनुमः

कुछ नियम और—

नियम ६— विशेषण-विशेष्य के प्रयोग का ज्ञान— जिसकी विशेषता बताई जाती है, वह विशेष्य कहलाता है। जैसे— 'सुन्दर पुष्प', यहाँ पुष्प की विशेषता बताई जा रही है कि 'वह सुन्दर [illegible]' अतः पुष्प विशेष्य हुआ तथा जो विशेषता बताई गई है, वह बताने वाला शब्द 'सुन्दर' विशेषण हुआ। इसी प्रकार बुद्धिमान् बालक, यहाँ बालक विशेष्य है और बुद्धिमान् विशेषण।

संस्कृत में जो लिङ्ग, जो वचन, जो विभक्ति विशेष्य की होती है, वही लिङ्ग, वही वचन और वही विभक्ति विशेषण की होती है।

यद् लिङ्गं यद् वचनं या च विभक्तिर्विशेष्यस्य।

तद् लिङ्गं तद् वचनं सा च विभक्तिर्विशेषणस्य।।

जैसे— यह सुन्दर बालक है। यहाँ 'बालक' पद विशेष्य है तथा 'यह' और सुन्दर पद विशेषण हैं। बालक अकारान्त पुल्लिंग होने से प्रथमा विभक्ति, एक वचन में रूप बनेगा– 'बालकः।' अतः उपर्युक्त नियमानुसार इस शब्द के विशेषण 'यह' और 'सुन्दर' पदों में भी इन्हीं लिङ्ग, वचन और विभक्ति का प्रयोग करते हुए— 'अयम्' (यह) (पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन), 'सुन्दरः' पद का प्रयोग करेंगे और तब अनुवाद होगा - 'अयम् सुन्दरः बालकः अस्ति।'

इसी प्रकार अन्य उदाहरण लें— 'यह पुस्तक बहुत अच्छी है।' यहाँ पुस्तक पद विशेष्य है, क्योंकि उसकी विशेषता बताई जा रही है और 'यह' तथा 'अच्छी' ये दोनों पद विशेषण हैं। पुस्तक पद का नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन में रूप बनेगा– पुस्तकम् एवं 'यह' और 'अच्छी' का अनुवाद उपर्युक्त नियम के अनुसार 'इदम्' (यह– नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन) 'श्रेष्ठम्' करत हुए 'इदम् पुस्तकम् अति श्रेष्ठम् अस्ति' प्रयोग करेंगे।

इसी प्रकार 'ये फूल सुन्दर हैं', का अनुवाद– 'इमानि पुष्पाणि सुन्दराणि सन्ति', 'यह बालिका सुन्दर है', का अनुवाद -'इयम् बालिका सुन्दरा अस्ति' करेंगे। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

नियम ७— यदि विशेष्यों में से कोई भी एक विशेषण नपुंसकलिङ्ग होता है तो सम्मिलित विशेष्यों का विशेषण नपुंसकलिङ्ग होता है। **जैसे—** 'वृक्ष लता तृण हरे हैं', का अनुवाद होगा— 'वृक्षाः लताः तृणानि च हरितानि सन्ति।

आइये, अब बनाएँ कुछ संस्कृत वाक्य—

अभ्यास ८— १. सज्जन लोग सदैव श्रेष्ठ कार्य करते हैं। २. यह बालक बहुत चतुर है। ३. यह लड़की अत्यन्त चंचल है। ४. सभी सुन्दर पुस्तकें यहाँ हैं। ५. हरे पत्ते गिरते हैं। ६. यह बालक बहुत मोटा है। ७. ये गीत बहुत मधुर हैं। ८. ये सभी फल मीठे हैं। ९. वे सभी स्त्रियाँ सुन्दर गीत गा रही हैं। १०. यहाँ स्वच्छ और मधुर जल बह रहे हैं। ११. ये सभी वस्त्र सुन्दर हैं। १२. यह साड़ी सुन्दर है।

आइये जांच करें, आपने वाक्य ठीक बनाएँ हैं?

१. सज्जनाः सदैव श्रेष्ठानि कार्याणि कुर्वन्ति। २. अयम् बालकः अति चतुरः अस्ति। ३. इयम् बालिका अति चंचला अस्ति। ४. सर्वाणि सुन्दराणि पुस्तकानि अत्र सन्ति। ५. हरितानि पत्राणि पतन्ति। ६. अयम् बालकः अति स्थूलः अस्ति। ७. इमानि गीतानि अति मधुराणि सन्ति। ८. इमानि सर्वाणि फलानि मधुराणि सन्ति। ९. ताः सर्वाः स्त्रियः सुन्दराणि गीतानि गायन्ति। १०. अत्र स्वच्छानि मधुराणि च जलानि वहन्ति। ११. इमानि सर्वाणि वस्त्राणि सुन्दराणि सन्ति। १२. इयम् शाटिका (साडी) सुन्दरा अस्ति।

उपर्युक्त वाक्यों में जहाँ आपने विशेषण-विशेष्यों के प्रयोग को समझा वहीं सर्वनामों के प्रयोग को भी समझना आवश्यक है। यद्यपि सर्वनाम का सीधा सम्बन्ध संज्ञा से होता है, किन्तु संस्कृत अनुवाद में छात्र प्रायः इनका अशुद्ध प्रयोग करते हैं। अतः यहाँ उसे भी समझाया जा रहा है।

नियम ८— सर्वनामों में 'यह' (इदम्), 'वह' (तत्), कौन (किम्), जो (यत्) और सर्व आदि का सर्वाधिक प्रयोग होता है। इन सभी के तीनों लिङ्गों (पुल्लिंग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग) में रूप चलते हैं।[1] जो वस्तु सामने होती है, उसके लिए 'यह' और जो अपने सामने नहीं होती, उसके लिए 'वह' का प्रयोग करते हैं। जैसे—

इदम् = **यह** बालक (अयम् बालकः)	अयम्	इमौ	इमे
(पुल्लिंग) ये दोनों बालक (इमौ बालकौ)	↓	↓	↓
ये सब बालक (इमे बालकाः)	बालकः	बालकौ	बालकाः
(स्त्रीलिङ्ग) यह लड़की (इयम् बालिका)	इयम्	इमे	इमाः
ये दोनों लड़कियाँ (इमे बालिके)	↓	↓	↓
ये सब लड़कियाँ (इमाः बालिकाः)	बालिका	बालिके	बालिकाः
(नपुंसकलिङ्ग) यह पुस्तक (इदम् पुस्तकम्)	इदम्	इमे	इमानि
ये दोनों पुस्तकें (इमे पुस्तके)			
ये सब पुस्तकें (इमानि पुस्तकानि)	पुस्तकम्	पुस्तके	पुस्तकानि
तत् = वह अध्यापक (सः अध्यापकः)	सः	तौ	ते
(पुल्लिंग) वे दोनों अध्यापक (तौ अध्यापकौ)	↓	↓	↓
वे सब अध्यापक (ते अध्यापकाः)	अध्यापकः	अध्यापकौ	अध्यापकाः

---

१. द्रष्टव्य पृ०-१६६।

(स्त्रीलिङ्ग) वह कन्या (सा कन्या)	सा	ते	ताः
वे दोनों कन्याएँ (ते कन्ये)	↓	↓	↓
वे सब कन्याएँ (ताः कन्याः)	कन्या	कन्ये	कन्याः
(नपुंसकलिङ्ग) वह वस्त्र (तत् वस्त्रम्)	तत्	ते	तानि
वे दोनों वस्त्र (ते वस्त्रे)	↓	↓	↓
वे सब वस्त्र (तानि वस्त्राणि)	वस्त्रम्	वस्त्रे	वस्त्राणि
किम् - क्या, कौन व्यक्ति (कः जनः)	कः	कौ	के
(पुल्लिंग) कौन दो लोग (कौ जनौ)	↓	↓	↓
कौन लोग (के जनाः)	जनः	जनौ	जनाः
(स्त्रीलिङ्ग) कौन सी स्त्री (का ललना)	का	के	काः
कौन दो स्त्रियाँ (के ललने)	↓	↓	↓
कौन सी स्त्रियाँ (काः ललनाः)	ललना	ललने	ललनाः
(नपुंसकलिंग) कौन सा फल (किम् फलम्)	किम्	के	कानि
कौन से दो फल (के फले)	↓	↓	↓
कौन से फल (कानि फलानि)	फलम्	फले	फलानि
यत् = जो बन्दर (यः कपिः)	यः	यौ	ये
(पुल्लिंग) जो दो बन्दर (यौ कपी)	↓	↓	↓
जो सब बन्दर (ये कपयः)	कपिः	कपी	कपयः
(स्त्रीलिङ्ग) जो कमला (या कमला)	या	ये	याः
जो दो कमला (ये कमले)	↓	↓	↓
जो सब कमला (याः कमलाः)	कमला	कमले	कमलाः

(नपुंसकलिङ्ग) जो तिनका (यत् तृणम्)	यत्	ये	यानि
जो दो तिनके (ये तृणे)	↓	↓	↓
जो सब तिनके (यानि तृणानि)	तृणम्	तृणे	तृणानि

उपर्युक्त सर्वनामों के समान ही दूसरे सर्वनामों का प्रयोग भी करना चाहिए। इन प्रयोगों से एक बात और स्पष्ट है कि सभी सर्वनामों के एक समान ही रूप बनते हैं। 'सर्व' सर्वनाम के रूपों का अभ्यास करके वाक्यों में प्रयोग करना चाहिए। एतद् = यह और अदस् = वह होता है, किन्तु इनके रूप थोड़ा क्लिष्ट होने से यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया है।

पाठ ८

आइये, स्मरण करें कुछ अव्यय शब्द और धातुएँ—

अव्यय— ५६. बीता हुआ परसों = परह्यः ५७. आने वाला परसों = परश्वः ५८. प्रातःकाल = प्रातः ५९. जब तक = यावत् ६०. तब तक = तावत् ६१. दोपहर में = मध्याह्ने ६२. तीसरे प्रहर में = अपराह्णे ६३ सन्ध्याकाल में = सायम्, सन्ध्याया ६४ फिर से = भूयः ६५. सामने = पुरतः ६६. अलग = पृथक्।

धातुएँ— ५२. गिनना = √गण् ५३. पूजना = √अर्च् ५४. दुहना = √दुह् ५५. जानना = √विद् ५६. शासन करना = √शास् ५७. स्नान करना = √स्ना ५८. सोना = √स्वप् ५९. मारना = √हन् ६०. लेना = √ग्रह् ६१. हवन करना = √हु।

इन धातुओं के रूप भी बना लें—

५२.	गणयति	गणयतः	गणयन्ति	५३.	अर्चति	अर्चतः	अर्चन्ति
	गणयसि	गणयथः	गणयथ		अर्चसि	अर्चथः	अर्चथ
	गणयामि	गणयावः	गणयामः		अर्चामि	अर्चावः	अर्चामः
* ५४.	दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	* ५५.	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
	धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध		वेत्सि	वित्थः	वित्थ
	दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः		वेद्मि	विद्वः	विद्मः
५६.	शास्ति	शिष्टः	शासति	५७.	स्नाति	स्नातः	स्नान्ति
	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ		स्नासि	स्नाथः	स्नाथ
	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः		स्नामि	स्नावः	स्नामः
५८.	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति	* ५९.	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ		हन्सि	हथः	हथ
	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः		हन्मि	हन्वः	हन्मः

६०	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति ६१.	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति
	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ	जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ
	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः	जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः

नियम ९— अनुवाद करते समय कई बार हमें 'करके' पदों का प्रयोग मिलता है। जैसे— मैं प्रातः खाकर ही जाता हूँ। इस वाक्य में हमें 'खाकर' की संस्कृत बनाते समय विशेष ध्यान देना होगा। इस प्रकार के शब्दों का अनुवाद करने के लिए हम धातु में 'क्त्वा' प्रत्यय का प्रयोग करके शब्द बनाएँगे। जैसे— खाना अर्थ में धातु प्रयुक्त होती है– √खाद् और उसमें 'क्त्वा' प्रत्यय का प्रयोग किया, बना √खाद् + क्त्वा = खादित्वा।

तब उक्त वाक्य का अनुवाद होगा = अहम् प्रातः खादित्वा एव गच्छामि। इसी प्रकार कुछ अन्य धातुओं का भी अभ्यास करें।[1]

√ईक्ष् = देखना = ईक्षित्वा (देखकर) √लिख् = लिखना = लिखित्वा (लिखकर)
√दृश् = देखना = दृष्ट्वा (देखकर) √वस् = रहना = उषित्वा (रहकर)
√नम् = नमन करना = नत्वा (झुककर) √शी = सोना = शयित्वा (सोकर)
√नी = ले जाना = नीत्वा (ले जाकर) √पा = पीना = पीत्वा (पीकर)
√ग्रह = पकड़ना = गृहीत्वा (लेकर) √प्रच्छ् = पूछना = पृष्ट्वा (पूछकर)
√घ्रा = सूंघना = घ्रात्वा (सूंघकर) √कृ = करना = कृत्वा (करके)
√पत् = गिरना = पतित्वा (गिरकर) √क्षिप् = फेंकना = क्षिप्त्वा (फेंककर)
√लभ् = प्राप्त करना =लब्ध्वा (प्राप्त करके) √त्यज्=त्यागना=त्यक्त्वा (त्यागकर)
√छिद् = काटना = छित्वा (काटकर) √ज्ञा = जानना = ज्ञात्वा (जानकर)
√भू = होना = भूत्वा (होकर) √स्पृश् = स्पर्श करना = स्पृष्ट्वा (छूकर)

नियम १०— धातु से पहले यदि उपसर्ग का प्रयोग हुआ हो तो 'करके' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग करते है।[2] ल्यप् का 'य' शेष रहता है। जैसे—

सम् + √अर्च् = समर्च्य सम् + √पूज् = संपूज्य वि + √भज् = विभज्य
प्र + √आप् = प्राप्य सम् + √ईक्ष् = समीक्ष्य सम् + √क्रुध् = संक्रुध्य
आ + √गम् = आगम्य वि + √जि = विजित्य परि + √त्यज् = परित्यज्य

आइये अब कुछ वाक्य बनाएँ—

अभ्यास ९— १. मैं प्रतिदिन प्रातः उठकर स्नान करता हूँ। २. वे सब जब तक चित्र देखकर यहाँ आ रहे हैं, तब तक हम दोनों साथ-साथ चलते है। ३

१. विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य पृ०-१२६।

२. ल्यप् के विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य पृ०-१२७।

राजा जीतकर पूजा करता है। ४. सज्जन कभी भी तीसरे प्रहर खाकर नहीं सोते हैं। ५. याज्ञिक लोग प्रतिदिन प्रातः और सायं यज्ञ करते हैं। ६. हम दोनों यहाँ आकर पढ़ते हैं। ७. सेठ (श्रेष्ठी) प्रतिदिन रूपये गिनता है। ८. मैं तो रोजाना नहाता हूँ, किन्तु मोहन कभी ऐसा (एवम्) नहीं करता है। ९. वे सब मिलकर सायंकाल दूध दूहते हैं। १०. सज्जन लोग दुष्ट को मिलकर मारते हैं।

देखें आपने क्या गलती की है, मिलाइये—

१. अहं प्रतिदिनं प्रातः उत्थाय स्नामि। २. ते यावत् चित्रं दृष्ट्वा अत्र आगच्छन्ति, तावत् आवां सहैव चलावः। ३. राजा विजित्य अर्चति। ४. सज्जनाः कदापि अपराह्णे खादित्वा न स्वपन्ति। ५. याज्ञिकाः प्रतिदिनं प्रातः सायं च यजन्ति (जुह्वति)। ६. आवाम् अत्र आगत्य पठावः। ७. श्रेष्ठी प्रतिदिनं रूप्यकाणि गणयति। ८. अहं तु प्रतिदिनं स्नामि, किन्तु मोहनः कदापि एवं न करोति। ९. ते मिलित्वा सायंकाले दुग्धं दुहन्ति। १०. सज्जनाः संमील्य दुष्टं घ्नन्ति।

स्मरण करें 'अस्मद्' शब्द के रूप—

प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

संस्कृत में उपसर्गों का अत्यन्त महत्त्व है। जिनका एक प्रयोग तो हमनें 'ल्यप्' प्रत्यय के प्रसंग में बताया। इसके अतिरिक्त धातु से पूर्व लगकर ये धातु के अर्थ में पूर्णतया परिवर्तन भी कर देते हैं। जैसे— √गम् धातु का अर्थ है– 'जाना', किन्तु यदि इससे पूर्व 'आ' उपसर्ग का प्रयोग करें तो इसी धातु का (आगम्) अर्थ 'आना' हो जाता है। इसी प्रकार √स्था धातु का अर्थ 'बैठना' है, किन्तु इससे पूर्व यदि 'उत्' उपसर्ग का प्रयोग करें तो इसी का अर्थ 'उठना' हो जाता है - उत्तिष्ठ् (उत् + √स्था)। इसीलिए कहा गया है—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत्।।

यहाँ हम उपसर्गों का अर्थ सहित उल्लेख कर रहें हैं। इन्हें ध्यानपूर्वक स्मरण कर लें। इनकी संख्या बाइस है—

प्र (अधिक, प्रकर्ष), **परा** (उल्टा, पीछे), **अप** (दूर), **सम्** (ठीक प्रकार), **अनु** (पीछे), **अव** (नीचे, दूर), **निस्** (अभाव), **निर्** (बाहर), **दुस्** (कठिन), **दुर्**

(बुरा), **वि** (विशेष, अलग), **आङ्** (मर्यादा, तक), **नि** (नीचे), **अधि** (ऊपर), **अपि** (निकट), **अति** (अधिकता), **सु** (सुन्दर), **उत्** (ऊपर), **अभि** (ओर), **प्रति** (ओर), **परि** (चारों ओर), **उप** (समीप)।

इसी प्रसङ्ग में कुछ धातुएँ उपसर्ग के साथ देखें किन अर्थों की अभिव्यक्ति कर रही हैं—

वि + √आप् = व्याप्नोति (व्याप्त करता है) अव + √गम् = अवगच्छति (जानता है)

उप+√कृ = उपकरोति (उपकार करता है) प्रति+आ + √गम् = प्रत्यागच्छति (लौटता है)

आ + √क्षिप् = आक्षिपति (आक्षेप करता है) निर् + √गम् = निर्गच्छति (निकलता है)

उत्+ √क्षिप् = उत्क्षिपति (ऊपर फैंकता है) अनु + √चर् = अनुचरति (पीछे चलता है)

अनु+ √गम् = अनुगच्छति (अनुकरण करता है) परि+√चर्=परिचरति (सेवा करता है)

इनके अन्य धातुओं के समान ही रूप चलते हैं। अतः इनका ध्यानपूर्वक समझकर प्रयोग का प्रयास करना चाहिए।

पाठ ९

आइये, अभ्यास करें कुछ अव्यय शब्दों और धातुओं का—

अव्यय– ६७ हाँ, और क्या = अथ किम् ६८. दूसरे दिन = अन्येद्युः अपरेद्युः ६९. यहाँ से = इतः ७०. थोड़ा = ईषत् ७१. ऊँचे = उच्चैः ७२. कहीं = क्वचित् ७३. देर तक = चिरम् ७४. इसीलिए = तस्मात् ७५. चुप = तूष्णीम् ७६. सौभाग्य से = दिष्ट्या ७७. नीचे = नीचैः।

यहाँ तक हमनें ६१ धातुओं के लट् लकार परस्मैपदी रूपों का उल्लेख किया इनमें कुछ धातुओं के आत्मनेपदी में भी रूप चलते हैं, ऐसी धातुओं को उभयपदी कहा जाता है। अब हम कुछ आत्मनेपदी धातुओं के लट् लकार के रूपों का उल्लेख करेंगे।

धातुएँ– ६२. सेवा करना = √सेव् ६३. होना = √वृत् ६४. प्राप्त करना = √लभ् ६५. बढ़ना = √वृध् ६६. मरना = √मृ ६७. समझना = √मन् ६८ काँपना = √कम्प् ६९. उत्पन्न होना = √जन् ७०. खिन्न होना = √खिद् ७१. प्रसन्न होना = √मुद्।

इनका भलीभाँति स्मरण कर लें—

६२.	सेवते	सेवेते	सेवन्ते	६३.	वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे		वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
	सेवे	सेवावहे	सेवामहे		वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे
६४.	लभते	लभेते	लभन्ते	६५.	वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते
	लभसे	लभेथे	लभध्वे		वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे
	लभे	लभावहे	लभामहे		वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे

६६.	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते	६७.	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे		मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे		मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे
६८.	कम्पते	कम्पेते	कम्पन्ते	६९.	जायते	जायेते	जायन्ते
	कम्पसे	कम्पेथे	कम्पध्वे		जायसे	जायेथे	जायध्वे
	कम्पे	कम्पावहे	कम्पामहे		जाये	जायावहे	जायामहे
७०.	खिद्यते	खिद्येते	खिद्यन्ते	७१.	मोदते	मोदेते	मोदन्ते
	खिद्यसे	खिद्येथे	खिद्यध्वे		मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे
	खिद्ये	खिद्यावहे	खिद्यामहे		मोदे	मोदावहे	मोदामहे

अब उक्त धातुओं का प्रयोग करते हुए अनुवाद बनाते हैं—

अभ्यास १०— १. वह यहाँ से जाकर क्या प्रतिदिन सेवा करता है और क्या? २. तुम व्यर्थ ही यहाँ आकर दुःखी होते हो। ३. वे सब दूसरे दिन भी वहाँ खुश होते हैं, इसीलिए पुण्य प्राप्त करते हैं। ४. तुम सब वहाँ जाकर क्यों काँपते हो। ५. आप वहाँ नहीं खेलते हो, इसीलिए दुःखी होते हो। ६. सब प्राणी यहाँ अवश्य मरते हैं। ७. मैं तो भय से काँप रहा हूँ। ८. वे दोनों भी कहीं उत्पन्न होते हैं। ९. जो उत्पन्न होता है, वह मरता अवश्य है। १०. भाग्य से वह तो हमेशा ही प्रसन्न रहता है।

परीक्षण करें, अपनी सफलता का—

१. सः इतः गत्वा किम् प्रतिदिनम् सेवते, अथ किम्? २. त्वम् व्यर्थमेव अत्र आगत्य खिद्यसे। ३. ते अन्येद्युः अपि तत्र मोदन्ते, तस्मात् पुण्यानि लभन्ते। ४. यूयम् तत्र गत्वा कथम् कम्पध्वे। ५. भवान् तत्र न खेलति, इत्यर्थमेव खिद्यते। ६. सर्वे प्राणिनः अत्र अवश्यमेव म्रियन्ते। ७. अहम् तु भयेन कम्पे। ८. तौ अपि क्वचित् जायेते। ९. यः जायते, सः नूनं म्रियते। १०. दिष्ट्या सः तु सर्वदा एव मोदते।

आइये कुछ अन्य नियमों से भी परिचित होवें—

नियम ९१ — वाक्य में प्रयुक्त 'के लिए' पदों का अनुवाद करने के लिए हम यहाँ तीन विधियों का उल्लेख कर रहे हैं।

(क) **तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग—** धातु में 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग करके 'के लिए' पदों का अनुवाद अत्यन्त सरल है। इस प्रत्यय का प्रयोग करने पर अव्यय शब्द बनता है, जिसके रूप नहीं चलते हैं।[1] जैसे– पढ़ने के लिए = √पठ् + तुमुन् पठितुम्। वह पढ़ने के लिए वहाँ प्रतिदिन जाता है। सः पठितुम् तत्र प्रतिदिनम् गच्छति।

---

१. तुमुन् के विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य पृ०-१२५।

(ख) **अर्थम् पद का प्रयोग**— धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय का प्रयोग करने के बाद 'अर्थम्' को जोड़ देने से भी 'के लिए' अर्थ की अभिव्यक्ति की जा सकती है। जैसे— √गम् - जाना अर्थ में प्रयुक्त धातु में ल्युट् प्रत्यय का प्रयोग करके बना 'गमन' क्योंकि 'ल्युट्' में 'अन' शेष बचता है।[1] पुनः इसमें अर्थम् जोड़ने पर दीर्घ संधि करते हुए बना 'गमनार्थम्' - जाने के लिए। इसी प्रकार अन्य पद चलनार्थम्, हसनार्थम्, भक्षणार्थम् आदि भी बना कर प्रयोग किए जा सकते हैं। जैसे— वह तो खाने के लिए ही यहाँ आता है - सः तु भक्षणार्थमेव अत्र आगच्छति।

(ग) **चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग**— धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय का प्रयोग करने के बाद बने पद में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करके भी 'के लिए' के अभिप्राय को प्रकट किया जा सकता है। जैसे - √खेल् + ल्युट् (अन) खेलन + चतुर्थी विभक्ति (राम के समान रूप चलाकर) = खेलनाय, पठनाय, चलनाय, हसनाय, धावनाय, ईक्षणाय, कथनाय, करणाय, दानाय, पचनाय, भक्षणाय, श्रवणाय आदि।

आइये, कुछ वाक्यों का अभ्यास करें—

अभ्यास ११— १. मैं पढ़ने के लिए वहाँ जाता हूँ, किन्तु राम तो वहाँ केवल खाने के लिए ही आता है। २. हरि यहाँ आजकल सोने के लिए नहीं ठहरता है। ३. हम दोनों भी तो कभी खेलने के लिए यहाँ से नहीं जाते हैं। ४. रमा तो वहाँ फूल चुनने के लिए आती है। ५. प्रायः लोग खाने के लिए ही जीते हैं।

परीक्षण करें— १. अहं पठितुं तत्र गच्छामि, किन्तु रामः तु तत्र केवलं खादनार्थं एव आगच्छति। २. हरिः अत्र अद्यत्वे स्वपनाय न तिष्ठति। ३. आवाम् अपि तु कदापि क्रीडनाय इतः न गच्छावः। ४. रमा तु तत्र पुष्पाणि चेतुम् आगच्छति। ५. प्रायः जनाः खादितुम् (भक्षितुम्) एव जीवन्ति।

उक्त नियम के अनुरूप कुछ क्रिया-पदों का उल्लेख किया जा रहा है। जिससे छात्रों को उनके प्रयोग में सुविधा हो—

√अर्च = अर्चितुम्, अर्चनार्थम्, अर्चनाय	√शी = शयितुम्, शयनार्थम्, शयनाय
√कथ् = कथयितुम्, कथनार्थम्, कथनाय	√श्रु = श्रोतुम्, श्रवणार्थम्, श्रवणाय
√त्यज् = त्यक्तुम्, त्यजनार्थम्, त्यजनाय	√सह् = सोढुम्, सहनार्थम्, सहनाय
√दृश् = द्रष्टुम्, दर्शनार्थम्, दर्शनाय	√वप् = वप्तुम्, वपनार्थम्, वपनाय
√पच् = पक्तुम्, पचनार्थम्, पचनाय	√स्वप् = स्वप्तुम्, स्वपनार्थम्, स्वपनाय
√प्रच्छ् = प्रष्टुम्, प्रच्छनार्थम्, प्रच्छनाय	√स्मृ = स्मर्तुम्, स्मरणार्थम्, स्मरणाय
√हृ = हर्तुम्, हरणार्थम्, हरणाय	√हन् = हन्तुम्, हननार्थम्, हननाय
√चि = चेतुम्, चयनार्थम्, चयनाय	√मुच् = मोक्तुम्, मोचनार्थम्, मोचनाय

---

१. द्रष्टव्य पृ०-१३६।

√मृ = मर्तुम्, मरणार्थम्, मरणाय	√चिन्त् = चिन्तयितुम्, चिंतनार्थम्, चिन्तनाय
√छिद् = छेत्तुम्, छेदनार्थम्, छेदनाय	√रुद् = रोदितुम् = रोदनार्थम्, रोदनाय

विशेष— आपको एक जिज्ञासा अवश्य होती होगी कि कहीं पर 'न' तो कहीं पर 'ण' क्यों हो जाता है। इस विषय में एक नियम ध्यान रखें एक ही पद में र् अथवा ष् के बाद आने वाला 'न' वर्ण 'ण' में परिवर्तित हो जाता है। जैसे- स्मरण, श्रवण, मरण आदि, भले ही र् और न के बीच स्वर, ह, य, व, र, क, ख, ग, घ, ङ, प, फ, ब, भ, म, आङ् , आदि वर्ण भी प्रयुक्त हुए हों। जैसे श्रवण में (श् + र् + अ + व् + अ + न) र् और न के बीच अ व् अ का व्यवधान होने पर भी न् को ण् आदेश होकर बना—'श्रवण'। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

किन्तु इस विषय में ध्यातव्य है कि उक्त वर्णों के अतिरिक्त कोई भी वर्ण बीच में आने पर न् को ण् आदेश नहीं होगा, अपितु न ही रहेगा। जैसे - प्रच्छनार्थम्, यहाँ र् के बाद च् और छ वर्णों के आने से 'न्' को 'ण्' नहीं हुआ।

स्मरण करें— 'युष्मद्' शब्द के रूप

प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

पाठ १०

आज हमारे अनुवाद का दसवाँ दिन है। अब तक आपने जितने अव्यय शब्द और धातुओं को याद किया, उन्हें प्रतिदिन आपको दोहराना अवश्य है। जिससे उनकी विस्मृति न हो, क्योंकि '**अनभ्यासे विषं विद्या**'।

वाक्यों में हमें 'हुए' पद का प्रयोग भी मिलता है। जैसे 'वह हँसते हुए बोलता है।' यहाँ सः वदति तो आप सरलता से बना लेंगे, किन्तु 'हँसते हुए' का अनुवाद बनाने के लिए ध्यान रखें।

नियम १२— धातु में शतृ (अन्) प्रत्यय का प्रयोग करने पर 'हुए' अर्थ की अभिव्यक्ति की जाती है। जैसे— √हस् + शतृ (अन्) = हसन्। सः हसन् वदति। इसी प्रकार अन्य धातुओं में भी समझें—

√पठ् = पठन् (पढ़ते हुए) √चल् = चलन् (चलते हुए) √मुञ्च् = मुञ्चन् (छोड़ते हुए)

√गम्=गच्छन् (जाते हुए) √दृश्=पश्यन् (देखते हुए) √कथ्=कथयन् (कहते हुए)

√वद्=वदन् (बोलते हुए) √लिख्=लिखन् (लिखते हुए) √पच्=पचन् (पकाते हुए)

√खाद्=खादन् (खाते हुए) √निन्द्=निन्दन् (निन्दा करते हुए) √भ्रम्=भ्रमन् (भ्रमण करते हुए)

अब आपको वाक्य बनाना है– 'वह तो लिखते हुए भी बोलता है', सः तु लिखन् अपि वदति। 'वे सब तो जाते हुए पढ़ रहे हैं'– ते तु गच्छन् पठन्ति। इसी प्रकार आप स्वयं वाक्य बनाकर अनुवाद करें।

नियम १३— आपको जिज्ञासा होगी कि वाक्यों में प्रयुक्त 'राम का', 'हरि के द्वारा', 'घर में', 'गाँव में' आदि पदों का अनुवाद किस प्रकार किया जाए। इस प्रकार के अनुवाद करने के लिए आपको पहले कारक चिह्नों को समझना होगा—

विभक्ति	**कारक**	**चिह्न**	**शब्द**	
प्रथमा	कर्ता	ने	रामः	(राम ने)
द्वितीया	कर्म	को	रामम्	(राम को)
तृतीया	करण	से, के द्वारा	रामेण	(राम के द्वारा)
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिए	रामाय	(राम के लिए)
पञ्चमी	अपादान	से (अलग होने में)	रामात्	(राम से)
षष्ठी	सम्बन्ध	का, के, की, रा, रे, री	रामस्य	(राम का)
सप्तमी	अधिकरण	में, पे, पर	रामे	(राम में)

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाक्य में प्रयुक्त चिह्न को देखकर कारक की पहचान करके उसी विभक्ति का प्रयोग करने से उस चिह्न के अर्थ की अभिव्यक्ति हो जाएगी। जैसे— यह राम की पुस्तक है। यहाँ 'राम की' पदों में 'की' चिह्न को देखकर आप आसानी से जान लेंगे कि यह सम्बन्ध कारक का चिह्न है और सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होगा। राम शब्द के रूप आप पहले ही याद कर चुके हैं। अतः राम के षष्ठी विभक्ति, एकवचन (क्योंकि राम की संख्या एक है) के रूप 'रामस्य' का अर्थ होगा 'राम की' और अनुवाद इस प्रकार बनाएँगे— 'इदम् रामस्य पुस्तकम् अस्ति'।

इसी प्रकार 'इस बाग में सभी सुन्दर फूल हैं।' इस वाक्य का अनुवाद करते समय देखें कि 'बाग' के साथ ही 'में' चिह्न आया है, जो अधिकरण कारक का है। अतः बाग (उद्यान) शब्द के सप्तमी विभक्ति, एकवचन के रूप 'उद्याने' प्रयोग करने पर अर्थ होगा 'उद्यान में', किन्तु बाग से पूर्व प्रयुक्त 'इस' का सम्बन्ध भी बाग से ही है। अतः नियम संख्या ८ के अनुसार 'इस' पद में भी सप्तमी विभक्ति, एकवचन का प्रयोग करते हुए 'अस्मिन्' (इदम् - यह) शब्द का प्रयोग करके अनुवाद बनेगा - 'अस्मिन् उद्याने सर्वाणि सुन्दराणि पुष्पाणि सन्ति'। सर्वाणि और

सुन्दराणि विशेषणों का लिङ्ग, वचन और विभक्ति 'पुष्पाणि' विशेष्य के अनुसार होंगे। इसी प्रकार अन्य कारकों के प्रयोग को भी समझ लें। एक अन्य उदाहरण—

'राम रावण को बाण से लंका में उसके लिए मारता है।'

यहाँ कर्ता है–राम, अतः उसमें प्रथमा विभक्ति, एकवचन का प्रयोग करके हुआ रामः। पुनः 'रावण को' में 'को' चिह्न होने के कारण कर्म कारक, द्वितीया विभक्ति, एकवचन का प्रयोग किया और बना 'रावणम्'। इसके बाद 'बाण से' में करण कारक होने से तृतीया विभक्ति, एकवचन का प्रयोग करके 'बाणेन' बनाया तथा 'लंका में' पदों में 'में' चिह्न होने से अधिकरण कारक हुआ, अतः सप्तमी विभक्ति एकवचन (रमा के समान रूप) 'लंकायाम्' तस्यै हन्ति।

यहाँ 'तस्यै' पद के प्रयोग को भी समझ लें, क्योंकि यहाँ 'के लिए' कारक चिह्न प्रयुक्त हुआ है। अतः चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करेंगे। अब क्योंकि राम ने रावण को सीता के लिए मारा था। इसलिए 'के लिए' पद का प्रयोग सीता के लिए होने का कारण 'तत्' शब्द के स्त्रीलिङ्ग, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन के रूप 'तस्यै' का प्रयोग किया। इस प्रकार उक्त वाक्य का अनुवाद हुआ—

'रामः रावणम् बाणेन लंकायाम् तस्यै हन्ति।'

नियम १४— वाक्य में 'साथ' शब्द का प्रयोग होने पर विशेष सावधानी रखें— यह शब्द जिसके बाद आता है उसमें षष्ठी विभक्ति न करके तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया जाएगा। जैसे— वह राम के साथ जाता है। यहाँ 'राम के' में सम्बन्ध कारक का चिह्न 'के' होने से राम में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग करके 'रामस्य' बनना चाहिए, किन्तु उसके बाद 'साथ' (सह, साकं, सार्धं, समम्) आने के कारण उक्त नियम से राम में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करके 'रामेण' का प्रयोग करेंगे और अनुवाद होगा - 'सः रामेण सह गच्छति'।

इसी प्रकार 'हरि के साथ' (हरिणा सह) 'राधा के साथ' (राधया सह) 'मेरे साथ' (मया सह), तेरे साथ (त्वया सह), 'किसके साथ' (कया सह, स्त्री.) (केन सह), जिसके साथ (यया सह, स्त्रीलिङ्ग में) (येन सह, पुल्लिंग में) सबके साथ (सर्वेण सह, सर्वया सह) उसके साथ (तेन सह, तया सह) आदि प्रयोग करेंगे।

नियम १५— अनेक बार वाक्य में कारक चिह्न स्पष्टतया प्रयुक्त नहीं होता है, किन्तु उन स्थानों पर वाक्य के अभिप्राय के अनुसार कारक चिह्न का प्रयोग करते हैं। जैसे - 'रमा पढ़ती है।' यहाँ रमा के बाद यद्यपि कर्ता का 'ने' चिह्न प्रयोग नहीं हुआ है, किन्तु उसके कर्ता होने के कारण प्रथमा विभक्ति का प्रयोग करके 'रमा पठति' का ही प्रयोग करेंगे।

नियम १६— किन्तु अनेक स्थलों पर 'उसने', 'मैंने', 'किसने' आदि पदों का प्रयोग होता है। यहाँ 'ने' चिह्न का स्पष्टतया प्रयोग होने से प्रथमा विभक्ति का ही प्रयोग करेंगे। उस स्थिति में उसने की संस्कृत 'सः' या 'सा' (स्त्रीलिङ्ग में) 'मैंने' की संस्कृत 'अहम्' और 'किसने' की 'कः' या 'का' (स्त्रीलिङ्ग में) होगी।

इसी प्रसंग में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि 'मैं' और 'तुम' के लिए स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिग दोनों में अहम् और त्वम् का ही प्रयोग होता है। उनके रूपों में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु यदि 'आप' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो लिङ्ग भेद से रूप भिन्न चलेंगे।

अतः 'भवत्' शब्द के रूप स्मरण कर लें—

पुल्लिग-भवत् = आप

प्रथमा	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वितीया	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृतीया	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
चतुर्थी	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
पञ्चमी	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
षष्ठी	भवतः	भवतोः	भवताम्
सप्तमी	भवति	भवतोः	भवत्सु

स्त्रीलिङ्ग - (आप-स्त्री) नदी के समान

भवती	भवत्यौ	भवत्यः
भवतीम्	भवत्यौ	भवतीः
भवत्या	भवतीभ्याम्	भवतीभिः
भवत्यै	भवतीभ्याम्	भवतीभ्यः
भवत्याः	भवतीभ्याम्	भवतीभ्यः
भवत्याः	भतत्योः	भवतीनाम्
भवत्याम्	भवत्योः	भवतीषु

आइये अब कुछ वाक्यों का अभ्यास करें— किन्तु उससे पूर्व एक नियम—

नियम १७—* गत्यर्थक धातु के योग में जहाँ जाया जाता है, उस स्थानवाची शब्द में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

अभ्यास १२— १. कृष्ण हरि के साथ पढ़ते हुए अपने घर आता है। २. आप लिखते हुए अपने विद्यालय में बैठते हैं। ३. तुम तो बोलते हुए राम के घर जाते हो। ४. तुम सब क्या निन्दा करते हुए राम की पुस्तक पढ़ते हो। ५. हाँ मैं खाते हुए अपनी माँ के साथ चलता हूँ। ६. सोहन और मोहन देखते हुए वहाँ क्यों नहीं खेलते हैं। ७. वे सब तो चलते हुए भी उस बाग में पढ़ते हैं। ८. क्या तुम दोनों गीता के साथ खेलते हुए अपने विद्यालय जाते हो। ९. हम सब भी अब यहाँ हँसते हुए ही अपना काम प्रतिदिन करते हैं। १०. वह, तुम दोनों और मैं आजकल स्नानागार में अपने मित्रों के साथ स्नान करते हैं।

परीक्षण करें, अपने वाक्यों का—

१. कृष्णः हरिणा सह पठन् स्व गृहम् आगच्छति। २. भवान् लिखन् स्व विद्यालये तिष्ठति। ३. त्वम् तु वदन् रामस्य गृहम् गच्छसि। ४. यूयम् किम् निन्दन् रामस्य पुस्तकं पठथ। ५. अथ किम् (आम्, ओ३म्) अहम् खादन् स्व मात्रा सह चलामि। ६. सोहनः मोहनः च पश्यन् तत्र कथम् न क्रीडतः। ७. ते तु चलन् अपि तस्मिन् उद्याने पठन्ति। ८. किम् युवाम् गीतया सह खेलन् (क्रीडन्) स्व विद्यालयम् गच्छथः। ९. वयम् अपि अधुना अत्र हसन् एव स्व कार्यम् प्रतिदिनम् कुर्मः। १०. सः युवाम् अहम् च अद्यत्वे स्नानागारे स्व मित्रैः सह स्नामः।

विशेषनियम— इसी प्रसंग में एक बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि यदि वाक्य 'राम हरि के साथ जाता है', ऐसा होगा तो क्रिया द्विवचन की नहीं होगी। प्रायः छात्र ऐसे वाक्यों में जाने वालों की संख्या दो मानकर द्विवचन का प्रयोग कर देते हैं, जो सर्वथा गलत है।

क्योंकि राम यहाँ मुख्य कर्ता है और हरि गौण कर्ता। क्रिया सदैव मुख्य कर्ता के पुरुष और वचन का अनुकरण करती है। गौण कर्ता का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः उक्त वाक्य का अनुवाद 'रामः हरिणा सह गच्छति' होगा (गच्छतः—नहीं)।

यहाँ तक हमनें केवल वर्तमान काल (लट् लकार) के वाक्यों का ही अनुवाद किया। अब हम क्रमशः भविष्यतकाल (लृट् लकार) भूतकाल (लङ् लकार) आज्ञाकाल (लोट् लकार) तथा चाहिए अर्थ में (विधिलिङ्ग लकार) के वाक्यों का भी अनुवाद करेंगे।

पाठ ११

भविष्यतकाल के वाक्यों का प्रयोग

नियम १८— भविष्यत काल की सबसे आसान पहचान है कि वाक्य के अन्त में 'गा, गे, गी' में से किसी एक का प्रयोग होता है। जैसे— 'मैं कल वहाँ नहीं जाऊँगा'। इस वाक्य के अन्त में 'गा' आने के कारण यह भविष्यतकाल का वाक्य कहा जाएगा और संस्कृत अनुवाद करते समय यहाँ लृट् लकार का प्रयोग करेंगे। अब हम √पठ् धातु के रूपों का उल्लेख कर रहे हैं—

प्रथम पुरुष–	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
मध्यम पुरुष–	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उत्तम पुरुष–	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

उक्त धातु रूपों की लट् लकार के रूपों से तुलना करने पर हमें पर्याप्त साम्य देखने को मिलता है। जैसे - सभी के अन्त में उन्हीं प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। जिनका लट् लकार में हुआ था। विसर्गों का भी उन-उन स्थलों पर ही प्रयोग हुआ

है। अतः इस लकार में भी हम पूर्ववत् एल(L) विधि का प्रयोग विसर्ग लगाने के लिए कर सकते हैं।

किन्तु यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान रखनी है कि धातु और प्रत्यय के बीच 'इष्य' पद का प्रयोग करके रूप बनाना होगा। जैसे— √पठ् + इष्य + ति =पठिष्यति। इस प्रकार समझ कर याद करने से अधिक परिश्रम भी नहीं करना होगा।

एक बात और, लट् लकार के रूपों में कुछ धातुओं को 'आदेश' किया गया था। जैसे— √गम् को √गच्छ्, √पा को √पिब् आदि, किन्तु इस लकार के रूपों में वह आदेश नहीं किया जाएगा अर्थात् मूल धातु रूप ही सुरक्षित रहेगा। जैसे— कुछ धातुएँ हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। इन्हें समझते हुए याद करें—

१. √गम् = जाना			**२. √भू = होना**		
गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः
३. √स्था = ठहरना			**४. √पा = पीना**		
स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
स्थास्यामि	स्थास्याव	स्थास्यामः	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः
५. √कृ = करना			**६. √लिख् = लिखना**		
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति
करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ	लेखिष्यसि	लेखिष्यथः	लेखिष्यथ
करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः	लेखिष्यामि	लेखिष्यावः	लेखिष्यामः
७. √दा = देना			**८. √क्रीड् = खेलना**		
दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	क्रीडिष्यति	क्रीडिष्यतः	क्रीडिष्यन्ति
दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ	क्रीडिष्यसि	क्रीडिष्यथः	क्रीडिष्यथ
दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः	क्रीडिष्यामि	क्रीडिष्यावः	क्रीडिष्यामः
९. √जि = जीतना			**१०. √त्यज् = त्यागना**		
जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति	त्यक्ष्यति	त्यक्ष्यतः	त्यक्ष्यन्ति
जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ	त्यक्ष्यसि	त्यक्ष्यथः	त्यक्ष्यथ
जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः	त्यक्ष्यामि	त्यक्ष्यावः	त्यक्ष्यामः

११. √दृश् = देखना			**१२. √नम् = नमस्कार करना**		
द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति	नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति
द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ	नंस्यसि	नंस्यथः	नंस्यथ
द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः	नंस्यामि	नंस्यावः	नंस्यामः
१३. √नी = ले जाना			**१४. √पच् = पकाना**		
नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति
नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ	पक्ष्यसि	पक्ष्यथः	पक्ष्यथ
नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः	पक्ष्यामि	पक्ष्यावः	पक्ष्यामः
१५. √याच् = मांगना			**१६. √वस् = रहना**		
याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति
याचिष्यसि	याचिष्यथः	याचिष्यथ	वत्स्यसि	वत्स्यथः	वत्स्यथ
याचिष्यामि	याचिष्यावः	याचिष्यामः	वत्स्यामि	वत्स्यावः	वत्स्यामः
१७. √मुद्=प्रसन्न होना (आत्म०)			**१८. √सेव्=सेवा करना** (आत्म०)		
मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
मोदिष्यसे	मोदिष्येथे	मोदिष्यध्वे	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
मोदिष्ये	मोदिष्यावहे	मोदिष्यामहे	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे
१९. √जन् = उत्पन्न होना			**२०. √नृत् = नाचना**		
जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते	नर्तिष्यति	नर्तिष्यतः	नर्तिष्यन्ति
जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे	नर्तिष्यसि	नर्तिष्यथः	नर्तिष्यथ
जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे	नर्तिष्यामि	नर्तिष्यावः	नर्तिष्यामः

आइये अब इस काल के अनुवाद को भी समझ लें। जैसे—'रमा अब वहाँ कब जाएगी', वाक्य का अनुवाद करना है, क्योंकि वाक्य के अन्त में 'गी' प्रयुक्त हुआ है, अतः भविष्यतकाल का वाक्य हुआ। रमा कर्ता प्रथम पुरुष, एकवचन का होने, प्रथम पुरुष एकवचन की क्रिया 'गमिष्यति' का प्रयोग करते हुए, अनुवाद बनेगा 'रमा अधुना तत्र कदा गमिष्यति'। शेष सभी नियम पूर्ववत् होंगे।

आइये, अब कुछ वाक्य इस काल के भी बनाएँ—

अभ्यास १३— १. वह तपस्वी कल वहाँ जाकर क्या करेगा? २. ये सभी छात्र प्रतिदिन विद्यालय आकर पढ़ेंगे। ३. वे सब याचक बाजार में (आपणं) जाकर मांगेंगे। ४. मैं अभी घर जाकर खाना (भोजनं) पकाऊँगा। ५. दुष्ट लोग कभी भी अपने दोषों को नहीं त्यागेंगे। ६. लेखक रात्रि में बैठकर कथा लिखेगा। ७. छात्र खेल के मैदान में जाकर खेलेंगे। ८. नृत्यांगना मंच पर लोगों के सामने नाचेगी। ९. इस संसार में सभी लोग प्रलय के बाद पुनः उत्पन्न होंगे। १०. मैं सदैव अपने माता-पिता की सेवा करूँगा।

अपना परीक्षण करें, कैसा अनुवाद बनाया है—

१. सः तपस्वी श्वः तत्र गत्वा किम् करिष्यति। २. इमे सर्वे छात्राः प्रतिदिनम् विद्यालयम् आगत्य पठिष्यन्ति। ३. ते सर्वे याचकाः आपणं गत्वा याचिष्यन्ते। ४. अहम् अधुनैव गृहम् गत्वा भोजनम् पक्ष्यामि। ५. दुष्टाः जनाः कदापि स्व दोषान् न त्यक्ष्यन्ति। ६. लेखकः रात्रौ स्थित्वा कथाम् लेखिष्यति। ७. छात्राः क्रीडांगनम् गत्वा क्रीडिष्यन्ति। ८. नृत्यांगना रंगमंचे जनानाम् पुरतः नर्तिष्यति। ९. अस्मिन् संसारे सर्वे जनाः प्रलयानन्तरम् पुनः जनिष्यन्ते। १०. अहं सदैव स्व पितृभ्यां सेविष्ये।

आइये, कुछ नए नियमों को भी जान लें—

नियम १९— कर्ता जिस पदार्थ को अपनी क्रिया के द्वारा सर्वाधिक चाहता है, वह कर्म कहलाता है और 'कर्म' कारक में 'द्वितीया' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे— 'वह पुस्तक पढ़ता है।' यहाँ कर्ता 'वह', 'पढ़ना' क्रिया के द्वारा सर्वाधिक पुस्तक को चाह रहा है। अतः पुस्तक 'कर्म' कारक होने से उसमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करके अनुवाद बनाएँगे— 'सः पुस्तकम् पठति'। इसी प्रकार 'वह भोजन खाता है' सः भोजनम् खादति।

नियम २०— उभयतः (दोनों ओर), सर्वतः (चारों ओर), परितः, अभितः, प्रति, धिक् आदि शब्दों के योग में जिससे इनकी निकटता होती है, द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं - कृष्णम् उभयतः गोपाः सन्ति। ग्रामम् परितः वृक्षाः सन्ति, बालकाः विद्यालयम् प्रति गमिष्यन्ति।

नियम २१— समय अथवा दूरीवाचक शब्दों में कार्य की निरन्तरता होने पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— 'मोहन चार वर्षों तक पढ़ेगा'— मोहनः चत्वारि वर्षाणि पठिष्यति, 'राम आज कोस भर जाएगा', रामः अद्य क्रोशं गमिष्यति।

नियम २२— दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, पृच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह् इन द्विकर्मक धातुओं के निकटवर्ती गौण कर्म में भी द्वितीया विभक्ति होती है। 'गोपाल गाय से दूध दुहता है'— गोपालः गाम् दुग्धम् दोग्धि। यहाँ मुख्य कर्म 'दूध' है और 'गाय' गौण कर्म 'दुह्' धातु के कारण 'गाम्' में भी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए।

नियम २३— शीङ्, स्था, आस् धातुओं से पहले अधि उपसर्ग आने पर आधार 'कर्मकारक' होता है और उसमें 'द्वितीया विभक्ति' का प्रयोग किया जाएगा। जैसे— रमेशः गृहं अधितिष्ठति - रमेश घर में स्थित है। नृपः सिंहासनं अध्यास्ते - राजा सिंहासन पर बैठता है।

यों तो 'सिंहासन पर', 'घर में' इन शब्दों में अधिकरण कारक का चिह्न 'पर' और 'में' होने से सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करना चाहिए था, किन्तु √स्था और √आस् धातुओं से पहले 'अधि' उपसर्ग का प्रयोग होने से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

नियम २४— अन्तरा और अन्तरेण अव्ययों के पास के शब्दों में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करके अनुवाद करते हैं। जैसे— तुम्हारे और मेरे बीच में भगवान् हैं - त्वां मां च अन्तरा भगवान् अस्ति। हरि के बिना सुख नहीं है - हरिम् अन्तरेण न सुखम् वर्तते।

नियम २५— भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय का प्रयोग करके अनुवाद करते हैं। जैसे— √पठ् + ल्युट् = पठनम् (पढ़ना), √गम् + ल्युट् (अन) = गमनम् (जाना), हसनम् (हँसना), चलनम्, (चलना), धावनम् (दौड़ना) 'प्रातः घूमना स्वास्थ्य के लिए हितकर है' - प्रातः 'भ्रमणम्' स्वास्थाय हितकरं अस्ति। तुम्हारे लिए दौड़ना ठीक नहीं है - तुभ्यम् धावनम् न उचितम् अस्ति।

आइये उक्त नियमों के आधार पर कुछ वाक्य बनाएँ—

अभ्यास १४— १. वे चार वर्षों तक व्याकरण पढ़ेंगे। २. वेदी के चारों ओर ब्राह्मण बैठेंगे। ३. राम और कृष्ण के बीच यह बालक दौड़ेगा। ४. वहाँ नदी के दोनों ओर वृक्ष होंगे। ५. पुण्य के बिना सुख प्राप्त नहीं होगा। ६. भगवान् के दर्शन श्रेयस्कर होते हैं। ७. पापी को धिक्कार है। ८. तुम क्या आज अपने घर की ओर जाओगे। ९. राम अब चौदह वर्षों तक वन में रहेंगे। १०. क्या हम सब मिलकर अपने गाँव जाएँगे?

आइये– शुद्धता का परीक्षण भी कर लें—

१. ते चत्वारि वर्षाणि यावत् व्याकरणं पठिष्यन्ति। २. वेदीम् परितः ब्राह्मणाः स्थास्यन्ति। ३. रामम् कृष्णम् च अन्तरा अयम् बालकः धाविष्यति। ४. तत्र नदीम् उभयतः वृक्षाः भविष्यन्ति। ५. पुण्यम् (पुण्येन) विना सुखं न प्राप्स्यति। ६. भगवतः दर्शनानि श्रेयष्कराणि भवन्ति। ७. धिक् पापिनम्। ८. त्वम् किम् अद्य स्व गृहं प्रति गमिष्यसि। ९. रामः अधुना चतुर्दशवर्षाणि यावत् वने वत्स्यति। १०. किम्, वयम् मिलित्वा (संमील्य) स्व ग्रामम् गमिष्यामः।

पाठ १२

भूतकाल के वाक्यों का प्रयोग—

नियम २६— यदि कार्य समाप्त हो चुका है अर्थात् वाक्य के अन्त में था है, थी है, थे हैं, अथवा चुका, चुकी, चुके, या, यी, ये प्रयुक्त हों तो समझना चाहिए कि वाक्य भूतकाल का है।

इस प्रकार के वाक्यों का अनुवाद करने के लिए 'लङ् लकार' का प्रयोग करते हैं। जिसके रूप इस प्रकार चलते हैं। इन्हें ध्यानपूर्वक स्मरण करें—

१. पढ़ना - √पठ्			२. जाना - √गम्		
अपठत्	अपठताम्	अपठन्	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
अपठः	अपठतम्	अपठत	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
अपठम्	अपठाव	अपठाम	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

उक्त धातुरूपों को देखने से स्पष्ट है कि यहाँ केवल मध्यम पुरुष एकवचन के रूप 'अपठः', 'अगच्छः' पर ही विसर्गों का प्रयोग हुआ है, अन्यत्र नहीं। साथ ही तीन पद ऐसे हैं, जहाँ न तो विसर्गों का प्रयोग हुआ है और न हलन्त का— मध्यम पुरुष, बहुवचन और उत्तम पुरुष, द्विवचन तथा बहुवचन। अतः इन्हें लाल स्याही का निशान लगाकर याद कर लेना चाहिए। 'अ' का प्रयोग सभी रूपों में हुआ है। शेष सभी रूप हलन्त युक्त प्रयुक्त हुए हैं।

इस प्रसंग में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि वह पढ़ चुका, उसने पढ़ा था, वह पढ़ा इन तीनों वाक्यों के अनुवाद के लिए 'अपठत्' क्रिया पद का ही प्रयोग करेंगे। इस काल में सर्वाधिक '√अस्' धातु का प्रयोग होता है—

३. √अस् = होना			४. √हस् = हंसना		
आसीत्	आसताम्	आसन्	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
आसीः	आसतम्	आसत	अहसः	अहसतम्	अहसत
आसम्	आस्व	आस्म	अहसम्	अहसाव	अहसाम
५. √भू = होना			**६. √लिख् = लिखना**		
अभवत्	अभवताम्	अभवन्	अलिखत्	अलिखताम्	अलिखन्
अभवः	अभवतम्	अभवत	अलिखः	अलिखतम्	अलिखत
अभवम्	अभवाव	अभवाम	अलिखम्	अलिखाव	अलिखाम
७. √पा = पीना			**८. √स्था = ठहरना**		
अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
अपिबः	अपिबतम्	अपिबत	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम
९. √कृ = करना			**१०. √पत् = गिरना**		
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	अपतत्	अपतताम्	अपतन्
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	अपतः	अपततम्	अपतत
अकर्वम्	अकर्वाव	अकर्वाम	अपतम्	अपताव	अपताम
११. √इष् = चाहना			**१२. √स्पृश् = स्पर्श करना**		
ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्	अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत	अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत
ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम	अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम

१३. √चुर् = चुराना			१४. √भ्रम् = घूमना		
अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	अभ्रमत्	अभ्रताम्	अभ्रमन्
अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत	अभ्रमः	अभ्रमतम्	अभ्रमत
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम
१५. √दृश् = देखना			**१६. √पच् = पकाना**		
अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्	अपचत्	अपचताम्	अपचन्
अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत	अपचः	अपचतम्	अपचत
अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम	अपचम्	अपचाव	अपचाम
१७. √वस् = रहना			**१८. √याच् = माँगना**		
अवसत्	अवसताम्	अवसन्	अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्
अवसः	अवसतम्	अवसत	अयाचः	अयाचतम्	अयाचत
अवसम्	अवसाव	अवसाम	अयाचम्	अयाचाव	अयाचाम
१९. √मुद् = प्रसन्न होना (आत्म०)			**२०. √सेव् = सेवा करना** (आत्म०)		
अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

हलन्त का महत्त्व— छात्र प्रायः हलन्त लगाने में आलस्य और लापरवाही करते हैं, किन्तु हलन्त का अत्यधिक महत्त्व है। देखिये, यदि आप 'अपठत्' पर हलन्त का प्रयोग नहीं करके 'अपठत' लिखते हैं तो यह प्रथम पुरुष, एकवचन का रूप न होकर मध्यम पुरुष, बहुवचन का रूप होने से अनुवाद पूर्णतया गलत हो जाएगा। अतः हलन्त के विषय में विशेष सावधानी रखें।

विशेषनियम २७— यदि आपको किसी धातु विशेष के लङ् लकार के रूप याद नहीं हैं और आपको भूतकाल के वाक्य का अनुवाद करना है तो घबराइये नहीं, उस वाक्य को वर्तमानकाल यानि लट् लकार में बनाकर अन्त में 'स्म' पद का प्रयोग कर दीजिए, बस बन गया भूतकाल का अनुवाद। जैसे— 'एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था' का अनुवाद 'एकस्मिन् ग्रामे एकः ब्राहमणः वसति स्म।' इसी प्रकार अन्यत्र भी समझें।

नियम २८— कर्ता जिसकी सहायता से क्रिया करता है, उसे करण कहते हैं। करण में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— साधु ने जल से मुँह धोया · साधुः जलेन मुखं प्रक्षालयत्। यहाँ 'मुख धोना' क्रिया में सर्वाधिक सहायक 'जल' होने से वह करण हुआ और उसमें तृतीया विभक्ति का प्रयोग करके बना 'जलेन'।

नियम २९— पृथक्, विना, नाना, तुल्य, सदृश, किम्, अर्थः, प्रयोजनम्, अलम्, पदों के निटकवर्ती शब्दों में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— 'सीता राम से चौदह वर्षों तक अलग रही' इसका अनुवाद 'सीता रामेण चतुर्दशवर्षाणि पृथक् अवसत्।' वह तो कृष्ण के समान था— सः तु कृष्णेन तुल्यः आसीत्।

नियम ३०— जिस विकार युक्त अंग के कारण शरीर विकृत दिखाई दे, उस अंगवाची शब्द में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— श्याम कान से बहरा था - श्यामः कर्णेन बधिरः आसीत्। सः तु पादेन खञ्जः अभवत् - वह तो पैर से लंगड़ा हो गया।

नियम ३१— हेतु बोधक शब्दों, स्वभाव आदि, क्रिया विशेषणवाची शब्दों में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— अरे, वह तो यहाँ अध्ययन के लिए रहता था - अरे! सः तु अध्ययनेन वसति स्म। यह बालक प्रकृति से सुन्दर था - अयम् बालकः प्रकृत्या सुन्दरः आसीत्।

नियम ३२— भूतकाल के वाक्यों का अनुवाद 'क्तवतु' और 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग करके भी किया जा सकता है, किन्तु इन दोनों प्रत्ययों के प्रयोग में सावधानी रखनी होगी, 'क्त' प्रत्यय से युक्त क्रियापद का प्रयोग करने पर कर्ता में तृतीया का प्रयोग करना होगा। जैसे— तेन गतः (√गम् + क्त) उसके द्वारा जाया गया।

किन्तु क्तवतु प्रत्यय के प्रयोग में हम कर्ता में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग करके ही वाक्य बनाएँगे। जैसे— सः गतवान् - वह गया, ते गतवन्तः - वे गये।

आइये अब कुछ वाक्यों का अनुवाद करें—

अभ्यास १५— १. एक जंगल में एक शेर रहता था। २. उस राज्य का राजा हरिषेण था। ३. मैं तुम और वह परसों ही तो वहाँ गये थे। ४. तुम सब इस समय तक भी वहाँ क्यों नहीं खेले। ५. उस बालक के साथ क्या वे नहीं जा रहे थे। ६. हाँ तुम ठीक कह रहे थे, वह आदमी तो आँख से काना था। ७. राम रावण को बाण से मारने के लिए लंका गए। ८. वह लड़की तो पैर से लंगडी थी। ९. मैं तो पढ़ चुका, अब अध्ययन से बस करो। १०. इस कक्षा में जो लड़की पढ़ती थी, वह स्वभाव से अत्यन्त मधुर थी।

परीक्षण करें— १. एकस्मिन् अरण्ये एकः सिंहः प्रतिवसति स्म। २. तस्य राज्यस्य राजा हरिषेणः आसीत्। ३. अहम् त्वम् सः च परह्यः एव तु तत्र अगच्छाम। ४. यूयम् इदानीम् यावत् अपि तत्र कथम् न अक्रीडत। ५. तेन बालकेन सह किम् ते न अगच्छन्। ६. आम्, त्वम् सम्यक् वदसि स्म, सः जनः तु नेत्रेण काणः आसीत्। ७. रामः रावणम् बाणेन हन्तुम् लंकायाम् गतवान्। ८. सा बालिका तु पादेन खञ्जा आसीत्। ९. अहम् तु अपठम्, अधुना अध्ययनेन अलम् क्रीयताम्। १०. अस्यां कक्षायां या बालिका पठति स्म, सा प्रकृत्या अति मधुरा आसीत्।

पाठ १३

आज्ञाकाल के वाक्यों का प्रयोग –

नियम ३३— यदि वाक्य के अन्त में 'ओ, एँ, ऊँ' आदि का प्रयोग हो तथा उससे किसी आदेश की प्रतीति हो रही हो तो उसे आज्ञाकाल का वाक्य समझना चाहिए। ऐसे वाक्यों का अनुवाद करते समय 'लोट् लकार' का प्रयोग करते हैं। इसी प्रसंग में एक बात और उल्लेखनीय है कि यदि वाक्य में प्रार्थना की गई हो तो भी लोट् लकार का ही प्रयोग करेंगे।

जैसे— 'तुम दोनों यह काम जल्दी करो।' यहाँ आदेश दिया गया है तथा अन्त में 'ओ' प्रयुक्त हुआ है। अतः लोट् लकार का प्रयोग करके इस वाक्य का अनुवाद करेंगे— 'युवाम् इदम् कार्यम् शीघम् कुरुतम्।'

किन्तु यदि कहा जाए— 'तुम सब कृपया यहाँ आओ (आइये)' तो भी लोट् लकार का प्रयोग करते हुए – 'यूयम् कृपया अत्र आगच्छत' अनुवाद करेंगे। शेष सभी नियम पूर्ववत् होंगे। इस लकार के रूपों का भी उल्लेख किया जा रहा है—

१. पठतु	पठताम्	पठन्तु	२. गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
पठ	पठतम्	पठत	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
पठानि	पठाव	पठाम	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम
३. हसतु	हसताम्	हसन्तु	४. वदतु	वदताम्	वदन्तु
हस	हसतम्	हसत	वद	वदतम्	वदत
हसानि	हसाव	हसाम	वदानि	वदाव	वदाम
५. क्रीडतु	क्रीडताम्	क्रीडन्तु	६. भवतु	भवताम्	भवन्तु
क्रीड	क्रीडतम्	क्रीडत	भव	भवतम्	भवत
क्रीडानि	क्रीडाव	क्रीडाम	भवानि	भवाव	भवाम
७. लिखतु	लिखताम्	लिखन्तु	८. पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
लिख	लिखतम्	लिखत	पिब	पिबतम्	पिबत
लिखानि	लिखाव	लिखाम	पिबानि	पिबाव	पिबाम
९. तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु	१०. करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत	कुरुः	कुरुतम्	कुरुत
तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम	करवाणि	करवाव	करवाम
११. पततु	पतताम्	पतन्तु	१२. इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
पत	पततम्	पतत	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
पतानि	पताव	पताम	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

१३.वसतु	वसताम्	वसन्तु	१४.पचतु	पचताम्	पचन्तु
वस	वसतम्		पच	पचतम्	पचत
वसानि	वसाव	वसाम	पचानि	पचाव	पचाम
१५.भ्रमतु	भ्रमताम्	भ्रमन्तु	१६.जयतु	जयताम्	जयन्तु
भ्रम	भ्रमतम्	भ्रमत	जय	जयतम्	जयत
भ्रमानि	भ्रमाव	भ्रमाम	जयानि	जयाव	जयाम
१७.यजतु	यजताम्	यजन्तु	१८. चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु
यज	यजतम्	यजत	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
यजानि	यजाव	यजाम	चोरयम्	चोरयाव	चोरयाम
१९.(आ.) सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्	२०. (आ.) लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
सेवै	सेवावहै	सेवामहै	लभै	लभावहै	लभामहै

उक्त धातु रूपों में एक बात ध्यान देने योग्य है कि **यहाँ किसी भी रूप में विसर्गों का प्रयोग नहीं हुआ है** और तीन रूप ऐसे हैं जिनमें विसर्ग अथवा हलन्त कुछ भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। अतः इन तीनों को लाल स्याही से चिह्न लगाकर स्मरण कर लें। इस प्रकार ये धातु रूप बहुत आसानी से याद हो जाएँगे।

नियम ३४— जिसे कोई वस्तु सदा के लिए दी जाती है, उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जैसे— राजा निर्धन को धन देता है— 'राजा निर्धनाय धनं ददाति।' यहाँ निर्धन को धन हमेशा के लिए दिया जा रहा है। अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा होने से **'चतुर्थी विभक्ति' का** प्रयोग किया - निर्धनाय।

नियम ३५— जिसके प्रति क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या की जाती है। उसमें भी चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करते हैं। 'पिता कभी भी पुत्र पर क्रोध नहीं करे'- 'पिता कदापि पुत्राय मा (नहीं) क्रुध्यतु।' मूर्ख विद्वानों से ईर्ष्या नहीं करें - 'मूर्खाः विद्वद्भ्यः मा ईर्ष्यन्तु।'

नियम ३६— जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे - बच्चा खिलौने के लिए रोता है - 'बालकः क्रीडनकाय रोदिति।'

नियम ३७— नमः , स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् वषट् आदि शब्दों के साथ निकटवर्ती शब्दों में 'चतुर्थी विभक्ति' का प्रयोग करते हैं। जैसे— सभी गुरुओं को नमस्कार है— सर्वेभ्यः गुरुभ्यः नमः। आप सब का कल्याण हो - भवद्भ्यः सर्वेभ्यः स्वस्ति।

नियम ३८— √रुच् (अच्छा लगना) धातु और इसके समान अर्थ वाली अन्य धातुओं के साथ जिसे कोई वस्तु अच्छी लगती है, उसमें 'चतुर्थी विभक्ति' होती है। जैसे— हरि को भक्ति अच्छी लगती है -'हरये भक्तिः रोचते।' मुझे तो लड्डू ही अच्छे लगते हैं - मह्यम् तु मोदकानि रोचन्ते।

नियम ३९— यदि किसी से निवेदन किया जाय या किसी को उपदेश दिया जाए तो 'चतुर्थी विभक्ति' का प्रयोग करते हैं। जैसे - जाओ, पिताजी से निवेदन करो - 'गच्छ, पित्रे निवेदय'— गुरु शिष्य के लिए उपदेश देवे - 'गुरुः शिष्याय उपदिशतु।'

नियम ४०— जिससे कोई व्यक्ति अथवा वस्तु अलग हो, उसमें, 'पञ्चमी विभक्ति' का प्रयोग करते हैं। जैसे - वे सब लोग इसी समय गाँव से चले जावें - 'ते सर्वे जनाः इदानीमेव ग्रामात् गच्छन्तु।' पेड़ से पत्ते गिरें - 'वृक्षात् पत्राणि पतन्तु।'

नियम ४१— जिससे भय होता है या जिसकी रक्षा की जाती है, उसमें, 'पञ्चमी विभक्ति' होती है। जैसे - वह चोर से डरता है - 'सः चौरात् बिभेति।' 'पापात् रक्षतु-पाप से रक्षा करो।'

नियम ४२— जहाँ से कोई वस्तु पैदा होती है, उस स्थान में 'पञ्चमी विभक्ति' प्रयोग करते हैं। जैसे— हिमालय से गंगा उत्पन्न होती है - हिमालयात् गंगा प्रभवति।

नियम ४३— जब किन्हीं दो वस्तुओं की तुलना की जाए तो जिससे तुलना की जाए, उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— मोहन राम से दुर्बल है मोहनः रामात् कृशतरः अस्ति।

आइये अब कुछ वाक्यों का अनुवाद करें—

अभ्यास १६— १. इस गाँव के सभी बालक अभी अपने-अपने घर जावें। २. कृपया आप सब भी जंगल जाकर देखें कि वहाँ कौन-कौन से पशु घूम रहे हैं। ३. रमा और सीता दोनों गीता से निपुण हैं, इसलिए वे ही यहाँ गाएँगी। ४. तुम सबको लड्डू अच्छे लगते है, इसलिए यहाँ आओ और खाओ। ५. सज्जनों से इस गाँव में कोई भी व्यक्ति ईर्ष्या नहीं करे। ६. तुम इसी समय घर जाओ और अपने बेटे को यहाँ ले आओ। ७. तुम सब यहाँ हमेशा केवल खेलने के लिए ही खेलो, दूसरा कोई भी काम यहाँ नहीं करो। ८. ये सब लड़कियाँ यहाँ से उठकर अभी विद्यालय जावें। ९. राजा सदा ही ब्राह्मणों को भरपूर (पर्याप्त) धन देवें। १०. तुम कभी भी किसी भूतप्रेत से मत डरो।

परीक्षण करें— १. अस्य ग्रामस्य सर्वे बालकाः अधुनैव स्व-स्व गृहं गच्छन्तु। २. कृपया भवन्तः अपि वनं गत्वा पश्यन्तु, यत् तत्र के के पशवः भ्रमन्ति। ३. रमा सीता च उभे गीतायाः निपुणे स्तः, इत्यर्थम् ते एव अत्र गास्यतः। ४. युष्मभ्यं

मोदकानि रोचन्ते, इत्यर्थम् अत्र आगच्छत खादत च। ५. अस्मिन् ग्रामे सज्जनेभ्यः कोऽपि जनः मा (नहीं) ईर्ष्यतु। ६. त्वम् इदानीमेव गृहं गच्छ स्व, पुत्रम् च अत्र आनय। ७. यूयम् अत्र सदैव मात्र क्रीडनाय एव क्रीडत, अन्यत् किमपि कार्यम् अत्र मा कुरुत। ८. एताः बालिकाः इतः उत्थाय अधुनैव विद्यालयं गच्छन्तु। ९. राजानः सदैव ब्राह्मणेभ्यः पर्याप्तं धनं ददतु। १०. त्वम् कदापि कस्मात् अपि भूतप्रेतात् मा बिभीहि।

पाठ १४

'चाहिए' अर्थ के वाक्यों का प्रयोग—

नियम ४४— यदि वाक्य के अन्त में 'चाहिए' पद का प्रयोग हुआ हो तो उसका अनुवाद विधिलिङ्ग लकार द्वारा किया जाता है। जैसे— तुम सबको यहाँ नहीं बैठना चाहिए। उन सबको धीरे - धीरे नहीं चलना चाहिए। हमें पढ़ना चाहिए। इन सभी वाक्यों के अन्त में 'चाहिए' पद का प्रयोग होने के कारण विधिलिङ्ग लकार का प्रयोग करके अनुवाद इस प्रकार बनाएँगे—यूयम् अत्र न तिष्ठेत। ते शनैः शनैः न गच्छेयुः। वयं पठेम।

किन्तु यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि 'इन वाक्यों के कर्ता में प्रायः कर्मकारक का चिह्न प्रयुक्त होता है, जैसे—'उन सबको', 'हम सबको', 'तुम सबको' इत्यादि। किन्तु उससे उसके कर्म की सम्भावना करके द्वितीया विभक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे 'तुम सबको' का अनुवाद 'यूयम्' ही करेंगे 'युष्मान्' नहीं। इसी प्रकार 'उसको खेलना चाहिए' का अनुवाद 'सः क्रीडेत्' होगा 'तम् क्रीडेत्' नहीं।

आइये अब इस लकार के धातुरूप भी याद करें—

१.	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः	२.	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
	पठेः	पठेतम्	पठेत		गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
	पठेयम्	पठेव	पठेम		गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम
३.	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः	४.	क्रीडेत्	क्रीडेताम्	क्रीडेयुः
	वदेः	वदेतम्	वदेत		क्रीडेः	क्रीडेतम्	क्रीडेत
	वदेयम्	वदेव	वदेम		क्रीडेयम्	क्रीडेव	क्रीडेम
५.	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः	६.	लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः
	भवेः	भवेतम्	भवेत		लिखेः	लिखेतम्	लिखेत
	भवेयम्	भवेव	भवेम		लिखेयम्	लिखेव	लिखेम
७.	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः	८.	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत		तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम		तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

९.	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	१०.	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात		पतेः	पतेतम्	पतेत
	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम		पतेयम्	पतेव	पतेम
११.	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः	१२.	वसेत्	वसेताम्	वसेयुः
	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत		वसेः	वसेतम्	वसेत
	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम		वसेयम्	वसेव	वसेम
१३.	पचेत्	पचेताम्	पचेयुः	१४.	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः
	पचेः	पचेतम्	पचेत		जयेः	जयेतम्	जयेत
	पचेयम्	पचेव	पचेम		जयेयम्	जयेव	जयेम
१५.	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः	१६.	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
	हसेः	हसेतम्	हसेत		पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
	हसेयम्	हसेव	हसेम		पश्येयम्	पश्येव	पश्येम
१७.	भ्रमेत्	भ्रमेताम्	भ्रमेयुः	१८.	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
	भ्रमेः	भ्रमेतम्	भ्रमेत		शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
	भ्रमेयम्	भ्रमेव	भ्रमेम		शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम
१९.	मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्	२०.	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
	मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्		सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
	मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि		सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

इस धातु रूपों को ध्यानपूर्वक देखें। परस्मैदी धातुओं में केवल प्रथम पुरुष, बहुवचन तथा मध्यम पुरुष एकवचन पर ही विसर्गों का प्रयोग हुआ है तथा तीन स्थानों (म.पु., बहु.व., उ.पु., द्वि.व , एवं बहु.व.) पर हलन्त भी प्रयुक्त नहीं होते हैं। शेष तीन रूपों (प्र.पु.- ए.व., द्वि.व.- म.पु., द्वि.व.) पर हलन्त लगाए जाते हैं। इस प्रकार समझकर ही रूपों को याद करें।

नियम ४५— सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के लिए षष्ठी-विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे— राम की पुस्तक-'रामस्य पुस्तकम्।' राजा का सेवक -'राज्ञः सेवकः।' वृक्ष की शाखा-'वृक्षस्य शाखा।'

निमय ४६— 'हेतु' शब्द के साथ 'षष्ठी विभक्ति' का प्रयोग होगा। जैसे— अध्ययन के लिए रहता है - अध्ययनस्य हेतोः वसति।

नियम ४७— बहुतों में से एक को छाँटने में जिस समूह में से छाँटा जाए। उसमें षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जैसे - कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है— कविषु, कवीनाम् वा कालिदासः श्रेष्ठः।

नियम ४८— एक क्रिया के समाप्त होने पर यदि दूसरी क्रिया होती है, तो पहली क्रिया को कहने वाले शब्द में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे— राम के वन जाने पर लक्ष्मण भी साथ आए - 'वनं गतवति रामे लक्ष्मणोऽपि सह एव आगच्छत्।'

नियम ४९— आधार को अधिकरण कहते हैं और उसमें सप्तमी होती है।[1] जैसे– मैं तो घर पर ही पढ़ता हूँ - 'अहम् तु गृहे एव पठामि।'

आइये अब कुछ वाक्यों का अनुवाद करें—

अभ्यास १७— १. हमें सदा ही बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। २. हम दोनों को हमेशा प्रसन्न रहना चाहिए। ३. दीन-दुखियों की सेवा करनी चाहिए। ४. इस संसार के निर्धनों की हमें सहायता करनी चाहिए। ५. उन सबको विद्यालय जाकर निश्चय ही अध्ययन करना चाहिए। ६. तुम सबको सदा ही कर्म करना चाहिए। ७. इस दुनिया में लोगों को कभी निराश नहीं होना चाहिए। ८. अध्ययन करने के लिए तुम्हें परिश्रम करना चाहिए। ९. मुझे बहुत से लोगों में अपनी पहचान बनानी चाहिए। १०. सेवा कार्य सबसे बड़ा पुण्य है, अतः सभी को सेवा करनी चाहिए।

आइये निरीक्षण करें—

१. वयम् सदैव अग्रजानाम् आज्ञाम् पालयेम। २. आवाम् सदैव मोदेवहि। ३. दीनदुखिनः सेवेरन्। ४. अस्य संसारस्य निर्धनानाम् वयम् सहायतां कुर्याम। ५. ते विद्यालयं गत्वा निश्चयमेव अध्ययेयुः। ६. यूयम् सदैव कर्म कुर्यात। ७. अस्मिन् जगति जनाः कदापि निराशाः न भवेयुः। ८. अध्ययनार्थम् त्वम् परिश्रमं कुर्याः। ९. अहम् बहुषु जनेषु स्वं अभिज्ञायेम्। १०. सेवाकार्यम् महत् पुण्यम् वर्तते, अतः सर्वे सेवेरन्।

पाठ १५

आज हमारे अनुवाद का १५वाँ दिन है। यहाँ तक हमने पाँच लकारों के अनुवाद को सीखा। अब हम कुछ विशेष नियमों का उल्लेख करेंगे।

नियम ५०— 'चाहिए' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए सामान्यतया 'विधिलिङ्ग लकार' का प्रयोग हमने बताया, किन्तु 'तव्यत्' प्रत्यय का प्रयोग करके भी इन वाक्यों को बनाया जा सकता है, ऐसी स्थिति में कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करेंगे। जैसे— हमें पढ़ना चाहिए - 'अस्माभिः पठनीयम्।'

यहाँ क्रिया का लिङ्ग, वचन और विभक्ति कर्म के अनुसार और कर्म में प्रथमा विभक्ति होगी – जैसे— तुम्हें ये सब पुस्तकें पढ़नी चाहिए - युष्माभिः इमानि पुस्तकानि पठितव्यानि। उन्हें प्रगति करनी चाहिए - तैः प्रगतिः करणीया।

---

१. कारक सम्बन्धी नियमों के लिए इस पुस्तक का कारक-प्रकरण देखें।

नियम ५१— कुछ वाक्य प्रेरणार्थक क्रिया वाले होते हैं। जैसे - वह पढ़ाता है, वह खिलाता है, वह भेजता है। ऐसे स्थलों पर धातु और प्रत्यय के बीच 'य' का प्रयोग करके धातु के आरम्भिक 'अ' को आ कर देते हैं। जैसे - सः पाठयति, सः खादयति, सः प्रेषयति।

इन क्रियाओं के सभी लकारों में रूप चल सकते हैं। जैसे— पाठयतु, पाठयेत्, अपाठयत्, पाठयिष्यति। यहाँ हम कुछ धातुओं के लट् लकार के रूपों का उल्लेख कर रहे हैं। छात्रों को चाहिए कि अन्य लकारों का वे स्वयं अभ्यास करें—

कारयति - कराता है।	शाययति - सुलाता है।	शोषयति - सुखाता है।
पाययति - पिलाता है।	जागरयति - जगाता है।	शिक्षयति - सिखाता है।
भोजयति-खिलाता है।	उत्थापयति - उठाता है।	अपसारयति - हटाता है।
दर्शयति - दिखाता है।	परावर्तयति - लौटाता है।	स्नापयति - नहलाता है।
लेखयति-लिखाता है।	आरोहयति - चढ़ाता है।	मेलयति - मिलाता है।
प्रच्छयति-पुछवाता है।	पातयति - गिराता है।	निर्वापयति - बुझाता है।
बोधयति-समझाता है।	ज्वलयति-जलाता है।	प्रवेशयति-प्रवेश कराता है।

आइये अब कुछ वाक्यों का अनुवाद बनाने का अभ्यास करें—

अभ्यास १८— १. राम और हरि को अपने विद्यालय जाकर पढ़ना चाहिए। २. सभी लोगों को अपना काम स्वयं करना चाहिए। ३. तुम सबको ऐसे कार्य करने चाहिएँ, जिससे देश की उन्नति हो। ४. हमें सदा उन्नति करनी चाहिए। ५. तुम दोनों को अभी जाकर वहाँ बैठना चाहिए। ६. अध्यापक हमेशा उसके घर जाकर पढ़ाता है। ७. पिता अपने पुत्र को खाना खिलाता है। ८. राम हरि के रुपये लौटाता है। ९. माँ अपने बेटे को नहलाती है। १०. सोहन राम को पत्र लिखवाता है।

परीक्षण करें— १. रामेण हरिणा च स्व विद्यालयं गत्वा पठितव्यम्। २. सर्वैः जनैः स्व कार्यं स्वयमेव कर्तव्यम्। ३. युष्माभिः ईदृशानि (ऐसे) कार्याणि कर्तव्यानि, यैः देशस्य उन्नतिः स्यात्। ४. अस्माभिः सदैव उन्नतिः कर्तव्या। ५. युवाभ्यां अधुनैव गत्वा तत्र स्थातव्यम्। ६. अध्यापकः सदैव तस्य गृहं गत्वा पाठयति। ७. पिता स्व पुत्रं भोजनं भोजयति (कारयति)। ८. रामः हरेः रूप्यकाणि परावर्तयति। ९. माता स्व पुत्रं स्नापयति। १०. सोहनः रामं पत्रं लेखयति।

यहाँ तक हमने प्रत्येक अभ्यास के परीक्षणार्थ संस्कृत अनुवाद भी प्रस्तुत किया। अब आप स्वयं ही इन कुछ वाक्यों का अनुवाद करें और इस पुस्तक के अन्त में दिए गए अनुवाद से जांच करें।

अभ्यास १९— इस बाग के सभी पेड़ों पर बहुत से (बहवः) पक्षी बैठे हैं। इस गाँव में बहुत से बालक निवास करते हैं। राम यहाँ आजकल खेलने के लिए आता

है। राम और मैं अपने घर प्रतिदिन सोने के लिए जाते हैं। इस नगर में बहुत से लोग साथ-साथ रहते हैं। दुष्ट लोग सज्जनों को हमेशा पीड़ा देते हैं। हम दोनों तो हमेशा खेलकर ही खाते हैं। तुम दोनों वहाँ अभी भी क्या कर रहे हो। याचक स्तुति करते हुए मार्ग पर चलते हैं। इस संसार में बहुत से लोग निर्धन हैं।

अभ्यास २०— वह बालक वहाँ जाकर नहीं रोएगा। राम यहाँ आकर चलते हुए अपना पत्र लिखेगा। हम सब अपने घर जाकर अपना कार्य अवश्य करेंगे। हरि और तुम उस तालाब पर अब कभी नहीं जाओगे। चोर राम का धन कभी नहीं चुराएँगे। तुम दोनों पढ़ने के लिए विद्यालय जाकर क्या करोगे। मैं आज प्रातः अपने घर से फूल चुनने के लिए वन में जाऊँगा। चोर चुराने के लिए रात में ही जाएगा। वे सब तो साथ-साथ ही विद्यालय जाएँगे। इस वन में बहुत से मोर प्रसन्नतापूर्वक नाचेंगे।

अभ्यास २१— मैं एक बार इस बाग में खेलने के लिए आया था। आज तो उसने अपने घर में ही खाना खाया। मैं चलता हुए एक बार इस मार्ग पर गिर पड़ा। उस पेड़ की एक शाखा पर एक दुष्ट बन्दर रहता था। एक बार वह प्यास से व्याकुल हुआ। तब वह तालाब को खोजने के लिए वन में इधर-उधर घूमने लगा। जिस बालक ने अपने बचपन में नहीं पढ़ा, वह बडा होकर युवावस्था में क्या पढ़ेगा। कृष्ण और सोहन विद्यालय में पढ़कर कल ही यहाँ आए। तुम, मैं अथवा वे सब इस समय तक खेलकर क्यों नहीं गए। वह जो भी निश्चय करता था, उसे अवश्य पूरा करता था।

अभ्यास २२— हरि से कह दो कि वह यहाँ अब कभी नहीं आए। तुम सब इस समय वहाँ नहीं खेलो. वे सब लड़कियाँ अब इधर-उधर नहीं घूमें। तुम और मैं इस सुन्दर पुस्तक को साथ बैठकर पढ़ें। इस गाँव के सभी लोग स्नान करने के लिए उस नदी पर जाएँ। तुम सब अब इस वन में ही शान्तिपूर्वक रहो। मैं राम के साथ उस पुस्तकालय में जाकर पढ़ूँ। ये सभी बालक दस वर्षों तक विद्यालय जाकर अध्ययन करें। दीन -दुखियों के प्रति सदा दया करो। इस गाँव के सभी लोग प्रेमपूर्वक साथ-साथ रहें।

अभ्यास २३— अब तुम्हें कभी भी वहाँ नहीं जाना चाहिए। प्रत्येक छात्र को घर जाकर ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। इस संसार में सभी को प्रेमपूर्वक साथ-साथ रहना चाहिए। सभी बालकों को सोने से पहले दूध पीना चाहिए। तुम सबको पुस्तकालय जाकर पाठ्यक्रम की पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ। राम और कृष्ण को कभी भी विद्याधर के साथ अपने गाँव नहीं जाना चाहिए। अध्यापक को सदैव छात्रों को परिश्रमपूर्वक पढ़ाना चाहिए। हमें सभी के साथ विनम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। दुष्ट को कभी भी बुरे काम करके प्रसन्न नहीं होना चाहिए। उसे कभी भी बोलते हुए अपना पत्र नहीं लिखना चाहिए।

यहाँ तक हमने पाँच लकारों के अनुवाद का संक्षेप में उल्लेख किया। जबकि संस्कृत में कुल दस लकारों में अनुवाद किया जाता है, किन्तु केवल इन पाँच लकारों से ही काम चल जाता है। फिर भी जिज्ञासा निवृत्ति के लिए यहाँ शेष पाँच लकारों का भी सकेत किया जा रहा है—

१. लिट् लकार (परोक्ष-भूतकाल) जो घटना नेत्रों के सामने नहीं हुई हो, उसका कथन करने के लिए अथवा ऐतिहासिक भूतकाल के वाक्यों में लिट् लकार का प्रयोग करते हैं। जैसे— एक बार उज्जैन में एक राजा हुआ -'एकदा उज्जयिन्यां एकः राजा बभूव।'

२. लुङ् लकार (आसन्न-भूत)—जो भूत आज ही घटा हो। जैसे— आज उसने यह कार्य कर लिया - 'अद्य सः इदं कार्यं अकार्षीत्'। किन्तु ऐसे स्थलों पर भी प्रायः लङ् लकार का ही प्रयोग कर लेते हैं। वस्तुतः हमने जिस भूतकाल का उल्लेख करते हुए अनुवाद सिखाया, उसमें अनद्यतन भूतकाल का ही प्रयोग किया जाना चाहिए, किन्तु आज यह अन्तर प्रायः नहीं किया जा रहा है। सामान्यतया सभी प्रकार के भूतकालों के लिए लङ् लकार का ही प्रयोग कर लेते हैं।

३. लुट् लकार (दूरवर्ती भविष्यत-काल)— जो भविष्य आज नहीं हो (अनद्यतन भविष्य) अर्थात् जिसे आने वाले कल अथवा उसके बाद होना है, ऐसे वाक्यों के अनुवाद करने के लिए लुट् लकार का प्रयोग करेंगे। जैसे— वह कल यहाँ नहीं आएगा– सः श्वः अत्र नैव आगन्ता। किन्तु सभी भविष्यों में लृट् लकार का ही सामान्यतया प्रयोग कर लेते हैं।

४. लृङ् लकार— 'यदि ऐसा होता तो ऐसा होता' इस प्रकार सशर्त भविष्यत के अर्थ में लृङ् लकार का प्रयोग करते हैं। जैसे— यदि वह पढ़ता तो अवश्य पास होता यदि सः अपठिष्यत् तर्हि अवश्यमेव उत्तीर्णोऽभविष्यत्।

५. आशीर्लिङ् लकार— आशीर्वाद के अर्थ में इस लकार का प्रयोग करते हैं। जैसे– तुम्हारा पुत्र चिरकाल तक जीवित रहे - 'तव पुत्रः चिरं जीव्यात्।' किन्तु इन वाक्यों का अनुवाद भी लोट् लकार के प्रयोग से कर लिया जाता है। इसलिए उक्त पाँच लकारों का कम ही प्रयोग होता है।

अब हम अत्यधिक प्रयोग में आने वाली कुछ धातुओं का उल्लेख करेंगे। इस प्रसंग में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संस्कृत में धातुओं की संख्या २००० से भी अधिक है, किन्तु लगभग १०० धातुओं के अभ्यास से हमारा काम चल सकता है। अतः यहाँ हम केवल उन्हीं उपयोगी धातुओं का उल्लेख कर रहे हैं— यहाँ क्रिया को अकारादिक्रम से रखा गया है, जिससे अपेक्षित क्रिया को ढूँढने में विलम्ब न हो।

१.	इकट्ठा करना	√चि	उ.	चिनोति	चिनुते
२.	इच्छा करना	√इष्	प.	इच्छति	

३.	उत्पन्न होना	√जन्	आ.		जायते
४.	करना	√कृ	उ.	करोति	कुरुते
५.	कहना	√वद्	प.	वदति	-
६.	कहना	√कथ्	उ.	कथयति	कथयते
७.	काटना	√छिद्	उ.	छिनत्ति	छिन्ते
८.	क्रोध करना	√कुप्	प.	कुप्यति	-
९.	क्रोध करना	√क्रुध्	प.	क्रुध्यति	-
१०.	काँपना	√कम्प्	आ.	-	कम्पते
११.	खरीदना	√क्री	उ.	क्रीणाति	क्रीणीते
१२.	खाना	√खाद्	प.	खादति	-
१३.	खिन्न होना	√खिद्	आ.	-	खिद्यते
१४.	खेलना	√क्रीड्	प.	क्रीडति	-
१५.	खोदना	√खन्	उ.	खनति	खनते
१६.	गिनना	√गण्	उ.	गणयति	गणयते
१७.	गिरना	√पत्	प.	पतति	-
१८.	घूमना	√भ्रम्	प.	भ्रमति	-
१९.	क्षमा करना	√क्षम्	प.	क्षाम्यति	-
२०.	चमकना	√दिव्	प.	दीव्यति	-
२१.	चलना	√चल्	प.	चलति	-
२२.	चुनना	√चि	उ.	चिनोति	चिनुते
२३.	चुराना	√चुर्	उ.	चोरयति	चोरयते
२४.	चूना	√स्पृश्	प.	स्पृशति	-
२५.	छोड़ना	√त्यज्	प.	त्यजति	-
२६.	जलना	√ज्वल्	प.	ज्वलति	-
२७.	जलाना	√दह्	प.	दहति	-
२८.	जानना	√ज्ञा	उ.	जानाति	ज्ञायते
२९.	जाना	√गम्	प.	गच्छति	-
३०.	जीतना	√जि	प.	जयति	-

३१.	जोतना	√कृष्	प.	कर्षति	-
३२.	थकना	√क्लम्	प.	क्लाम्यति	-
३३.	दुहना	√दुह्	उ.	दोग्धि	दुग्धे
३४.	दुःख देना	√तुद्	उ.	तुदति	तुदते
३५.	दुःखी होना	√सद्	प.	सीदति	-
३६.	देखना	√दृश् (पश्य)	प.	पश्यति	-
३७.	देना	√दा	उ.	ददाति	दत्ते
३८.	द्रोह करना	√द्रुह्	प.	द्रुह्यति	-
३९.	नमस्कार करना	√नम्	प.	नमति	-
४०.	नष्ट होना	√नश्	प.	नश्यति	-
४१.	नहाना	√स्ना	प.	स्नाति	-
४२.	नाचना	√नृत्	प.	नृत्यति	-
४३.	टूट जाना	√त्रुट्	प.	त्रुटति	-
४४.	ठहर जाना	√स्था (तिष्ठ)	प.	तिष्ठति	-
४५.	डरना	√भी	प.	बिभेति	-
४६.	ढोना	√वह्	उ.	वहति	वहते
४७.	पकाना	√पच्	उ.	पचति	पचते
४८.	पढ़ना	√पठ्	प.	पठति	-
४९.	पीना	√पा (पिब्)	प.	पिबति	-
५०.	प्रवेश करना	प्र + √विश्	प.	प्रविशति	-
५१.	प्रसन्न होना	√मुद्	आ.	-	मोदते
५२.	प्रशंसा करना	प्र + √शंस्	प.	प्रशंसति	-
५३.	प्राप्त करना	√आप्	प.	आप्नोति	-
५४.	प्राप्त करना	√लभ्	आ.	-	लभते
५५.	फटना	√स्फुट्	प.	स्फुटति	-
५६.	फलना	√फल्	प.	फलति	-
५७.	फेंकना	√क्षिप्	उ.	क्षिपति	क्षिपते
५८.	फैलाना	√तन्	उ.	तनोति	तनुते

५९. बढ़ना	√वृध्	आ.	-	वर्धते
६०. बांधना	√बन्ध्	प.	बध्नाति	-
६१. बेधना	√व्यध्	प.	विध्यति	-
६२. बोना	√वप्	उ.	वपति	वपते
६३. बोलना	√वद्	प.	वदति	-
६४. भीख माँगना	√भिक्ष्	आ.	-	भिक्षते
६५. मरना	√मृ	आ.	-	म्रियते
६६. मारना	√हन्	प.	हन्ति	-
६७. माँगना	√याच्	उ.	याचति	याचते
६८. मिलना	√मिल्	उ.	मिलति	मिलते
६९. मिलाना	√युज्	प.	युनक्ति	-
७०. यजन करना	√यज्	उ.	यजति	यजते
७१. युद्ध करना	√युध्	आ.	-	युध्यते
७२. रक्षा करना	√रक्ष्	प.	रक्षति	-
७३. रहना	√वस्	प.	वसति	-
७४. रोकना	√रुध्	उ.	रुणद्धि	रुन्धे
७५. रोना	√रुद्	प.	रोदिति	-
७६. लिखना	√लिख्	प.	लिखति	-
७७. लीपना	√लिम्प्	उ.	लिम्पति	लिम्पते
७८. ले जाना	√नी	उ.	नयति	नयते
७९. वरण करना	√वृ	उ.	वृणोति	वृणुते
८०. व्यथा पहुँचाना	√तुद्	आ.	-	तुदते
८१. शंका करना	√शक्	प.	शक्नोति	-
८२. समझना	√मन्	आ.	-	मन्यते
८३. सहन करना	√सह्	आ.	-	सहते
८४. सांस लेना	√श्वस्	प.	श्वसिति	-
८५. सीना	√सिव्	प.	सीव्यति	-
[illegible] सींचना	√सिच्	उ.	सिञ्चति	-

८७. सुनना	√श्रु	प.	शृणोति	
८८. सेवा करना	√सेव्	आ.	-	सेवते
८९. सोचना	√चिन्त्	उ.	चिन्तयति	चिन्तयते
९०. सोना	√स्वप्	प.	स्वपिति	-
९१. स्मरण करना	√स्मृ	प.	स्मरति	-
९२. स्वाद लेना	√स्वद्	आ.	-	स्वदते
९३. हवन करना	√हु	प.	जुहोति	-
९४. हँसना	√हस्	प.	हसति	-
९५. होना	√अस्	प.	अस्ति	-
९६. होना	√भू	प.	भवति	-
९७. होना	√विद्	आ.	-	विद्यते
९८. होना	√वृत्	आ.	-	वर्तते

उपर्युक्त धातुओं के सांकेतिक रूपों से स्पष्ट है कि कुछ धातुएँ परस्मैपदी होती है और कुछ आत्मनेपदी और कुछ धातुओं के दोनों प्रकार के रूप चलते हैं। अतः वे उभयपदी कहलाती है। जिस प्रकार परस्मैपदी धातुओं में 'तिप् तस्' 'झि' इत्यादि प्रत्यय लगते हैं। ठीक उसी प्रकार आत्मनेपदी धातुओं में भी 'त, अताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम् एवं इड्, वहि, महिड्' आदि प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

परीक्षण करें—

अभ्यास १९— अस्य उद्यानस्य सर्वेषु वृक्षेषु बहवः पक्षिणः तिष्ठन्ति। अस्मिन् ग्रामे बहवः बालकाः निवसन्ति। रामः अत्र अद्यत्वे क्रीडितुम् आगच्छति। रामः अहम् च स्व गृहे प्रतिदिनं स्वप्नार्थम् गच्छावः। अस्मिन् नगरे बहवः जनाः सदैव निवसन्ति। दुष्टाः सज्जनान् सदैव पीडयन्ति। आवाम् तु सदैव क्रीडित्वा एव खादावः। युवाम् तत्र इदानीम् अपि किम् कुरुथः। याचकाः स्तुवन् मार्गे चलन्ति। अस्मिन संसारे बहवः जनाः निर्धनाः सन्ति।

अभ्यास २०— सः बालकः तत्र गत्वा नैव रोदिष्यति। रामः अत्र आगत्यं चलन् स्व पत्रम् लेखिष्यति। वयम् स्व गृहं गत्वा स्व कार्यम् अवश्यम् करिष्यामः। हरिः त्वम् च तस्मिन् तडागे अधुना कदापि न गमिष्यथः। चौराः रामस्य धनं कदापि न चोरयिष्यन्ति। युवाम् पठितुम् विद्यालयम् गत्वा किम् करिष्यथः। अहम् अद्य प्रातः स्व गृहात् पुष्पाणि चेतुम् वनम् गमिष्यामि। चौरः चोरयितुम् रात्रौ एव गमिष्यति। ते तु सहैव विद्यालयं गमिष्यन्ति। अस्मिन् वने बहवः मयूराः प्रसन्नतापूर्वक नर्तिष्यन्ति।

अभ्यास २१—अहम् एकदा अस्मिन् उद्याने क्रीडनाय आगच्छम्। अद्य तु सः स्व गृहे एव भोजनम् अखादत्। अहम् चलन् एकदा अस्मिन् मार्गे अपतम्। तस्य

वृक्षस्य एकस्याम् शाखायाम् एकः दुष्टवानरः वसति स्म। एकदा सः पिपासया व्याकुलोऽभवत्। तदा सः तडागं अन्वेष्टुम् वने इतस्ततः भ्रमितवान्। येन बालकेन बाल्यकाले न पठितः, सः वृद्धिं प्राप्य युवावस्थायां किम् पठिष्यति। कृष्णः सोहनः च विद्यालये पठित्वा ह्यः एव अत्र आगतवन्तौ। त्वम् अहम् ते वा इदानीम् यावत् क्रीडित्वा कथम् न अगच्छन्। सः यत् अपि निश्चयं करोति स्म, तं अवश्यमेव पूरयति स्म।

अभ्यास २२— हरिं प्रति कथय यत् सः अत्र अधुना कदापि न आगच्छतु। यूयम् इदानीम् तत्र नैव क्रीडत। ताः बालिकाः अधुना इतस्ततः न भ्रमन्तु। त्वम् अहम् च इदम् सुन्दरम् पुस्तकम् सहैव स्थित्वा पठाव। अस्य ग्रामस्य सर्वे जनाः स्नातुं ताम् नदीम् गच्छन्तु। यूयम् अधुना अस्मिन् वने एव शान्तिपूर्वकं वसत। अहं रामेण सह तं विद्यालयं गत्वा पठानि। इमे सर्वे बालकाः दशवर्षाणि यावत् विद्यालयं गत्वा अध्ययनं कुर्वन्तु। दीन-दुःखिनः प्रति सदैव दयां करोतु। अस्य ग्रामस्य सर्वे जनाः प्रेमपूर्वकं सहैव निवसन्तु।

अभ्यास २३— अधुना त्वम् कदापि तत्र न गच्छेः। प्रति छात्रः गृहं गत्वा ध्यानपूर्वकं पठेत्। संसारेऽस्मिन् सर्वैः प्रेमपूर्वकं सहैव वसितव्यम्। सर्वैः बालकैः शयनात् पूर्वम् दुग्धम् पातव्यम्। यूयम् पुस्तकालयम् गत्वा पाठ्यक्रमस्य पुस्तकानि पठेत। रामः कृष्णः च कदापि विद्याधेरण सह स्व ग्रामं न गच्छेताम्। अध्यापकः सदैव छात्रान् परिश्रमपूर्वकम् पाठयेत्। वयम् सर्वैः सह विनम्रतापूर्वकम् व्यवहरेम। दुष्टः कदापि दुष्कर्म कृत्वा प्रसन्नः न भूयात्। सः कदापि वदन् स्व पत्रम् न लिखेत्।

१६. संस्कृत निबन्ध

१. संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

संसारेऽस्मिन् अनेकानां भाषाणां प्रयोगः क्रियते। यद्यपि भाषा वस्तुतः भावानामभिव्यक्तिमात्रिका वर्तते, किन्तु यदापि यस्यामपि भाषायां अधिकाधिकस्योपयोगी साहित्यस्य निर्माणं भवति, तदानीं तस्याः भाषायाः महत्त्वं वर्धते। सर्वमेतत् संस्कृतोपरि परिघटते।

इयं भाषा न केवलं भारतवर्षस्यैव, अपितु विश्वस्य प्राचीनतमा भाषा, अतएवास्या अति महत्त्वमस्ति। अस्यां भाषायाश्च सर्वाधिकस्य वाङ्मयस्य संरचना कृता, एषा भाषा अतीव वैज्ञानिकी च वर्तते। अस्याः पाणिनीयं व्याकरणमतीव वैज्ञानिकमस्ति।

संस्कारयुक्ता परिष्कृता चेयं भाषा 'संस्कृत' इति कथ्यते। अस्याः अन्यत् नाम देवभाषा, देववाणी, सुरवाणी, गीर्वाणवाणी अपि अस्ति, एभिरपि अस्याः महत्त्वं परिवर्धते।

'विद्वांसो हि देवाः' अनेनैव कथनेन भाषा एषा देववाणी कुतः [illegible] प्रयुज्यते स्म पूर्वकाले। विश्वस्य सर्वाधिकप्राचीनतमः ग्रन्थः ऋग्वेदोऽस्य[illegible] भाषायां

निबद्धोऽस्ति। यदि वयं प्राचीन-ज्ञान-विज्ञान-संस्कृतिं प्रति जिज्ञासवः भवेम, तर्हि संस्कृतभाषा एव सहाय्या भविष्यति, अध्ययनं अस्या अपेक्षितं वर्तते।

संस्कृतभाषा न केवलं भारतवर्षस्य, अपितु विश्वस्यानेकानां भाषाणां जननी। भारतवर्षः अनेकतायाः देशोऽस्ति। यदि वयं अनेकतायां एकतायाः परिदर्शनं कर्तुं वाञ्छामः, यदि वयं भाषागतवैमनस्यं दूरीकर्तुं इच्छामः, तर्हि अस्माभिः भाषा एषा राष्ट्रभाषा रूपेण प्रतिष्ठिता कर्तव्या।

वस्तुतः इयं भाषा एव सर्वेषां भारतीयानां मानसं एकस्मिन् सूत्रे निबद्धं कर्तुं शक्यते। संस्कृतभाषायाः साहित्यभण्डारोऽपि अतिविपुलः ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्नो वर्तते, समस्तञ्च वैदिकं साहित्यमाध्यात्मिकज्ञानस्याकर एव वर्तते। महाभारतं रामायणञ्च द्वे अस्याः भाषायाः महत्त्वपूर्णे रत्ने स्तः।

महाकवि-कालिदास-भवभूति-माघ-हर्ष-चरक-सुश्रुत-कणाद-गौतमार्यभट्टादिनामनेकेषां विदुषां कृतिभिः भाषा इयं समृद्धा वर्तते। राजनीते अप्रतिमो ग्रन्थः 'कौटिल्यार्थशास्त्रम्' मनु विरचिता 'मनुस्मृतिः' च अस्यामेव भाषायां विरचिता अस्ति।

माधुर्यमस्याः भाषायाः महत्त्वपूर्णा विशेषता, अनेनैव कथ्यते **'भाषासु मधुरा रम्या दिव्या गीर्वाणभारती।'**

उपर्युक्त संक्षिप्तेन विवरणेन स्पष्टमेतत् यत् संस्कृतभाषायाः अनेकदृष्टिभिः अत्यधिकं महत्त्वमस्ति। अतः अस्माकं भारतवासिनां पुनीतकर्तव्यमेतत् यत् स्व गौरवमयमतीतमाधृत्य भविष्यस्य निर्माणकरणाय संस्कृतस्य प्रचार-प्रसारस्य प्रयासो विधेयः। संस्कृतस्य वै उन्नतिभिः अस्माकं सर्वेषामुन्नतिः सम्भाविता वर्तते। ये जनाः स्वराष्ट्रस्य गौरवपूर्णमितिहासं स्मरन्ति ते खलु सफलतायाः चरमोत्कर्षं लभन्ते।

२. विद्या

ज्ञानार्थकाद् 'विद्' धातोः 'क्यप्' कृत्वा स्त्रीप्रत्ययः 'टाप्' इति संयुज्य विद्या शब्दो निष्पद्यते। मानवजीवने विद्याया अतिमहत्त्वं वर्तते। विद्ययैव जनः संसारेऽस्मिन् सर्वान् सुखान् लभते, न केवलं मृत्युलोके परलोकेऽपि सः विद्यया वै सुख-सम्पन्नः भवति। सम्भवतः अनेनैव शास्त्रेषु कथितम्—

'विद्ययाऽमृतमश्नुते', 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्'

विद्याया अभावे मनुष्यः पशुवत् भवति। विद्या मानवस्य प्रच्छन्नं धनमस्ति। विद्ययैव जनाः संसारेऽस्मिन् यश-सुख-भोगिनः भवन्ति। यदि मनुष्यः विदेशं गच्छेत्, तर्हि विद्या एव तस्य सर्वाधिकं श्रेष्ठं मित्रं भवति। अनेनैव महाकविना भर्तृहरिणा कथितम्—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परादेवता,

विद्या राजसु पूजिता न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

अस्मिन् संसारे विद्यातीवाद्भुतं धनमस्ति, कुतः अन्यानि धनानि व्ययकृते सति विनष्टानि भवन्ति, किन्तु एतत् विद्या नामकं धनं तु व्ययकृतेऽपि वर्धते, सञ्चयात्तु विनष्टं भवति। उक्तञ्च—

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।

व्ययतो वृद्धिमायाति, क्षयमायाति सञ्चयात्।।

अस्य विद्यानामकस्य धनस्यैका अन्या विशेषता वर्तते, चौरः एनं चोरयितुं न शक्यः, नैव धनमेनं राजा अपि ग्रहीतुं शक्यते, भ्रातृभिः नैव विभज्यते धनमेतत्, भारः खलु न भवति अस्मिन्, अनेनैव धनमेतत् अन्येषु धनेषु मुख्यतां भजते—

न चौर्यहार्यं न च राज्यहार्यं,

न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।

व्ययेकृते वर्धत एव नित्यं

विद्या धनं सर्वधनं प्रधानम्।।

विद्वान् विपत्सु पतितोऽपि सरलतापूर्वकं निस्सरति, किन्तु मूर्खस्तु विनाशमेव लभते। न केवलं इयदेव विद्यावान् तु स्वदेशं राष्ट्रमपि रक्षति, किन्तु मूर्खः एकल एव स्व मूर्खतावशात् सम्पूर्णं वै देशं विनश्यति।

विद्यामधिकृत्य वै विश्वेऽनेके देशाः स्व प्रभावं स्थापितं कुर्वन्ति, तेषां वर्चस्वं सर्वत्र प्रसरति। वस्तुतः विद्या मनुष्यस्य मातेव रक्षति, पितेव हितकारिषु विषयेषु नियुज्यते, विषादं दूरीकृत्य कल्पलतेव सुखीकरोति। अतएव कथितम्—

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते,

कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं,

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।

विद्ययाजनः विनम्रः भवति, तस्मिन् शिष्टतायाः सञ्चारो भवति। यशश्चतुर्दिक्षु प्रसरति, न केवलमेतत् कविभिस्तु विद्यां नृपत्वादपि श्रेयस्करी कथितम्—

विद्वत्त्वं च नृपत्वञ्च, नैव तुल्यं कदाचन।

स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।

मानवजीवने चतुर्षु आश्रमेषु प्रथमो 'ब्रह्मचर्य' नाम आश्रमः अस्मिन् एव सः गुरुसमीपं गत्वा विद्यार्जनं कुरुते। विद्यार्थी- जीवने स अथकपरिश्रमं करोति। तदानीमेव सः विद्यां लभते। तदैव कथ्यते—

सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखम्।

सुखार्थी वा त्यजेट विद्यां, विद्यार्थी वा त्यजेद् सुखम्।।

वस्तुतः भूमण्डलेऽस्मिन् यदपि सत्यं शिवं सुन्दरञ्चास्ति। सर्वमेतत् विद्यया एव विद्याविहीनः जनः विद्वत्समाजे तथैव न शोभते यथा हंसमध्ये बको न शोभते। वस्तुतः मनुष्यस्य शरीरस्य विद्या सर्वोत्कृष्टमाभूषणमस्ति, विद्यासमं नास्ति शरीरस्य भूषणम्।

अतः अस्माभिः सदैव विद्यायाः प्राप्त्यर्थं प्रयत्नो विधेयः।

३. भारतीया संस्कृतिः

'सम्' उपसर्गपूर्वकात् कृ धातोः क्तिन् प्रत्ययेन 'संस्कृतिः' शब्दो निष्पद्यते। कस्यापि देशस्य राष्ट्रस्य वा जनैः योऽपि व्यवहार आचारश्च क्रियते। तत् सर्वं तस्य देशस्य संस्कृतिः कथ्यते।

विश्वस्य सर्वासु संस्कृतिषु भारतीया संस्कृतिः सर्वाधिकप्राचीना उत्कृष्टा च वर्तते। अस्याः वैशिष्ट्यमेतदेव यत् अनेकैः वैदेशिकैरनेकशः एनां नष्टुं प्रयत्नं कृतम्, किन्तु एषा न नष्टा, अपितु अद्यापि अक्षुण्णा एव दृश्यते।

वस्तुतः अस्यां ईदृशानि तत्त्वानि सन्ति, कानिचित् यैरेषा दीर्घकालानन्तरमपि अद्य स्वोत्कृष्टतां अक्षुण्णतां च धारयति। अस्याः सम्यक् अवलोकनार्थं अस्माभिः संस्कृतस्य अध्ययनं अपेक्षितम्। संस्कृतभाषायाः प्रतिकाव्यं स्वस्मिन् भारतीयसंस्कृतेः उदात्तरूपस्य गाथा वर्तते।

भारतवर्षस्य प्रतिग्रामं अस्याः स्वरूपं कथयति। वस्तुतः वयं अद्यापि स्वसंस्कृतिं प्रति गौरवं अनुभवामः। अस्याः मूलाधारो वेदाः सन्ति वेदाश्च विश्वस्य प्राचीनतमानि पुस्तकानि सन्ति। इत्यर्थं संस्कृतिरेषा विश्वसंस्कृतिषु प्रचीनतमा विद्यते। ऋग्वेदे भणितमस्ति—

"सा प्रथमा संस्कृति विश्वधारा"

वस्तुतः इयं संस्कृतिः लोकमंगलकारी विश्वबन्धुत्व भावनया च परिपूरिता अस्ति। अहिंसा अस्याः मूलमन्त्रमेवास्ति। परोपकारभावनाभिः एषा परिपूर्णा वर्तते। 'कर्मानुसारमेव पुनर्जन्म भवति' इत्यस्मिन् सिद्धान्ते अस्याः आस्था दृश्यते।

समन्वयस्य भावना अस्याः संस्कृतेः महत्वैशिष्ट्यम्। विदेशेभ्यः आगता बहवः जातयः अत्रागत्य अनया सह सम्मील्य एकीभूताः सञ्जाताः। वर्णाश्रमव्यवस्था अस्याः अन्या विशेषता, अनया व्यवस्थया भारतीयसमाजः चतुर्वर्णेषु विभक्तो वर्तते— 'ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रः' इति। अस्या व्यवस्थायाः उद्देश्योऽयं अस्ति यत् समाजे विविधेषु कार्येषु सौख्यं स्यात्। आरम्भे व्यवस्था एषा कर्माधारिता आसीत्। अद्य तु जन्माधारिता सञ्जाता।

'मनुष्यस्य सर्वांगीणविकासो भवेत्' इति आश्रमव्यवस्थायाः उद्देश्योऽऽसीत्। अनेनैव मानवं शतायुः परिकल्प्य तस्य जीवनं चतुर्भागेषु विभक्तं कृतमासीत् 'ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास' इति। सर्वं एतदेव 'आश्रम-व्यवस्था' कथ्यते।

भारतीया संस्कृतिः कृषिप्रधाना, अनेन अत्र कृषेः अतिमहत्त्वं अस्ति। अत्र गोः गंगायाः वैशिष्ट्यं परिदृश्यते। अत्र तीर्थानां देवानाञ्च वन्दनं भावातिरेकेन भवति।

एतत् अस्याः संस्कृतेरेव वैशिष्ट्यम्, यत् यानि-यानि अपि वैशिष्ट्यानि परेषां संस्कृतीनां अनया स्वीकृतानि वर्तन्ते। अस्यां संस्कृतौ ये जनाः निवसन्ति, ते सर्वे परम संतोषं अनुभवन्ति, कुतः अत्र न कोऽपि भेदभावः परिदृश्यते। '**वसुधैव कुटुम्बकं**', इति भावनया ओतप्रोता च इयं संस्कृतिः दरीदृश्यते।

मानवतायाः अत्र पूजा भवति। भारतीयसंस्कृतेः मूलमन्त्रं एव अस्ति—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

४. सत्संगतिः

सज्जनानां संगतिः सत्सङ्गतिः कथ्यते। मानवः एकः सामाजिकः प्राणी अस्ति, अनेनैव सः एकलः स्थातुं न शक्यते। सत्यं तु एतत् संसारे नैव कोऽपि प्राणी संसर्गेण विना भवितुं स्थातुं वा न शक्यते। न केवलं एतावत् वनस्पतयोऽपि संसर्गेण एव सुखिनः भवन्ति। एका लता वृक्षेण विना स्व जीवनं सम्यक् रूपेण जीवितुं न शक्यते, सा वृक्षस्य अवलम्बं गृह्णाति एव।

पशुपक्षिणश्च स्व मित्रैः सह उषित्वा एव प्रसन्नाः भवन्ति। वनवासी मृगः मृगीं विना व्याकुलो भवति। एवमेव चक्रवाकोऽपि चक्रवाकीं विना स्थातुं न शक्नोति।

कथनस्य तात्पर्यमिदं यत् संसारेऽस्मिन् नैव कोऽपि जीवः एकलः स्व जीवनं धारयितुं शक्यते। सः यत्र कुत्रापि तिष्ठति, उत्तिष्ठति, खादति, पिबति, स्वपिति आनन्दश्च अनुभवति, तस्य वातावरणस्य प्रभावः तस्योपरि भवति एव, नैव अत्र काऽपि विप्रतिपत्तिः दृश्यते।

जनः यादृश्यां संगतौ वसति तादृश एव प्रभावः तस्मिन् दरीदृश्यते। यदि सः दुष्टैः जनैः सह वसति, तर्हि दुष्टो भवति, यदि वा सज्जनानां सङ्गतौ वसति, तर्हि सज्जनो भवति। अनेनैव कथ्यते—

''संसर्गजाः दोषगुणाः भवन्ति''

प्राचीनकाले वाल्मीकिः नाम ऋषिः स्वस्य जीवनस्य प्रारम्भिके काले दस्युः आसीत्, सत्सङ्गत्या एव मुनिः सञ्जातः, तदनन्तरश्च महाकविः, रामायणं नाम महाकाव्यं विरचितं तेन।

सत्सङ्गत्या एव 'कबीर' नामकः जनः निरक्षरोऽपि सन्तसमाजे प्रतिष्ठासम्पन्नः सञ्जातः।अनेकशः जनः विद्वान् भवति, किन्तु तस्य कार्यकलापानि दुष्टानि भवन्ति। ईदृशानां जनानां संगतिः कदापि न विधेया। कथितञ्च—

दुर्जनः परिहर्तव्यः विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।।

संसारेऽस्मिन् यदि जनः सुखी भवितुं वाञ्छति, तर्हि तेन सदैव सज्जनानां सङ्गतिः विधेया। दुष्टेभ्यः सदैव दूरीभूयात्। दुष्टानां सङ्गतिः कज्जलवत् भवति, यत्र गमने मलिनता अवश्यमेव भवति, एवमेव दुष्टानां संगत्या जनस्य चरित्रमपि मलिनं भवत्येव।

सुसंस्कारैः जनः विलम्बात् प्रभावितो भवति, दुःसंस्कारैश्च सः शीघ्रमेव प्रभवति। अतः अस्माभिः सदैव सत्सङ्गतिः विधेया। स्व मित्राणि पारिवारिकान् सदस्यान् च सदैव दुष्टसंगात् अवरोद्धव्यम्।

सत्सङ्गतिस्तु वस्तुतः गुणनिधाना वर्तते। यदि जनः श्रेष्ठजनसंसर्गे वसति नैव तं जनं कस्यापि शिक्षकस्य कदापि आवश्यकता भवति। कुत्रापि च विद्याध्ययनस्य अनिवार्यता न, कुतः तस्मिन् स्वयमेव ते सर्वे गुणाः प्रविशन्ति, येन सह सः वसति। अतएव केनापि कविना कथितम्—

जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।।

अपि च

सद्भिरेव सहासीत्, सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च, नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्।।
अतः अस्माभिः सदैव सत्सङ्गतिः विधेया।

५. परोपकारः

परेषां उपकारः परोपकारः, इति कथ्यते। संसारेऽस्मिन् स्व हानिलाभयोः चिन्तां परित्यज्य परेषां प्राणीनां हितकरणाय यानि कार्याणि क्रियन्ते तानि सर्वाणि परोपकाराणि कथ्यते। एतादृशाः च जनाः परोपकारिणः भवन्ति।

संसारेऽस्मिन् द्विधा जनाः भवन्ति केचित् स्वार्थाय जीवन्ति, केचिच्च परार्थाय। स्वार्थिनः यत् अपि कुर्वन्ति तत्र तेषां कोऽपि स्वार्थो भवत्येव। स्वार्थाभावे तेषां एकापि क्रिया न भवति। किन्तु ये जनाः परोपकारिणः भवन्ति, तेषां सर्वे क्रियाकलापाः अन्येभ्यः प्राणिभ्यः एव भवन्ति। ते लेशमात्रमपि स्वार्थवशात् न चिन्तयन्ति, न किमपि कुर्वन्ति। न केवलं एतत् ते तु स्व प्राणान् अपि अन्येभ्यः जीवेभ्यः ददति।एतादृशाः जनाः वस्तुतः मानवतायाः आभूषणं भवन्ति।

विषयेऽस्मिन् महाराज्ञः शिवेः नाम को न जानाति, येन मात्र कपोतस्य जीवनार्थं स्व शरीरस्य मांसमपि विच्छिद्य तूलिकायां न्यक्षिपत् अन्ते च स्वमेव तस्यां तूलिकायां आरोहत्।

एवमेव महर्षिः दधिचिः मानवतायाः उपकारार्थं, देवैः प्रार्थना कृते स्व अस्थिनि अपि अददात्। वस्तुतः तेषां जीवनं धन्यं ये अन्येभ्यः जनेभ्यः जीवन्ति। स्वार्थमयी वृत्तिस्तु पशूनाम् भवति। कथितञ्च—

पशवो हि जीवन्ति केवलं स्वोदरम्भराः।

तस्यैव जीवितं श्लाघ्यं यः परार्थं हि जीवति।।

परोपकारिणां आभूषणं परोपकारः एव भवति। ये जनाः परोपकारं कुर्वन्ति, तेषां समाजे सम्मानं भवति, ते प्रतिष्ठां प्राप्नुवन्ति। महाकवि-भर्तृहरिणा अपि कथितम्—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।

विभाति कायः करुणापराणां, परोपकारै र्न तु चन्दनेन।।

वस्तुतः मनुष्यस्य शोभा परोपकारेण भवति न तु अलङ्कारैः। प्रकृतेः प्रत्युपादानं तत् वृक्षः स्यात् नदी वा भवतु, अम्बोदः भवेत्, सूर्यः वा अस्तु, चन्द्रमाः अपि वा स्यात्। सर्वेषां जीवनं परोपकाराय एव। कथ्यते अनेनैव—

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः, पिबन्ति नाम्भः स्वयेव नद्यः।

धाराधरो वर्षति नात्महेतोः, परोपकाराय सतां विभूतयः।।

शास्त्रेषु अपि परोपकारस्य अतीव प्रशंसा कृता वर्तते। अष्टादश पुराणानां रचयिता महर्षिः वेदव्यासः कथयति—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

ये जनाः परोपकारं कुर्वन्ति, ईश्वरोऽपि तेषां सहाय्यं करोति। परोपकारः वस्तुतः सर्वेषां धर्माणां तत्त्वमेव अस्ति। ये जनाः परोपकारिणः भवन्ति ते यदि पूजामपि न कुर्युः नैव कापि हानिः, कुतः भगवान् अपि परोपकारिणं प्रति उदारो भवति। परोपकारी परोपकारं कृत्वा असीमशान्तिं अनुभवति।

सज्जनास्तु परोपकारं स्व कर्तव्यं मन्यन्ते। ते स्वयं कष्टान् अनुभूय अपि परेषां सेवार्थं उपकारार्थं वा सज्जीभवन्ति। वस्तुतः परोपकारिणां जीवनं धन्यं, स्वार्थाय तु सर्वे जीवन्ति, परार्थाय जीवनं वै जीवनं भवति।

अतः अस्माभिः सदैव अन्येषां उपकारः कर्तव्यः, एतदर्थं सज्जीभवितव्यः वा। कथितञ्च केनापि कविना—

परोपकाराय वहन्ति नद्यः, परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।

६. उद्योगः

अस्मिन् संसारे सर्वे जनाः सुखं वाञ्छन्ति, तेनैव च ते अहर्निशं परिश्रमं कुर्वन्ति। परिश्रमेण विना कस्यापि कार्यस्य सिद्धि र्न भवति। कार्यसिद्धिस्तु उद्योगेनैव भवति। यदि वयं विषयेऽस्मिन् सूक्ष्मरूपेण चिन्तयेम, तर्हि देवाः अपि कार्यसिद्धिकरणे परिश्रमेण विना समर्थाः न भवन्ति। अनेनैव तेऽपि कार्यसिद्ध्यर्थं भूमौ अवतारं गृह्णन्ति, परिश्रमं विना दैवमपि पंगुः भवति। अनेनैव केनापि कविना कथितम्—

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।

तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति।।

संसारेऽस्मिन् द्विधा जनाः दृश्यन्ते। तत्र केचन तु परिश्रममेव सफलतायाः प्रमुखं कारणं मन्यन्ते। अन्ये तु भाग्यवादिनः 'ये भाग्यं एव सर्वं', इति मन्यन्ते, किन्तु भाग्यवादिनः जनाः नैराश्यमेव लभन्ते। अनेनैव कथ्यते—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,

दैवेन देयमिति का पुरुषाः वदन्ति।

दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,

यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।।

स्वयमेव विचारयन्तु भवन्तः। यदि कृषकः परिश्रमं न करोति, क्षेत्रं न कर्षति, बीजानि न वपति, काले शस्यानि जलेन न सिञ्चति, तर्हि किं सः सस्यानां स्वादुफलं आस्वादयति। कथं सः अन्येभ्यः स्वादिष्टान्नस्य उत्पत्ति कर्तुं शक्यते।

एवमेव छात्राणां विषये, यदि कोऽपि छात्रः परीक्षायां परिश्रमं न करोति, तर्हि सः तस्यां साफल्यं न लभते। सफलतां प्राप्त्यर्थं तु तेन अहर्निशं उद्योगः कर्तव्यः एव।

वस्तुतः भाग्यवादिनः मूर्खाः प्रमादिनः च भवन्ति, कुतः ते परिश्रमेण विना वै सुखं वाञ्छन्ति। परिश्रमाभावे किं ग्रासमेकमपि मुखे परिचलति? भाग्यवादिनः तु कथयन्ति **"भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम्"।**

किन्तु कथनं एतत् भ्रान्तिमूलकं असत्यं चास्ति। कुतः विचारयन्तु भवन्तः एव, भाग्यं किं, तदपि तु पूर्वजन्मकृतानां कर्मणां निर्मितिः एव अस्ति। अतः कर्मणः मुक्तिः कथं स्यात्।

अनेनैव सम्पूर्णे विश्वसाहित्ये आलस्यं शरीरस्थो महान् रिपुः कथ्यते। आलस्येन कोऽपि जीवः विनश्यति, किन्तु परिश्रमः जनस्य कस्यापि प्राणिनः वा सर्वोत्कृष्टः बन्धुः वर्तते, कथितम् च—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।

नास्त्युद्यमसमो बन्धुः यं कृत्वा नावसीदति।।

कोऽपि जनः जन्मतः महान् लघुः वा न भवति। संसारेऽस्मिन् जन्मनि सः यत् यत् कर्म करोति, तथैव भवति। अथकपरिश्रमेणैव सः महापुरुषो भवति। भाग्यवादिनस्तु, निरुद्योगिनः मन्दाः इव आचरन्ति ते सदैव यत्नेन विना सुखं वाञ्छन्ति, किन्तु साफल्यं न लभन्ते। ते प्रायः स्वपन् एव स्व काले नयन्ति। अनेनैव ते कदापि स्व परिवारस्य च परिपोषणं कर्तुं समर्थाः न भवन्ति।

उद्योगेनैव जनाः विद्वांसः, वैज्ञानिकाः, धनिकाः यशस्विनश्च भवन्ति। यः परिश्रमं करोति सः वै विजयतां लभते। ईश्वरोऽपि तस्य सहाय्यं करोति, येन स्वस्य

सहायता क्रियते। अल्पीयसी पिपिलिका कठोर-परिश्रमेणैव पर्वतमपि लंघयते, किन्तु न गच्छन् वैनतेयोऽपि एकं पदं न परिचलति। केनापि कविना सत्यमेव भणितम्—

उद्योगेनैव सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

अतः अस्माभिः सदैव उद्योगः कर्तव्यः।

७. सत्यम्

'न हि सत्यात् परो धर्मः' वस्तुतः कथनं एतत् पूर्णतया सत्यं शाश्वतं चास्ति। सर्वेषां धर्माणां सर्वेषु ग्रन्थेषु सत्यस्य सर्वोत्कृष्टं स्थानमस्ति। अनेनैव मनुस्मृतिकारेण धर्मस्य लक्षणं उल्लेखयन् सत्यं अन्यतमं स्वीकृतं वर्तते— **'आहुः, सत्यं हि परमं धर्मं, धर्मविदो जनाः।।'**

मानवैः सदैव सत्यस्य पालनं कर्तव्यम्। सत्यसंभाषणेन जनस्य समाजे सम्मानं प्रतिष्ठा च वर्धेते। तं कीर्तेः, सफलतायाः, शान्तेः सुखस्य च प्राप्तिर्भवति। सर्वेषु वेदेषु शास्त्रेषु च सत्यस्य महिमा वर्णितः दृश्यते, मानवजीवने यादृशं महत्त्वं सत्यस्य न अन्यस्य कस्यापि वस्तोः तादृशं वर्तते। सत्यवादिनः जनाः सदैव निर्भयाः प्रसन्नवदनाः च भवन्ति।

ये जनाः सत्यं वदन्ति समाजे ते प्रमाणं भवन्ति। तेषां पूजा भवति। विषयेऽस्मिन् सत्यवादी-हरिश्चन्द्रस्य उदाहरणं दरीदृश्यते। तेन सत्यस्य पालनाय अनेकानि कष्टानि अनुभूतानि। अनेनैव तस्य नाम अद्य सम्मानपूर्वकं गृह्यते।

एवमेव महाराजदशरथेन स्वप्राणप्रियः रामः वनं प्रेषितः आसीत्। महाभारतस्य सत्यवादिनं युधिष्ठिरं को न जानाति। सत्य-बलेनैव तेन विजयश्रीः लब्धा। रामायणे रामोऽपि सत्यमाश्रित्य वै लंकां विजितवान्।

उपनिषत्सु कथितं दृश्यते "**सत्यं वद धर्मं चर**", अत्रापि सत्यस्य महत्ता परिलक्ष्यते। सत्यवादी जनः केवलं ईश्वरादेव बिभेति, नैव अन्यस्मात् कस्मादपि जनात् जीवात् वा। यो जनः सत्यं वदति, तस्य मनसि नैव छलछद्मलोभस्य वा स्थानं लेशमात्रमपि दरीदृश्यते। ईदृशः जनः नैव कदापि अनुचितं आचरति।

वस्तुतः धर्मस्य मूलमपि सत्यमेव अस्ति। भारतवर्षस्य तु राष्ट्रचिह्नं अपि **'सत्यमेव जयते'** स्वीकृतम्। अतः अस्माकं संविधाननिर्मातृभिः विद्वद्भिः सत्यस्य महत्ता स्वीकृता। अनेनैव शिक्षायाः समाप्त्यनन्तरं आचार्योऽपि शिष्याय सत्यसंभाषणस्य उपदेशं ददाति।

अस्य सम्पूर्णस्य संसारस्य अस्तित्वमपि वस्तुतः केषाञ्चिदेव सत्यवादीजनानाम् सत्याचरणे वर्तते। अन्यथा यदि सर्वे जनाः दुष्टाः असत्यवादिनः च भवेयुः, तर्हि जगत् एतत् नष्टं भवेत्। अतः अस्माभिः सदैव सत्यसम्भाषणं कर्तव्यम्।

सत्यस्य आचरणेन वै समाजस्य राष्ट्रस्य वा अस्माकं कल्याणं भविष्यति। **'सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्'** इति कथ्यते शास्त्रविद्भिः जनैः।

किन्तु विषयेऽस्मिन् एतदपि अवधारणीयम्, यत् सत्यं अप्रियं न वक्तव्यम्। अनेन यः शृणोति सः आहतो भवति, क्लेशश्च,, प्राप्नोति। अतः शास्त्रेषु कथितम् -

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, नाब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः।।

अद्य तु प्रायः दृश्यते यत् बहवः जनाः सत्यभाषणात् विमुखाः सञ्जाताः। अधिकसंख्याकानां जनानां प्रवृत्तिः असत्ये प्रतिष्ठिता दरीदृश्यते? किन्तु नैव एतत् सर्वं शुभं वर्तते। यदि वयं स्वराष्ट्रस्य, देशस्य समाजस्य स्वस्य वा उन्नतिं कर्तुं वाञ्छामः तर्हि सदैव सत्यभाषणं कर्तव्यम्, अनेन समाजे एकस्य स्वस्थवातावरणस्य निर्माणं भविष्यति।

१७. छन्द-ज्ञान

लगभग सभी विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर छन्द विषयक प्रश्न अवश्य पूछे जाते हैं। छात्रों को प्रायः इस विषय में अनेक जिज्ञासाएँ रहती हैं। इस प्रकरण में हमारा प्रयास है कि उनकी सभी कठिनाइयों का समाधान हो। यहाँ हम केवल उपयोगी एवं मुख्य-मुख्य छन्दों का ही परिचय प्रदान करेंगे।

श्रव्य काव्य तीन प्रकार का होता है– गद्य, पद्य और चम्पू। इनमें छन्दोबद्ध रचना पद्य कहलाती है। छन्द दो प्रकार के होते हैं— वार्णिक और मात्रिक। जिनमें वर्णों के अनुसार सिद्धान्त निर्धारण हों, वे वार्णिक छन्द कहलाते हैं। इनका केवल वेदों में प्रयोग होता है। इसके विपरीत जहाँ मात्राओं के आधार पर गणना करके नियम निर्धारण किया जाए वे मात्रिक छन्द कहलाते हैं। लौकिक संस्कृत में मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। अतः हम यहाँ केवल मात्रिक छन्दों का ही उल्लेख करेंगे।

छन्द-ज्ञान के लिए कुछ आवश्यक बातें—

१. गणों के निर्माण के लिए याद करें— **यमाताराजभानसलगा**

२. लघु का चिह्न— । खड़ी लाइन।

३. गुरु का चिह्न— ऽ एस की आकृति।

४. सामान्यतया सभी ह्रस्व स्वर 'लघु' होते हैं— अ, इ, उ, ऋ।

५. दीर्घ स्वर 'गुरु' होते हैं। जैसे— आ, ई, ऊ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ भी गुरु माने जाते हैं।

६. कुछ अवस्थाओं में लघु स्वर भी गुरु हो जाता है—

(क) संयुक्त अक्षर से पहले का अक्षर गुरु होता है। जैसे— इन्द्र में 'इ' संयुक्त अक्षर से पहले होने के कारण ह्रस्व होने पर भी गुरु होगा।

(ख) अनुस्वारयुक्त अक्षर गुरु होते हैं। जैसे— 'कंकाल' में 'कं' गुरु होगा।

(ग) विसर्ग सहित अक्षर गुरु होता है। जैसे— 'रामः' में 'मः' गुरु होगा।

(घ) चरण के अन्त में यदि लघु अक्षर भी आया हो और छन्द के लक्षण के अनुसार गुरु की आवश्यकता हो तो उस लघु को भी गुरु मानकर व्यवहार करते हैं।

७. तीन वर्णों का एक गण होता है तथा वर्णों के लघु, गुरु भेद से आठ गण होते हैं— यगण[१], मगण[२], तगण[३], रगण[४], जगण[५], भगण[६], नगण[७], सगण[८]।

अब 'यमाताराजभानसलगा' सूत्र के आधार पर इन आठों गणों के स्वरों लघु, गुरु को भी समझ लेवें।

य	यगण	यमाता	।SS
मा	मगण	मातारा	SSS
ता	तगण	ताराज	SS।
रा	रगण	राजभा	S।S
ज	जगण	जभान	।S।
भा	भगण	भानस	S।।
न	नगण	नसल	।।।
स	सगण	सलगा	।।S
ल	लघु	-	।
गा	गुरु	-	S

उपर्युक्त चार्ट से स्पष्ट है कि सूत्र के प्रत्येक अक्षर से ('य'—से 'स' तक) ८ गणों का निर्माण किया गया। गणों पर चिह्न लगाने के लिए उस अक्षर से दो अक्षर और गिनते हैं, इन तीन वर्णों पर जो लघु गुरु होंगे। वे ही लघु, गुरु चिह्न उस गण पर होंगे। जैसे— प्रथम वर्ण य से 'यगण', द्वितीय 'मा' से 'मगण'। यगण से 'यमाता' के स्वर चिह्न ।SS होंगे। इसी प्रकार मगण में 'मातारा' के स्वर चिह्न SSS होंगे। इसी प्रकार अन्य गणों में भी समझना चाहिए।

श्लोक का उच्चारण करते समय, एक क्षण के लिए रूका जाता है, जो प्रत्येक छन्द में अलग-अलग होता है, इसे यति कहते हैं। इसका भी विशेष ध्यान रखें।

विशेष—अब हम क्रमशः कुछ छन्दों के लक्षण, उदाहरण सहित लिख रहे हैं। परीक्षा में केवल लक्षण और उदाहरण लिखना चाहिए। उदाहरण के चारों चरणों पर गण-मात्रा निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है। **केवल प्रथम चरण पर ही गण-मात्राओं का उल्लेख या प्रदर्शन करना चाहिए।**

१. आर्या

लक्षण— **यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।**
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

जिस छन्द के प्रथम चरण में १२ मात्राएँ, द्वितीय चरण में १८, तृतीय चरण में १२ और चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ हों, वह आर्या छन्द कहलाएगा।

। ।।। । S।SS=१२ S।।SS। ।। ।।।SS=१८
उदाहरण— सुलभसलिलावगाहाः, पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रथम चरण यति द्वितीय चरण
प्रच्छायसुलभनिद्रा, दिवसाः परिणामरमणीयाः।।
तृतीय चरण = १२ मात्राएँ चतुर्थ चरण = १५ मात्राएँ

२. अनुष्टुप् —

लक्षण— **श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।**
द्विचतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अनुष्टुप् अथवा श्लोक के सभी पादों में छठा अक्षर गुरु और पाँचवाँ लघु होता है। द्वितीय और चौथे चरण में सातवाँ ह्रस्व होता है तथा पहले और तीसरे चरण में सातवाँ अक्षर गुरु होता है।

।S। ।SS ।S ।
उदाहरण— तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
।SS ।S।
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा।।

३. वंशस्थ—

लक्षण— **जतौ तु वंशस्थमुदिरितं जरौ।**

इसके चरणों में जगण, तगण (जतौ), जगण और रगण (जरौ) कुल चार गण होते हैं।

उदाहरण—

जगण तगण जगण रगण
।S। SS। ।S। S।S
इदं किलाव्याज मनोहरं वपुस्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।

विशेष— परीक्षा में छात्रों को लक्षण के पश्चात् स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें यह प्रश्न केवल तीन शीर्षकों में लिखना चाहिए। लक्षण, उदाहरण और केवल प्रथम चरण में गण-मात्रा निर्देश। कुछ छात्र चारों चरणों में गण-मात्रा निर्देश करते हैं, जो उचित नहीं है, अपितु उस समय का सदुपयोग उन्हें अन्य प्रश्नों को हल करने में करना चाहिए।

४. वसन्ततिलका—

लक्षण—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।।

(इस छन्द में तगण, भगण, जगण (तभजा) जगण (जगौ गः) के बाद दो गुरु होते हैं।)

उदाहरण—

तगण भगण जगण जगण दो गुरु

S S I S I I I S I I S I S S

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-

माविष्कृतोऽरुण पुरःसर एकतोऽर्कः।

तेजो द्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां,

लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।। (४/२ अभि० शाकु०)

५. मालिनी—

लक्षण— **ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।।**

(इस छन्द में नगण, नगण, मगण, यगण और यगण (ननमयय) होते हैं तथा आठ (भोगि– आठ सर्पों की संख्या हैं) और सात (लोकैः – लोकों की संख्या सात है) वर्णों पर यति होती है।

उदाहरण –

नगण नगण मगण यगण यगण गण-मात्रा निर्देश

I I I I I I S S S I S S I S S

सरसि जमनु विद्धं, शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशो, र्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।१/२० अभिज्ञान–

६. मन्दाक्रान्ता—

लक्षण— **मन्दाक्रान्ता जलधिषड्गैम्भो नतौ ताद् गुरू चेत्।**

(इस छन्द में मगण, भगण (म्भो), नगण, तगण (नतौ) तगण (ता) और अन्त में दो गुरु होते हैं तथा चार (जलधि) छः (षड्) और सात (गै-गान स्वर) पर यति, होती है)

उदाहरण एवं गण-मात्रानिर्देश—

मगण भगण नगण तगण तगण दो गुरु

S S S S I I I I I S S I S S I S S

तीव्राघातप्रतिहत तरुः स्कन्ध लग्नैकदन्तः,

पादाकृष्टव्रततिवलया सङ्गसञ्जातपाशः।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्न सारङ्ग यूथो,

धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः।।(१/३३ अभिज्ञान)

विशेष— छात्रों को चाहिए कि लघु या गुरु निर्देश करने से पहले उससे आगे के वर्ण को अवश्य देख लेवें, क्योंकि बाद में संयुक्त वर्ण होने पर पहला वर्ण ह्रस्व होने पर भी गुरु होगा। जैसे उक्त उदाहरण में तीव्राघात का त गुरु हुआ, क्योंकि बाद में 'प्र' संयुक्त वर्ण (प् + र) प्रयुक्त हुआ है। क् + ष = क्ष, त् + र = त्र, ज् + ञ = ज्ञ भी संयुक्त वर्ण हैं।

७. शिखरिणी—

लक्षण— **रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।**

(इस छन्द में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण (यमनसभ) और अन्त में एक लघु और एक गुरु (लागः) होता है। छः (रसैः– रसों की संख्या छः मानी गई है - मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त) और ग्यारह (रुद्रैः - रुद्रों की संख्या ग्यारह है) वर्णों पर यति होती है)

उदाहरण एवं गणमात्रा-निर्देश—

यगण मगण नगण सगण भगण लघु और गुरु

I S S S S S I I I I I S S I I I S

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-

रनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादितरसम्।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,

न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।(२/१०)

८. शार्दूलविक्रीडित—

लक्षण— सूर्याश्वैर्म**सजास्तताः सगुरवः** शार्दूलविक्रीडितम्।

(इस छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण और तगण (**मसजास्तताः**) अन्त में एक गुरु (सगुरवः) होता है। बारह (सूर्य-आदित्यों की संख्या १२ होती है) और सात (अश्व - सूर्य के अश्वों की संख्या ७ मानी गई है) वर्णों के बाद यति होती है।

उदाहरण एव गण-मात्रा-निर्देश—

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गुरु

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूति समये यस्याः भवत्युत्सवः,

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं, सर्वैरनुज्ञायताम्।।(४/९)

९. स्रग्धरा—

लक्षण— **म्रभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।**

(इस छन्द में मगण, रगण, भगण, नगण (म्रभ्नैः) यगण, यगण और यगण तीनयगण (यानां - बहु.व.) होते हैं औ सात, सात और सात (मुनि - ऋषियों की संख्या सात है, त्रयेण) वर्णों के बाद यति होती है)

उदाहरण एव गण-मात्रा-निर्देश—

मगण रगण भगण नगण यगण यगण यगण

ऽ ऽऽ ऽ ।ऽऽ ।।।।।।ऽ ऽ । ऽ ऽ।ऽऽ

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः,

पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयात् भूयसा पूर्वकायम्।

दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा,

पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।। (१/७)

१०. द्रुतविलम्बित—

लक्षण— द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

(इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, भगण (नभौ) भगण, रगण (भरौ) होते हैं।)

उदाहरण एवं गण मात्रा-निर्देश—

नगण भगण भगण रगण

।।। ऽ ।।ऽ ।।ऽ।ऽ

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा,

त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।

अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः,

पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।।(५/२७)

११. उपजाति—

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्दों के सम्मिलित लक्षण होने पर उपजाति छन्द होता है।

इन्द्रवज्रा का लक्षण— **स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।**

(तगण, तगण, (तौ) जगण अन्त में दो गुरु (जगौ गः)

उपेन्द्रवज्रा का लक्षण— **उपेन्द्र वज्रा जतजास्ततो गौ।**

(जगण, तगण और जगण (जतजा) अन्त में दो गुरु (गौ)

उदाहरण—

जगण तगण जगण गुरु तगण तगण जगण दो गुरु

।ऽ।ऽऽ। ।ऽ।ऽऽ ऽऽ। ऽऽ। । ऽ । ऽऽ

शमप्रधानेषु तपो धनेषु, गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।

ऽ ऽ।ऽ ऽ।। ऽ।ऽ ऽ ।ऽ।ऽऽ ।ऽ। ।ऽ।

स्पर्शानुकूला अपि चन्द्रकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् दहन्ति।।

इस श्लोक के पहले और चौथे चरण में उपेन्द्रवज्रा तथा दूसरे और तीसरे चरण में इन्द्रवज्रा के लक्षण होने के कारण उपजाति छन्द प्रयुक्त हुआ है।

परिशिष्ट

इस पुस्तक में विवेचित सूत्रों की सूची

सूत्र	पृ०
अकथितं च	८२
अकः सवर्णे दीर्घः	२०
अचोऽन्त्यादि टि	२७
अचोरहाभ्यां द्वे	३८
अणुदित्सवर्णस्य	१५
अतोरोरप्लुताद	६६
अत्रानुनासिकः पूर्व	५९
अदर्शनं लोपः	१३
अदसोमात्	३२
अदेङ्गुणः	३०
अधिशीङ्स्थासां	८३
अनचि च	२९
अनामनवतिनगरी	४१
अनेकाल्शितसर्वस्य	३५
अनुनासिकात्परो·	५९
अनुस्वारस्य ययि	५१
अन्तादिवच्च	३५
अपवर्गे तृतीया	८४
अलोऽन्त्यस्य	३२
अवङ्स्फोटायनस्य	३६
आख्यातोपयोगे	८६
आदिरन्त्येनसहेता	१३
आद्गुणः	२४
आदेः परस्य	६१
आद्यन्तौ टकितौ	६३
आधारोऽधिकरणम्	८९
इकोऽसवर्णे शाकल्य·	३७
इकोयणचि	२१
इत्थं भूतलक्षणे	८४
इन्द्रे च	३६
ईदूदेद्द्विवचनं	२८
उच्चैरुदात्तः	१४
उदः स्थास्तम्भोः	४६
उपदेशेऽजनुनासिक	२७
उपसर्गादृति धातौ	३५
उपसर्गाः क्रियायोगे	३४
उपान्वध्याङ्वसः	८३
उरणरपरः	२५
ऊकालोज्झ्स्वदीर्घप्लुत	१४
ऋत्यकः	३४
एङः पदान्तदति	२६
एङि पररूपम्	२५
एचोऽयवायावः	२३
एतत्तदोः सुलोपो	६९
एत्येधत्यूठसु	३८
ओत्	३३
ओमाङोश्च	३३
कर्तृकर्मणोः कृतिः	८८
कर्तुरीप्सिततमं कर्म	८२
कर्मणा यमभिप्रैति	८५
कानाम्रेडिते	६५
कालाध्वनोरत्यन्त...	८३

सूत्र	पृ०
कुप्वोःकपौ च	६४
क्रुध् द्रुहेर्ष्यासूयार्थानां	८५
खरवसानयोर्विसर्जनीयः	६०
खरि च	४७
ङ्णो कुक् टुक् शरि	५३
ङमोह्रस्वादचि ङमुण्·	५२
ङिच्च	३६
चादयोऽसत्त्वे	३२
छत्वममीति वाच्यम्	४९
छे च	५६
जनिकर्तुः प्रकृतिः	८७
झयो होऽन्यतरस्याम्	५५
झरो झरि सवर्णे	४६
झलां जश् झशि	२९,४२
झलां जशोऽन्ते	४१
ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः	६८
ड् सि धुट्	५४
तपरस्तत्कालस्य	३०
तस्मादित्युत्तरस्य	६१
तस्मिन्निति निर्दिष्टे	२८
तस्य परमाम्रेडितम्	६४
तस्य लोपः	१३
तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या	८६
तुल्यार्थेऽतुलोपमाभ्यां	८९
तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्	१४
तोः षि	४१
तोर्लि	४५
दूराद् धूते च	३४
दूरान्तिकार्थेभ्यः द्वितीया	८७
धारेरुत्तमर्णः	८५
ध्रुवमपायेऽपादानम्	८६
न पदान्ताट्टोरनाम्	४०
न परे नः	६२
नून् पे	६३
नमः स्वस्ति स्वाहा....	८६
नश्च	५४
नश्चापदान्तस्य झलि	५०
नश्छव्य प्रशान्	५७
निपात एकाजनाङ्	३१
नीचैरनुदात्तः	१४
पदान्ताद् वा	५७
परः सन्निकर्षः	१५
पुमः खय्यम्परे	६३
पृथक् विना नाना तृतीया	८८
पूर्वत्रासिद्धम्	३३
प्रत्यये भाषायां नित्यम्	४५
प्रादयः	३१
प्लुत प्रगृह्याः	३७
भीत्रार्थानां भयहेतुः	८६
भुवः प्रभवश्च	८७
भूवादयो धातवः	३१
भो भगोऽघो अपूर्वस्य	६७
मय उञो वो वा	३७
मुख नासिका वचनोऽनु..	१४
मोऽनुस्वारः	५०
मो राजि समः क्वौ	५१
यतश्च निर्धारणम्	९०
यथासंख्यमनुदेशः	२८
यरोऽनुनासिके	४४
यवल परे यवला वा	६२
यस्य च भावेन	९०
येनाङ्गविकारः	८४
रुच्यर्थानां प्रीयमानः	८५
रोरि	६८

रोऽसुपि	६८
लोपः शाकल्यस्य	३१
वृद्धिरादैच्	३०
वृद्धिरेचि	२४
वान्तो यि प्रत्यये	२७
वा पदान्तस्य	५२
वारणार्थानामीप्सितः	८७
वावसाने	४८
वा शरि	६५
विप्रतिषेधे परं कार्यम्	६९
विसर्जनीयस्य सः	६१
शश्छोऽटि	४८
शात्	३९
शि तुक्	५५
षष्ठी चानादरे	९०
षष्ठी शेषे	८८
षष्ठी हेतु प्रयोगे	८८
ष्टुना ष्टुः	४०
सप्तम्यधिकरणे	८९
समः सुटि	५९
समाहारः स्वरितः	१४
सम्बुद्धौ शाकल्यस्य	३७
सर्वत्र विभाषा गोः	३५
ससजुषो रुः	६५
सहयुक्तेऽप्रधाने	८४
संयोगान्तस्य लोपः	२९
साधकतमं करणम्	८३
साध्वसाधु प्रयोगे च	९०
सुप्तिङन्तं पदं	१५
सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्	७०
स्तोः श्चुना श्चुः	३८
स्थानेऽन्तरतमः	२९
हलन्त्यम्	१३
हलि सर्वेषाम्	६७
हलोऽनन्तराः संयोगः	१५
हशि च	६६
हे मपरे वा	६२